प्रकाशकका निवेदन

श्री किशोरलाल मशरूवाला गुजरातमे अेक मौलिक, निष्पक्ष तथा क्रान्तिकारी विचारक और लेखकके नाते प्रख्यात हैं। अिसका थोड़ा परिचय अुनकी 'जीवनशोधन' और 'जडमूलसे क्रान्ति' जैसी विचारप्रेरक पुस्तकोसे हिन्दी जगतको भी मिल चुका होगा। अब हम स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके बारेमे अुनके सर्वथा नया दृष्टिकोण लिये हुअे लेखो और भाषणोका यह संग्रह पाठकोके सामने प्रस्तुत करते हैं। गुजरातीमें यह संग्रह कितना लोकप्रिय सिद्ध हुआ है, अिसका प्रमाण अिसीसे मिल जाता है कि कुछ ही वर्षोमे अिसके चार संस्करण छप चुके हैं।

आशा है हिन्दी पाठकोको यह पुस्तक रुचिकर, प्रेरक और बोधप्रद मालूम होगी।

१०–४–'५१ जीवणजी डा० देसाअी

प्रस्तावना

अिस पुस्तकमें स्त्री-पुरुषके संबंध रखनेवाले प्रश्नोंका योजना-पूर्वक विवेचन नहीं किया गया है। जिसे कामविज्ञानका साहित्य कहा जाता है, वैसे भी ये लेख नहीं हैं। अैसी पुस्तकोंके बारेमें अपनी राय मैंने अेक लेखमें बताओी है। दस वर्षकी अवधिमें अलग-अलग मौकों पर पैदा किये हुअे विचारोंसे बने लेखोंका यह केवल अेक संग्रहमात्र है। अिसका अन्तिम लेख भी अेक पुराना अप्रकाशित पत्र है। छापनेकी दृष्टिसे अुसमें सिर्फ कुछ परिवर्तन कर लिये गये हैं। सारी पुस्तककी ध्वनि तो स्पष्ट है, अिसलिअे अुसको फिरसे स्पष्ट करनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

कुछ लेखोंकी भूमिकामें मेरी निजी बातें आओी हैं। वे मेरे जीवनकी बातें कहनेके लिअे नहीं, बल्कि यह बतानेके लिअे लिखी गओी हैं कि अेक धर्मपरायण कुटुम्बमें बालकोंका पालन-पोषण किस तरह होता है। अैसे कुटुम्ब आज भी बहुतसे होंगे; लेकिन यह भी सभव है कि वे लुप्त हो रहे हो। अिसलिअे अिन बातोंकी पूर्तिमें अेक-दो और हकीकतें कह दू तो वे — कमसे कम — लुप्त होते हुअे जमानेका चित्र हमारे सामने अुपस्थित करनेमें शायद अुपयोगी साबित होगी।

मैं स्वामिनारायण सप्रदायमें पल-पुसकर बडा हुआ हू, और अुस सप्रदायमे मेरे खास गुरु तो मेरे पिताजी ही थे।

"हिंसा न करनी जतकी, परत्रिया सगको त्याग;
मास न खावत, मद्यको पीवत नही बड़भाग।
विधवाको स्पर्शत नही, करत न आत्मघात;
चोरी न करनी काहुकी, कलक न कोअुको लगात।
निदत नही कोअु देवको, बिन खपतो* नही खात;
विमुख जीवके वदनसे कथा सुनी नही जात।

---

* मास वगैरा जैसी न खाने लायक चीज।

यह विधि धर्म सह नियममे, वर्ते सव हरिदास;
भजे श्री सहजानन्द प्रभु, छोडी और सब आस।
रही अेकादश नियममे करो श्रीहरिपद प्रीत,
प्रेमानन्दके धाममे, जाओ नि शक जग जीत।"

—यह अिस सम्प्रदायकी सायप्रार्थनाके नित्यपाठका अेक हिस्सा है। मेरे पिताजीका जीवनमें अिसे अक्षरश. पालने और दूसरोंसे पलवानेका आग्रह था। बम्बअी जैसे शहरमें रहकर भी वे स्वय अिन नियमोका अितनी सख्तीसे पालन करते थे कि भूलेश्वर और तीसरे भोअीवाडेके संकडे और भीड-भडक्केवाले रास्तो पर भी किसी विधवाका स्पर्श न हो जाय अिसका ध्यान रखते थे, और कभी हो जाता तो अेक बारका अुपवास कर लेते थे।

अेकातसे वचनेके वारेमे अुन्होने हमे जो शिक्षा दी थी, अुसका अेक किस्सा यहा कह दू। अेक वार मेरी छोटी वहन (१२-१३ सालकी) अेक कमरेमें कघी कर रही थी। अुस वीच कोअी परिचित गृहस्थ अुस कमरेमें दाखिल हुअे। कमरा खुला था। अुसकी बनावट अैसी थी कि जाते-आते किसीकी भी नजर अन्दर पड जाती थी। मेरी बहन अुनके आने पर कमरेसे अुठकर चली नही गअी और कघी करती रही। मेरे पिताजीने दूसरे कमरेमे से यह सब देखा। अुन्होने बहनको पास वुलाकर 'मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा . . .' सहजानन्द स्वामीकी आज्ञा अुसे समझाअी। फिर कहा कि अिस आज्ञाका भग हुआ है, अिसलिअे प्रायश्चित्तके रूपमें अुसे अेक दिनका अुपवास करना चाहिये।

'स्त्री-पुरुष-सबध' नामके मेरे लेख पर कुछ नवयुवक और प्रौढ़ युवक भी चिढ गये थे। अूपरकी बात पढकर अुनके मनमें क्या भाव पैदा होगे, अिसकी मै कल्पना कर सकता हू। जो मर्यादाधर्ममे विश्वास रखते है, अुनमे से भी कुछको अैसा लगेगा कि मेरे पिताका यह बरताव मर्यादाकी भी मर्यादाको लाघ गया था। कुछ यह भी कहेगे कि अिस तरह पाला गया सदाचार वास्तवमें सदाचार ही नही है, अिस तरह पाला गया ब्रह्मचर्य वास्तवमें ब्रह्मचर्य ही नही है। लेकिन यह

बात भी कोअी नयी नहीं है। स्थूल नियमपालनका यह विरोध स्मृतियों जितना ही पुराना है।

अंग्रेजी राज्यके आरम्भमें यदि आधुनिक युगका शुभारम्भ मानें, तो बड़े पैमाने पर अुज्ज्वल ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापनाका प्रयत्न करनेवालोंमें सहजानन्द स्वामीका नाम अवश्य लिया जा सकता है। लेकिन अुन्होंने अिसकी सिद्धिके लिअे बड़ी मर्यादायें बांध दी थीं। अुनकी अिन मर्यादाओंकी अुस समयके साधु-संप्रदायोंने भी टीका की थी। अेक घटना अैसी लिखी गयी है कि अेक बार अेक वैरागी साधुने सहजानन्द स्वामीके साथ चर्चा करते हुअे कहा : "स्वामिनारायण, आपने सब कुछ तो अच्छा किया, लेकिन अेक बात बहुत बुरी की। आपने स्त्री-पुरुषके अलग-अलग वाड़े बनाकर ब्रह्ममें भेद डाल दिया।" सहजानन्द स्वामीने अुत्तर दिया : "बाबाजी, यह भेद कोअी रहनेवाला थोड़े ही है। मैं अेक विशेष घिनवाला आ गया हूं, अिसलिअे मैंने यह भेद कर डाला है। मेरी थोड़ी-बहुत घिन अिन लोगों (शिष्यों) को लगी है। वह जब तक टिकेगी, तब तक यह भेद रहेगा। फिर तो आपका ब्रह्म पुनः अेक ही हो जानेवाला है!"

स्वामिनारायण संप्रदायके साधु-ब्रह्मचारी निवृत्तिपरायण भक्ति-मार्गी हैं। संसारी समाजसे दूर रहकर जो लोग जीवन बिताना चाहते हैं, अुनके लिअे अिस संस्थामें अैसा करनेकी सुविधा है। ये कड़े नियम संसारी समाजके लिअे न तो बनाये गये, और न सोचे गये थे। परंतु यदि नियमोंको 'घिन' का नाम दिया जाय, तो कहा जा सकता है कि संसारी समाजमें भी कुछ मर्यादारूपी घिनकी छूत अुन्होंने जरूर लगाअी थी। यह छूत मेरे पिताजीको विरासतमें मिली थी। अुन्होंने विचारपूर्वक अुसका पोषण किया था और हमें भी लगानेकी कोशिश की थी। मेरी शक्तिके अनुसार मुझमें यह 'घिन' टिकी रही है; और मैं मानता हूं कि अुसके टिके रहनेमें मेरा अपना और समाजका हित ही हुआ है।

'घिन' शब्दका अुपयोग तो सहजानन्द स्वामीने व्याजोक्तिसे किया था। सच पूछा जाय तो अुनके मनमें स्त्रीजातिके लिअे कभी

अनादर नही रहा, अितना ही नही, वे व्यक्तिगत रूपमे स्त्रियोके साथ कभी घृणाका वरताव नही करते थे। और स्त्रियोकी अुन्नतिके लिअे अुन्होने अैसी वहुतसी प्रवृत्तियां चलाअी और सस्थाये कायम की थी, जिन्हे अुस जमानेकी दृष्टिसे नअी कहा जा सकता था। मेरे पिताजीमे भी स्त्रीजातिके लिअे घिन या अनादर नही था। हमारे परिवारमे घूघट, ससुरके साथ न वोलना, ससुर-जेठ आदिके देखते हुअे पतिके साथ न वोलना अित्यादि 'मर्यादाओ' का पालन नही होता था और गृहस्थीका लगभग सारा कामकाज स्त्रियोके हाथमे ही रहता था। अिसके फलस्वरूप परिवारमे नये सुधार दाखिल करनेका काम हमें शायद ही कभी कठिन मालूम हुआ हो। रोना-पीटना, श्राद्धदिनका भोजन, विवाह या मृत्युके समय जाति-भोज, विवाहके मौके पर वरकी सवारी निकालना, 'स्वदेशी', खादी, अस्पृश्यता-निवारण, मूर्तिपूजा, अुत्सव वगैराके वारेमे जो जो सुधार परिवारमें किये गये, अुनमे शायद ही मेरे पिताजीको या हम भाअियोको स्त्रीवर्गके साथ कभी झगडा करना पडा हो। स्त्रीजातिके प्रति हमारे मनमे घिन या अनादर ही होता, तो मुझे लगता है कि यह नतीजा नही आ सकता था।

लेकिन यह प्रस्तावना मै सहजानन्द स्वामीकी या मेरे पिताजीकी कीर्ति वढाने या अुनकी वकालत करनेके लिअे नही लिख रहा हू। अिसके लिखनेका हेतु सिर्फ अितना ही है कि आज अनेक प्रकारके मतोको सुनकर हमारे मन जो विचलित हो गये है, अुसके वारेमें अपनी तीव्र श्रद्धाओकी भूमिका पाठकोके सामने रख दू।

*　　　　*　　　　*

काकासाहवने अनेक कामोसे समय निकालकर अिस पुस्तकका आमुख लिखकर मुझ पर जो स्नेह वरसाया है, अुससे पाठकोको भी लाभ होगा।

वर्धा,　　　　किशोरलाल मशरूवाला
जनवरी, १९३७

आर्य आदर्शकी दृष्टिसे

[आमुख]

'जीवनशोधन' और 'गांधी-विचार-दोहन' किशोरलालभाजीकी व्यवस्थित ढंगसे लिखी हुआी पुस्तकें हैं। 'केळवणीना पाया' (शिक्षाकी बुनियाद) भी अेक सपूर्ण निबंधमाला है। लेकिन अिस पुस्तकके बारेमें अैसा नही कहा जा सकता। किशोरलालभाअीके प्रति रही श्रद्धाके कारण और अुनके विचारोंकी महत्ता जानकर कअी लोग अुनसे प्रश्न पूछते है। अिन लोगोंको व्यक्तिगत अुत्तर देनेके बजाय 'नवजीवन' या 'हरिजनबंधु' जैसे पत्रोंमे अुन विषयोंकी चर्चा करनेसे आम जनताको भी लाभ होता है, अैसा समझकर वे कअी बार पत्रोमे लिखते है। लोग अुन्हे गभीर विचारक, नि.स्पृह लेखक और अुत्कट श्रेयार्थीके रूपमे पहचानते है। अिसलिअे गुजरातमें अुनकी पुस्तकें, लेख, भाषण आदि बड़े आदरसे पढे जाते है। अिसीलिअे प्रकाशकने स्त्री-पुरुष-सबंधके बारेमें अलग-अलग समय पर लिखे हुअे अुनके लेख, भाषण आदि अेकत्र करके अुन्हे यहा स्थायी रूपमे पाठकोके सामने रखा है।

स्पष्ट है कि अिस विषयका यहा सागोपांग विवेचन नही हुआ है। अिस विषयके अेक-दो महत्त्वपूर्ण पहलू लेकर अुनके बारेमें अपना मत, निर्णय और अुनके पीछे रही दृष्टि साफ शब्दोमे और सिद्धान्तके साथ किसी तरहका समझौता किये विना अुन्होने यहा पेश की है। यदि किशोरलालभाअी अिस विषयकी शास्त्रीय पुस्तक लिखने बैठते तो दूसरे ही ढगसे लिखते। अपने विषयका अच्छी तरह विश्लेषण करके और व्यवस्थित ढंगसे अुसके विभाग करके क्रमबद्ध लिखनेकी कला किशोरलालभाअी जानते है, और अिसी कारणसे अुनके निर्णय शास्त्रीय दृष्टिसे शुद्ध और अन्तिम है, अैसी छाप डालकर वे पाठकोको अपने

वशमें भी कर लेते हैं। लेकिन अिस पुस्तकके लेखोकी शैली कुछ अलग ही है। अिसका असर भी भिन्न प्रकारका होता है।

'स्त्री-पुरुष-मर्यादा' का विषय वडा नाजुक है। भावनाओ, मनोवृत्तियो, सामाजिक आदर्श-परंपरा और अपना अनुभव — अिन सारी चीजोको अेक ओर रखकर यदि शुष्क और नीरस शास्त्र ही लिखा जाय तो अुससे अिस विषयकी चर्चामे कोओी लाभ नही होगा। किशोरलाल-भाओीने अपने विषयमें वहुत कम लिखा है। अपने विषयमे लिखनेमे अुन्हें जरूरतसे ज्यादा सकोच होता होगा। लेकिन यहा विषयकी चर्चाने अुन्हें अपने वारेमे लिखनेके लिअे मजवूर कर दिया और अुनके अिस सकोचको थोडा मिटा दिया। स्त्री-पुरुष-सवधकी मर्यादा कैसी होनी चाहिये, यह प्रत्येक युग, प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज किसी हद तक अलग-अलग आदर्शके अनुसार तय कर लेता है। और अिस कारणसे आजकल कही-कही अैसा माना जाता है कि अिन मर्यादाके नियमोके पीछे केवल लोक-रिवाज और सामाजिक सकेत ही है, कोओी चिरतन तत्त्व नही है। किशोरलालभाओीने धर्मनिष्ठ हिन्दू समाजमें, और अुसमे भी गुजरात-महाराष्ट्रके लोगोमे, जो रिवाज चालू है या जो आदर्श माना गया है, अुसीकी यहा हिमायत की है। स्वामिनारायण सप्रदायके प्रति मशरूवाला परिवारकी भक्ति और श्रद्धा प्रसिद्ध है। किशोरलालभाओीने प्रज्ञा और श्रद्धाका सुन्दर समन्वय करके स्वामी सहजानन्दके अुपदेशका अध्ययन और पालन किया है। अिसके साथ ही गाधीजीका ब्रह्मचर्यका आदर्श, स्त्रीजातिकी स्वतत्रताका स्वीकार और कुटुम्ब-सस्थाको आध्यात्मिक पोषण देकर सजीव बनानेकी तीव्र लगन — अिन तीनो चीजोको अुन्होने अपना लिया है। किशोरलालभाओीकी भूमिका यह है कि अुन्होने यहा जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह मानस-शास्त्रकी दृष्टिसे, मनुष्य-स्वभावकी दृष्टिसे और हिन्दू आदर्शकी दृष्टिसे शास्त्रशुद्ध और व्यवहारमे लाने योग्य है और अिसी कारणसे वह सार्वभौम होने जैसा है। आदर्श और व्यवहार दोनोकी कसौटी पर कसकर अुन्होंने हमारे सामने अैसी मर्या-दाये रखी हैं, जिनसे समाज-हितकी अुचित रक्षा हो सके। अिनसे ज्यादा मर्यादाओको वे आदर्श-पालनका अतिरेक मानते हैं। परंतु यदि

कोअी कहे कि अुनके बताये हुअे नियमोंमें भी अतिरेक है, तो वे अिसे आसानीसे स्वीकार नहीं करेंगे। मनुष्यका शरीर पवित्र है; पुरुष और स्त्रीका शरीर अेकसा पवित्र है और पवित्र रखा जाना चाहिये। विकारी स्पर्शसे वह अपवित्र हो जाता है। अिसलिअे जितने विकार धर्म द्वारा मान्य किये गये हैं, अुन्हें छोड़कर बाकीके सब विकारोंके साथ हरअेक स्त्री-पुरुषको निरपवाद रूपसे लड़ना ही चाहिये। जीवनके साधारण और शुभ व्यवहारोंमें स्त्री-पुरुषके बीच जो स्पर्श या संबंध खोजे बिना अनायास हो जाय, अुसे किशोरलालभाअी निर्दोष मानते हैं, और व्यवहारसे बाहरका स्पर्श या संबंध अनावश्यक होनेके कारण अुसे त्याज्य समझते हैं।

आजकी दुनिया अिस भूमिकाको संकुचित या कड़ी कहेगी। सामाजिक जीवनमें अैसे भी स्पर्श देखे जाते हैं, जो न तो आवश्यक कहे जा सकते और न विकारी होते हैं। सामाजिक जीवनमें अपनी भावनाओंको प्रगट करनेके लिअे या सामाजिक आश्रयकी भूखको तृप्त करनेके लिअे अैसे संबंध जरूरी हैं; अितना ही नहीं, आजकी दुनिया — सयानी और विचारशील दुनिया — यह भी कहती है कि मनुष्यको अगर विकारोंके अुन्मादसे बचना हो तो अैसी निर्दोष खुराक अुसे मिलने देना चाहिये। मैं भूलता न होअूं तो लाला लाजपतराय जैसे लोग भी मानते थे कि मर्यादित स्त्री-सहवास मनुष्यको सौम्य और संस्कारी बनाता है, अुसकी वृत्तिको कठोर होनेसे बचा लेता है और अुसे पवित्रताकी झांकी कराता है।

अब स्थिति यह हो जाती है कि लालाजी या गांधीजी अिस विषयको जिस तरह पेश करेंगे, अुसके खिलाफ किशोरलालभाअीको कुछ कहना न रहेगा और किशोरलालभाअी जिस ढंगसे यह विषय रखते हैं, अुसमें गांधीजीको अेतराज करने जैसा कुछ न मिलेगा। फिर भी दोनोंकी भूमिकाका भेद स्पष्ट दिखाअी दे जायगा। भेद सिद्धान्तका नहीं है, बल्कि अिस प्रश्नके भीतर रहे अलग-अलग तत्त्वों पर कम-ज्यादा जोर देनेका है। कुछ बातोंमें गांधीजी कहेंगे कि मेरा कोअी अनुकरण न करे और फिर भी यदि कोअी अुनके अलौकिक होनेकी

बात कहे तो वे अुससे अिनकार कर देगे। और किशोरलालभाअी कहेंगे कि गाधीजीने अपनी निर्भय सत्यनिष्ठा और असाधारण पावित्र्य-निष्ठाके कारण अलौकिक स्थान प्राप्त किया। अिसीलिअे वे गाधीजीको अपवादके रूपमें स्वीकार करेंगे या अुनकी बाते सह लेंगे।

किशोरलालभाअीकी भूमिका और विवेचन-पद्धति मौलिक, निश्चयात्मक और ओजपूर्ण है। किसी हद तक स्त्री-पुरुष-सबधमे शिथिलता निर्दोष मानी जा सकती है, अैसा आप कहे तो वे पूछ सकते है यह ठीक हो तो भी अिससे लाभ क्या? अिसके बिना क्या काम नही चलता? तो फिर यह शिथिलताकी हिमायत किस लिअे? और मनुष्य निरुत्तर-सा हो जाता है।

आजके जमानेकी हवा अिससे बिलकुल अुलटी है। आजका जमाना स्वतत्रताके नाम पर, जीवनकी पूर्णताके नाम पर और अैसे अैसे अनेक तत्त्वोके नाम पर अिस विषयमे ज्यादासे ज्यादा छूट लेनेमें और अुसे अुचित सिद्ध करनेमे विश्वास रखता है। अिसलिअे बहुतसे लोगोको अैसा लगेगा कि किशोरलालभाअीकी यह सारी फिलासफी आजकी विचारधारासे अुलटी दिशामे जानेवाली है। परतु अुनके कट्टर विरोधियोमे भी अुनकी भूमिकाके प्रति आदर पैदा हुअे बिना नही रहेगा और विवेकशील मनुष्य अपनी भूमिकाको कुछ सौम्य बना कर किशोरलालभाअीके साथ यथासभव मेल बैठानेकी भी कोशिश करेंगे।

किशोरलालभाअीने जितना कुछ कहा है, अुस सबको स्वीकार कर लेने पर भी अुनके विवेचनसे हमें सतोष नही होगा, क्योकि आजके दूसरे कितने ही महत्त्वके प्रश्नोको अुन्होने सर्वथा छोड दिया है। स्त्री पुरुषकी तरह स्वतत्र रूपसे कमाअी करे या नही, आर्थिक क्षेत्रमें पुरुषके साथ होडमे अुतरे या नही — आजका यह प्रश्न अधिकाधिक महत्त्वका और चर्चाका विषय बनता जा रहा है। स्त्री-पुरुष-सबधके लिअे विवाह-विधिकी मान्यता जरूरी है या नही, अैसा प्रश्न अुठानेकी भी कुछ लोग हिम्मत कर रहे है। यह प्रश्न गौण है कि युवक-युवतियोंके लिअे सहशिक्षा अच्छी है या नही। (यद्यपि अिस प्रश्नके बारेमे भी हमारे यहा और विदेशोमें तीव्र मतभेद है।) लेकिन

सारी स्त्री-शिक्षाकी नींव बिलकुल अलग हो, बहुत हद तक अलग हो या शिक्षाके क्षेत्रमें स्त्री-पुरुषके भेद पर ध्यान ही देनेकी जरूरत नहीं, यह भी आजके युगका अेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया है। भिन्न वर्णों, लोगोंके बीच होनेवाले विवाहके विरुद्ध आज कोअी ज्यादा नहीं बोलता। लेकिन भिन्न धर्मवालोंके बीच विवाह हो या न हो, यह बड़ा चर्चास्पद विषय बन गया है और समय बीतने पर ज्यादा जटिल बन जायगा।

व्यक्तिके जीवन पर सामाजिक नियमन किस हद तक स्वीकार किया जाय, यह भी अिसी क्षेत्रका अेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

स्त्रियोंकी आर्थिक स्वतंत्रताकी बात आअी, अिसलिअे यह विचार भी मनमें अुठे बिना नहीं रहता कि किशोरलालभाअीका सारा विवेचन शरीर-श्रम न करनेवाले, सफेदपोश मध्यमवर्गके लोगोंको लक्ष्य करके लिखा गया है। गांवके किसान, शहरके मजदूर और कारीगर लोग जिस ढंगसे रहते और काम करते हैं, अुनके लिअे भी किशोर-लालभाअीका सूत्र संपूर्ण है। लेकिन अैसा नहीं लगता कि अुन लोगोंके जीवनके संबंधमें अुन्होंने यह विवेचन किया है। शायद अिस वर्गके भीतर कमसे कम विकृति होनेके कारण अिनके लिअे अैसी चर्चा आवश्यक न हो।

अिस सारी चर्चाकी भूमिका गृहस्थाश्रमकी पवित्रता और मोक्षके लिअे ब्रह्मचर्याश्रमकी अनिवार्यताके अूपर ही रची गअी है। किसी भी समाजमें, खासकर हिन्दू समाजमें, अिस चीजने अिनकार नहीं किया गया है। अभी-अभी महायुद्धके कारण युरोपमे कामशास्त्रकी चर्चा बढी है, व्यक्ति-स्वातंत्र्य और समाज-सत्तावादके संघर्षके कारण आदर्शोमें अस्पष्टता आअी है और अिसके फलस्वरूप नये मतो या वादोका जन्म हुआ है और हम तो पिछले कअी वर्षोसे युरोपकी प्रतिध्वनि या स्याहीचूस बन गये है। युरोपमे जिस चीजको अुत्तम और शास्त्रीय कहा जाय, अुसे झट अपनानेके लिअे हम ललचाते है। पश्चिमकी खुराक और पोशाक, पश्चिमकी शिक्षा, पश्चिमवालोका धर्म, सामाजिक और कौटुम्बिक बातोमें सुधार करनेकी अुनकी योजनाये, लिबरल दलकी

राजनीतिक भूमिका, धर्ममे प्रोटेस्टट दृष्टि, कलामे यथार्थवाद, जीवनमे व्यक्तिवाद — अिन सब चीजो पर हम क्रमश. विश्वास करते आये है। कानूनके जरिये सामाजिक और कौटुम्बिक बातोमे सुधार, विधि-विधानके अनुसार मान्य की हुअी राजनीतिक हलचल, मजदूर-दलकी सहानुभूति, सरकारके साथ सहयोग करके और सकटके समय सरकारको मदद करके अुसका अविश्वास दूर करनेकी कोशिश — अिस सबको स्वीकार करके हमने आजमा देखा है। और अब आर्थिक जीवनकी सर्वोपरिताका, समाज-सत्तावादका और आत्मा, परमात्मा, परलोक, मोक्ष अित्यादिके बारेमे अविश्वास या लापरवाहीका जमाना आया है। वर्गविग्रहको जीवनकी नीव माननेकी प्रथा भी लोकप्रिय बनती जा रही है। यहा प्रश्न यह नही है कि ये चीजें वस्तुत अच्छी है या बुरी। यहा तो अितना ही याद रखना है कि युरोप और अमेरिकाकी प्रतिध्वनिमात्र बननेकी वृत्ति हमने अभी तक छोडी नही है।

अैसे जमानेमे कोअी यदि आत्मविश्वासकी भूमिका पर स्वतन्त्रतासे यह लिखे कि हमारे परपरासे चले आये रिवाज या अुनके आदर्श शुद्ध है, वे सारी दुनियाके लिअे स्वीकारने योग्य है तो पहले तो आश्चर्य ही होगा, लेकिन आश्चर्यके साथ आनन्द भी हुअे बिना न रहेगा।

जीवन-शुद्धिका यह आदर्श पवित्र और निर्दोष है। अिसमे कुछ परिवर्तन करना जरूरी मालूम हो, तो अिस निबधमालाकी भूमिका स्वीकार करके अुसे थोडा-बहुत नया रूप दिया जा सकता है। हर-अेकको लगेगा कि यही अुत्तम नीति है।

‘न पढने योग्य अच्छी पुस्तकें’ नामक लेखमे किशोरलालभाअीने मानस-शास्त्रके अेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नको छुआ है।

जब वे हमारे समाजके दोष बताते है, तब लोगोंके प्रति अुनका प्रेम और अन्यायके प्रति अुनकी चिढ दोनो अेकसाथ चमक अुठते है। ‘स्त्रियो पर अत्याचार’ नामक प्रकरण हमारे लिअे बडेसे बडे चाबुक-का काम करता है। अिस चाबुकका प्रसाद अुन्होने महाभारतके भीष्मा-

चार्यसे लेकर समाजके सभीको चखाया है। लेकिन यह अुनका अन्याय है, अैसा कौन कह सकता है? 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहनेवाले और माननेवाले हमारे समाजने न तो स्त्रीको शक्तिरूप बनाया और न अबला कहते हुअे भी पूरी तरह अुसकी रक्षा की। अिसलिअे गाधीजीने अकुलाकर कअी बार यह कहा है कि अपने सतीत्वकी रक्षाके लिअे हमारे देशकी कोअी स्त्री अत्याचारीको तमाचा मार दे या सिहनी बनकर काट खाय, तो मै अुसे हिंसा नही मानूगा। यह तो कानूनका विरोध करनेवाले गाधीजीकी राय हुअी। लेकिन अपराधकी व्याख्या करनेवाले और अपराधीकी सजा ठहरानेवाले पीनल कोडके लेखकोने भी अिसी तरहकी स्पष्ट राय बताअी है। अुन्होने यह लिख रखा है कि अिस देशकी स्त्रियोकी असहाय स्थिति, पुरुष द्वारा स्त्री पर किये जानेवाले अत्याचारके सम्बन्धमे कानूनका सरक्षण लेनेमें जनताकी अरुचि, बात खुल जानेका डर वगैरा अनेक कारणोसे स्त्री-जाति अितने खतरेमे है कि दूसरे देशोंके बजाय अिस देशकी स्त्रीके लिअे आत्मरक्षाके खातिर अत्याचारीको मार डालनेके विषयमें अधिक छूट रखना हमने अुचित माना है।

स्त्रियोमे आत्मरक्षा करनेका साहस हम अवश्य पैदा करें, आवश्यक मालूम हो तो आत्मरक्षाकी कला भी अुन्हे सिखाये, लेकिन साथ ही पुरुषोको अपनी मनुष्यता और संस्कारिताका सामाजिक आदर्श भी सुधारना चाहिये। तभी यह सकट दूर होगा।

अपनी अधिकारपूर्ण वाणीसे अेक-दो नाजुक सामाजिक प्रश्न छेडकर किशोरलालभाअीने बहुतसे लोगोको विचार करनेकी प्रेरणा दी है। अैसे हितचिन्तकके वचनोको श्रद्धा और आदरके साथ ही पढना चाहिये।

वर्धा,
स्वातत्र्य-दिन, १९३७

काका कालेलकर

अनुक्रमणिका

तीसरा भाग : अन्तिम लेख

स्त्री-पुरुष-मर्यादा

पहला भाग

१

पुरुषोंके दोष

लम्बे समय तक अज्ञानमे या भूलभरे ज्ञानमे रहनेवाले मनुष्यको जब सच्ची वस्तुस्थितिका भान होता है, तब वह भान अगर अच्छे प्रकारका हो तो असे अैसा आनन्द और अचरज होता है और बुरे प्रकारका हो तो अैसा आघात पहुचता है कि आरभमे ही अुस ज्ञानमे पले हुअे सामान्य लोगोको अुसका खयाल भी नही हो सकता।

सौभाग्यसे मेरा पालन-पोषण अैसे परिवार और वातावरणमे हुआ कि समाज और परिवारोमे भीतर ही भीतर चलनेवाले कुछ अपवित्र व्यवहारोका अभी तक मुझे खयाल ही नही आया था। और जैसे-जैसे मुझे अिस अपवित्रताका पता चलता है, वैसे-वैसे मेरे हृदयको गहरा आघात पहुचता है। लेकिन जब मुझे यह मालूम होता है कि जिस हकीकतकी जानकारीसे मुझे तीव्र आघात लगता है, वह तो लगभग सामान्य ज्ञानका विषय है और अुससे दूसरोको न केवल आघात ही नही पहुचता, बल्कि वे अिस बारेमे मुझे अितनी ज्यादा बाते बता सकते है कि मेरे आघातोमे वृद्धि ही हो, तो मुझे बडा आश्चर्य होता है। साथ ही मुझे अिस बातका भी आश्चर्य होता है कि जो लोग पवित्र वृत्तिके है, वे अिस अपवित्रताको शान्त रहकर सहन कैसे कर पाते है?

मुझे यह सोचकर आश्चर्य होता था कि बुद्ध जैसे सूक्ष्म विचारकने शराब, मास, व्यभिचार और चोरी जैसी सर्वमान्य और सादी अनीतिको दूर करने पर ही क्यो अितना जोर दिया? अितनी बाते छोडने-वाला बुद्धका शिष्य होने लायक माना जाता था। लेकिन अिस बातको तो २४०० वर्ष बीत चुके। अुसके बाद आजसे कोअी सौ वर्ष पहले सहजानन्द स्वामी आये। अुन पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि अुन्होने कोअी बहुत बडी तत्त्वकी बाते नही बताअी, सिर्फ शराब,

मास, व्यभिचार और चोरी जैसी गादी अनीतिकी वातोसे दूर रहने पर ही जोर दिया है। अुनके सौ वर्ष वाद आज भी जव पिछडी हुअी जातियोके वीच काम करनेवाले लोगोकी वाते हम सुनते है, तो वे भी शराव और मास छुडानेकी ही वाते करते है। व्यभिचार और चोरीके वारेमे तो वे अेक शब्द भी नही निकाल सकते।

रानीपरज जातिकी स्त्रियोंके साथ होनेवाले अनैतिक वरतावकी वाते जव मैने सुनी, तो मुझे वडा दु.ख हुआ था। पूज्य गांधीजीको जव ये वाते मालूम हुअी, तो अुन्हे भी वडा दु.ख हुआ। और अुन्होने मेरी वातको ज्यादा प्रसिद्धि दी।* मैने अुस लेखमे कोअी वात वढा-चढाकर तो कही ही नही गअी थी, अैसा अुस दिन भी मेरा विश्वास था। वल्कि अिस वारेमे ज्यादा जानकारी रखनेवाले लोग मुझसे कहते है कि अुसमे जरूरतसे ज्यादा सकोच रखा गया था और जितना कहना चाहिये, अुससे कम कहा गया था।

मेरे लेखके समर्थनमे गांधीजीने हिन्दुस्तानके पुरुष-वर्ग पर यह आक्षेप लगाया है कि हमे स्त्री-जातिकी अिज्जत-आवरूकी ज्यादा परवाह ही नही है। मै देख रहा हू कि यह आक्षेप विलकुल सच्चा है। शील और पतिव्रताके धर्मके वारेमे शास्त्रोमे वडी-वडी वाते कही गअी है, फिर भी पुरुषको अपनी स्त्रीके सिवाय (और वहुत वार तो अपनी स्त्रीके लिअे भी नही) दूसरी किसी स्त्रीकी अिज्जतको धक्का पहुचने पर ज्यादा दु.ख ही नही होता। वह अिसे कूथली× (कुत्सित चर्चा) का विषय वना सकता है, दु.खका नही। यह मेरे सुनने और जाननेमे आया है कि पुरुषोका शादीसे पहले स्त्रीमात्रको न छूनेका और शादीके वाद पराअी स्त्रीको न छूनेका आग्रह वहुत मन्द होता है।

यह वात नही है कि मैने दुराचारी पुरुषोके वारेमे कभी सुना ही नही था। पिछला अितिहास याद करनेसे पता चलता है कि

---

* 'नवजीवन', १५–५–'२७

× अिस मूल गुजराती शब्दका अर्थ है, रस लेते हुअे पीठ पीछे किसीकी निन्दाभरी चर्चा करना।

मेरे ही परिवारमे कुछ आश्रित पुरुषोको स्त्रियोके साथ बेअदबीके बरतावकी कोशिश करनेके कारण घरसे बाहर करना पडा था। लेकिन अिसे मै सबकी नही, बल्कि कुछ अपवाद-रूप व्यक्तियोकी कुचाल समझता था। पर अिस मामलेमे थोडा गहरा अुतरनेसे समझमे आता है कि अैसे पुरुषोकी सख्या समाजमे अितनी थोडी नही है कि अुसे अपवाद मानकर छोड दिया जाय। अुसी तरह अैसा भी नही है कि यह दोष सिर्फ हलके माने जानेवाले नौकर-वर्गमे ही हो। मेरे पास कुछ अैसे दु खद अुदाहरण है, जिनसे मालूम हुआ है कि हमारे परिवारोमे बिलकुल छोटी अुमरकी लडकियोको भी परिवारमे या पडोसमे रहनेवाले पुरुषोसे भयभीत रहना पडता है।

हमारे समाजने पुरुषकी कुचालको बहुत बुरा नही माना, अुसका कडा तिरस्कार नही किया। लेकिन किसी स्त्री या लडकी पर स्पष्ट बलात्कार किया गया हो, तो भी समाज अन्दर ही अन्दर अुसकी अितनी बदनामी फैला सकता है कि लडकियोको अपने पर होनेवाले बलात्कारकी बाते अिस तरह छिपाकर रखनी पडती है कि घरके लोगोको भी अुनका पता नही चलता। कभी जानते भी है तो अैसी बदनामीके डरसे घरके सब जिम्मेदार लोग अेका करके अुस बातको दबा देते है। बहुत हुआ तो किसी दूसरे बहानेसे अुस आदमीको घरसे दूर रखनेका प्रयत्न किया जाता है, या स्त्री पर पहलेसे ज्यादा नियत्रण रखा जाता है। नतीजा यह होता है कि स्त्रीको अपने आप्त-जनोसे बलात्कारके खिलाफ जो सरक्षण मिलना चाहिये वह भी नही मिलता। लज्जाके कारण बलात्कारकी शिकार हुअी स्त्रीकी यह हिम्मत नही होती कि अपनी आपबीती किसीको सुनावे। अिसलिअे वह जिन्दगी भर गुप्तताका बोझ ढोती रहती है। पर बलात्कार करनेवाला पुरुष समाजमे नि सकोच घूमता-फिरता है। अुसे सभ्य माना जाता है और सज्जनो जैसा आदरभाव भी मिलता है, और वह शायद किसी दूसरी स्त्री पर भी कुदृष्टि डालता है।

मै अेक विधवाको जानता हू। विधवा होनेके बाद अुसका देवर अुसका गहना-गाठा लेकर चलता बना। अुस विधवाके अूपर

अेक छोटे बच्चेका और खुद अपना भरण-पोषण करनेका भार आया। अुसने गावमे अपने अेक जातिवालेके यहा बरतन-पानीका काम लिया। अेक दिन अुस आदमीने अपनी पत्नीकी अनुपस्थितिमे अुस विधवा पर बलात्कार किया। अुसे गर्भ रहा। अब वह स्त्री बेचारी कहा जाये? किसे अपना मुह दिखावे? अुसे लडकी हुअी। अुस लडकीको कौन पाले-पोसे? बलात्कार करनेवाला पुरुष तो निडर बनकर समाजमें घूमता है। लेकिन अुस स्त्रीका क्या हो? वह अगर आत्महत्या या बालहत्या न कर सके, तब तो अुसे पढरपुर या अैसा ही कोअी अन्य आश्रयस्थान खोजना रहा न?

मान लीजिये कि अिस व्यभिचारमे अुस स्त्रीकी भी सम्मति रही होगी, मान लीजिये कि यह बात खयालमे रखकर ही विधवाको पुनर्विवाहकी छूट देनी चाहिये। लेकिन ये तो दूसरी ही दृष्टिके प्रश्न हुअे। असल चीज तो यह है कि सभ्य माने जानेवाले परिवारोमें भी स्त्री निर्भय नही है। पुरुषकी साख अैसी नही है कि कोअी स्त्री अुस पर विश्वास रख सके।

और पुरुष क्या यह बात नही जानते? हम जानते है कि आम तौर पर स्त्रिया बडी अीर्षालु होती है, पतिके चाल-चलन पर अुनका विश्वास कम होता है। पुरुषकी शुद्ध रहनेकी शक्ति पर अविश्वास होनेके कारण और पुरुषके खिलाफ कुछ करनेकी सामान्यतः अुसमे शक्ति न होनेके कारण स्त्री अपनी जातिसे अीर्षा करती है। पर अिस अीर्षाकी जडमे तो पुरुषकी वफादारीके बारेमे अुसका अविश्वास ही है।

प्रतिदिन हमारे अनुभवमे जो बाते आती है, अुन्हे देखते हुअे अैसा नही लगता कि स्त्रियोका यह अविश्वास अकारण है। हमारे देशकी गालियोका प्रकार देखिये, हमारे सार्वजनिक और रेलवेके पेशाबघरो और सडासोकी दीवारो पर लिखी गदी बाते और भद्दे चित्र देखिये — कही भी आपको स्त्रीकी अिज्जत-आबरूके लिअे आदरकी भावना दिखाअी देती है? और यदि अैसा लगता हो कि यह निचले दरजेके लोगोकी हालत है, तो हमारी कचहरियोमे वकीलोके

कमरेमें बैठकर वहां चल रही बातें सुन लीजिये। स्त्री हर जगह भद्दे मजाकका ही विषय बनती है।

हम यह तो समझ सकते हैं कि क्या पुरुष और क्या स्त्री, विकार सभीमें होते हैं। और यह भी समझा जा सकता है कि अुन्हें निर्मूल करनेकी शक्ति अुनमें नहीं होती। यदि किसीकी यह भावना हो कि विषय-भोगमें पाप नहीं, बल्कि वह योग्य काम है, तो यह भी समझमें आने लायक बात है। लेकिन अिससे किसी स्त्रीको देखते ही और चाहे जिस समय पुरुषके विकार जाग अुठें, चाहे जिस स्त्रीके साथ वह बेअदबी करनेकी हिम्मत करे, विश्वास या वफादारीकी सारी मर्यादाओंको भूलकर जिस घरमें रहता हो अुसी घरकी लड़कियों पर कुदृष्टि डाले, तो यह अुसके घोर पतनकी निशानी है। जिस प्रजाको विषय-भोगमें अधर्मकी भावना न मालूम हो, अुसमें भी वफादारीकी भावना तो बहुत गहरी होनी ही चाहिये।

लेकिन यह प्रश्न सिर्फ वफादारी या नैतिकताका नहीं है, यह तालीम — आत्मसंयम — का भी प्रश्न है। किसी पुरुषमें विकार जोरोंसे अुठें यह अेक बात है, और अुसके कारण वह किसी स्त्री पर बलात्कार करे, अुसका अपमान करे या अुसके बारेमें भद्दी बातें कहे यह दूसरी बात है। अपने पड़ोसीके घरमें मिठाअी देखकर मेरा अुसे खानेका मन हो यह अेक बात है, और वहां जाकर मैं अुसे खा जाअूं या चुरा लाअूं यह दूसरी बात है। मिठाअी खानेकी अिच्छाको चाहे मैं न रोक सकूं, लेकिन पड़ोसीके घर जाकर अुसे खा जाने या चुरानेका काम न करने जितना संयम तो मैं जरूर रख सकता हूं। अुसी तरह कोअी निर्विकार न रह सके यह अेक बात है, और अपनी स्त्रीको छोड़कर किसी दूसरी स्त्रीको शरीर या वाणीसे दूषित करे यह दूसरी बात है। अितना संयम अुसमें होना चाहिये, समाजको अुसे सिखाना चाहिये और अुसका पालन भी करवा लेना चाहिये।

और अिस तरह स्त्रीके आदरकी रक्षा न होनेमें मेरे खयालसे जितने अुच्छृंखल या संयम न पालनेवाले पुरुष जिम्मेदार हैं, अुतने ही सदाचारी जीवन बितानेवाले पुरुष भी जिम्मेदार हैं।

अुच्छृंखल पुरुषोको सयमी और सदाचारी बनाना भले संभव न हो, परन्तु यदि प्रजाके सदाचारी भागका मत बलवान हो तो अितना तो हो ही सकता है कि वे अपनी अनीतिको अमलमें न ला सके, और अगर लावे तो वेश्याओकी तरह वे भी सदाचारी लोगोका आदर न पा सके, अपने समाजमें सभ्य पुरुषोकी तरह किसीसे मिल-जुल न सके। हमारे देशके लोगोकी यह मान्यता है कि युरोपका नैतिकताका आदर्श हमसे नीचा है। शायद अैसा ही हो। लेकिन यह बात भी विचारने जैसी है कि वहा स्त्रिया बिना किसी परेशानीके डरके जिस आजादीसे आधी-रातको भी घूम-फिर सकती है, वैसी हमारे यहा दिनमें भी नही घूम सकती। अुसका कारण केवल अूपर बताये सयमकी तालीम ही है।

हमारे यहा कितनी ही अनीति तो सदाचारी पुरुषोकी कमजोरीके कारण चलती है। कोअी शिक्षक किसी विद्यार्थिनीके साथ अनुचित सम्बन्ध रखे, तो विद्यार्थियोमे भीतर ही भीतर अुसकी चर्चा चलती है, शिक्षकोमें बात होती है, लेकिन दोनोमे से कोअी भी अिस बारेमें सचाअी जाननेकी या साफ शब्दोमे अपना विरोध प्रकट करनेकी हिम्मत नही करते। कोअी पुरुष समाजमे गुरुकी या दूसरी तरहकी प्रतिष्ठा भोगता रहता है। अुसके सम्बन्धमे आनेवाले लोग जान लेते है कि अुसके पास जाने-आनेमे हमारी बहू-बेटिया सुरक्षित नही है। अैसा जानकर शायद वे अुसके साथ अपना सम्बन्ध कम कर देते है; लेकिन अुसके पापका भडाफोड करनेकी बात तो दूर, अगर वह बेहया बनकर अुनके घर आने लगे तो वे अुसका निरादर करनेका भी साहस नही दिखाते। किसी पुरुषका चाल-चलन हमे अच्छा नही लगता, लेकिन वह समाजका अेक नेता माना जाता है। हम अुसके चाल-चलनकी अुपेक्षा करते है और अुसे अपनी सभामे आनेका न्यौता देते है, अुसकी अिज्जत करते है और कअी तरहसे अुसका गौरव बढाते है तथा जनताको भी वैसा करना सिखाते है। अुसके बारेमें हम खानगीमे जो राय जाहिर करते है, लोगोके सामने अुससे दूसरी ही राय बताते है। मानो यदि अुसका अितना गौरव न बढाया

गया, तो देशकी नाव ही डूब जायगी। अगर सदाचारी पुरुषोकी कमजोरी कम हो, तो अुच्छृखल पुरुषोको अपनी अुच्छृखलता पर नियत्रण रखना ही पडे।

समाजके विचारशील लोगोका — और अिस बारेमे स्त्रिया भी दोषी है — दूसरा दोष अनीतिको आपसकी कुत्सित चर्चाका विषय बनाना है। यहा अेक बात याद रखनी चाहिये कि अैसी चर्चा तभी हो सकती है, जब अुसके विषयमे हमे अनीति लगनेके साथ रस भी आता हो। कोअी स्त्री-पुरुष अपनी मा-बहन पर गुजरी हुअी बातकी अैसी कुत्सित चर्चा नही कर सकते, यदि कही होती हो तो वे दुःख या क्रोध प्रकट किये बिना अुसे सुन नही सकते। अपनी मा-बहनकी निन्दा सुनते समय अुन्हे दुःख या क्रोध अिसलिअे होता है कि वे अुनका आदर करते है, अुन्हे अपने कुलका भी अभिमान होता है। अगर यही आदर और अभिमान हमे हरअेक स्त्रीकी अिज्जत-आबरूके लिअे हो, तो किसीके पतन या अुस पर होनेवाले अत्याचारसे हमे दुःख होगा, हम अुसकी आपसमे गन्दी चर्चा नही करेगे। अैसी चर्चा या अत्याचार करनेवालेके दात तोड डालनेकी अिच्छा हो, यह समझमे आ सकता है, लेकिन रसके साथ अुसकी चर्चा होना बडे दुःखकी बात है। अिस बारेमे जैसा कि अूपर कहा गया है, स्त्रिया भी दोषी है। और दुःखके साथ कहना पडता है कि ज्यो-ज्यो अुमर बढती जाती है, त्यो-त्यो अिस तरहकी चर्चामे अुनका रस बढता जाता है।

कोअी यह कहेगे कि दूसरी जातियोके बनिस्बत हिन्दू जातिमे नैतिकताकी भावना ज्यादा है और मुसलमानोके बनिस्बत हिन्दू पुरुष स्त्रीके लिअे कम भयावह है। मै स्वीकार करता हू कि हिन्दू जातिमे ज्यादा नैतिकता होगी, लेकिन यह तो नही कहा जा सकता कि अुसमे वह सन्तोषजनक हद तक पहुच चुकी है। और यह भी नही कहा जा सकता कि वह नैतिकता स्त्री-जातिके प्रति रहनेवाले आदरके कारण है। मुसलमानोके बारेमे कही गअी बात सच है और अुससे दुःख होता है। वह हिन्दू-मुसलमानोके वैमनस्यका अेक कारण

बनी हुअी है। लेकिन हिन्दू स्त्री हिन्दू समाजमे निर्भय है और सिर्फ मुसलमानोका ही अुसे भय है, यह नही कहा जा सकता। वैसे ही कुलीन मुसलमानोके बारेमे अूपरकी बात सच नही है।

प्रस्थान, १९२७

२

नवयुवक और विवाह*

नौजवानोके मडलोमे आज सबसे ज्यादा जिस विषयकी चर्चा होती है, वह विवाह है। विवाहके बारेमे आज दो रिवाज हमारा ध्यान खीचते है। अेक है जाति-बन्धनका और दूसरा है वर-विक्रय, कन्या-विक्रय, दहेज, हुडा और जातिभोजके नाम पर कन्यापक्ष या वरपक्ष पर पडनेवाले आर्थिक बोझका।

अिन दोनोमे से जातिके बन्धनोको तोडनेकी आवश्यकताके बारेमे जितनी चर्चा आप लोगोमे होती मै सुनता हू, अुतनी आर्थिक बोझ डालनेवाले रिवाजोकी चर्चा होती नही सुनता।

अिसका कारण यह है कि जातिके बन्धन तोडनेके बारेमे चर्चा या हलचल करनेका आपमे जो अुत्साह पैदा होता है, वह स्वलक्षी भावोसे प्रेरित होता है। अुसके पीछे आपके दिलकी गहराअीमे यह अिच्छा रही होती है कि आपको अपने विवाहके लिअे ज्यादा बडा क्षेत्र मिले। यह भी सभव है कि प्रेम-विवाहके विचार भी आपके मनोरथोका अेक भाग हो, और वे भी आपको समाजके अिस रिवाजके खिलाफ आन्दोलन करनेकी प्रेरणा देते हो।

विवाहके विपयमे जातिके बन्धन ढीले करनेकी आवश्यकताके बारेमे कोअी शका ही नही हो सकती। अिसलिअे अपना सुख खोजनेकी

* सूरतमे युवक-सप्ताह मनाये जानेके अवसर पर ता० ४-१-'२८ को दिये गये 'युवक और समाज' नामके भाषणमे से।

भावनासे प्रेरित होकर आप अिस दिशामे हलचल करे, तो केवल अिसी कारण अुस पर कोअी आरोप नही लगाया जा सकता। लेकिन चूकि अिस विषयमे आपका स्वार्थ है, अिसलिअे आपसे समाज और विजातिके प्रति आदरकी, विनयकी, मर्यादाकी और सकोचकी अेक खास तरहकी अपेक्षा रखी जाती है। अगर जाति-बन्धन तोडनेकी हलचल आप समाज और विजातिके प्रति आदरकी भावना रखे विना शुरू करे, तो समाज या विजातिको अूचा नही अुठायेगे, वल्कि अेक हलका आदर्श अुपस्थित करेगे।

आप लोगोमे किस तरहका आदर, विनय, मर्यादा और सकोच होना चाहिये, अिसे मै साफ शब्दोमे वता दू।

जातिके वन्धन वुरे है और अुन्हे तोडना चाहिये तथा विवाह आपकी अपनी पसदसे ही होना चाहिये, अैसे विचार आपके मनमे जम गये हो लेकिन समाज और स्त्रियोके लिअे आपके दिलमे आदर न हो, तो आप समाजमे विकारी दृष्टिसे घूमेगे। आप जाति-वन्धनकी परवाह न करे और अपनी पसन्दसे ही विवाह करनेका आपका निश्चय हो, तो भी अुसका यह मतलव नही — न होना चाहिये — कि किसी स्त्री या लडकीको आप विकारी दृष्टिसे देखते फिरे, या अुसके साथ परिचय होते ही अिस वातका विचार किये विना कि कैसे सयोगो और सवधोमे वह परिचय हुआ है घर-ससार रचनेकी वातको दिलमे जगह दे। जिस तरह जानवर ऋतुकालमे अपनेसे भिन्न लिंगवाले जानवरको कामदृष्टिसे ही देखते है, अुसी तरह अगर आप समाजमे लडकियोको विकारभरी निगाहसे ही देखते फिरे, या मूलत शुद्ध दृष्टिको विकारी बनने दे, तो कहा जायगा कि आप अिस विचार और अपने स्वलक्षी भावोको अविवेकके रास्ते ले जाते है। अुदाहरणके लिअे, अगर कोअी शिक्षक विद्यार्थीके नाते अपने सपर्कमे आनेवाली लडकीके साथ या कोअी विद्यार्थी अपने साथ पढनेवाली लडकीके साथ वाप-वेटी या भाअी-वहनके अलावा दूसरा कोअी सम्वन्ध हो सकनेके विचारको अपने दिलमे जगह दे, तो वह समाजका द्रोह करता है, स्त्री-जातिका अनादर करता है और जिस

लडकीके सम्बन्धमे अैसा विचार रखता है, अुसके और अुसके सगे-सम्बन्धियोके साथ विश्वासघात करता है।

स्त्री-जाति आपमे बिलकुल सुरक्षित रहे, आपकी निगाहसे भी अुसे डरनेका कारण न रह जाय — अितनी नम्रता, अितने सकोच और अितने आदरके साथ आप समाजमे न बरते, तो आप समाजको तरक्कीके रास्ते नही ले जा सकेंगे, और जीवनको दबाकर रखनेवाले बन्धनोमे से समाजको मुक्त करनेके आपके विचार अिस तरह सफल नही होगे कि वह सुखी बन सके। अिसलिअे आपको अिस तरहका अभयदान समाजको देना ही चाहिये। अिसीमे समाजकी रक्षा है और आप लोगोकी कुलीनता तथा सज्जनता है।

लेकिन अगर आपका विचार विवाहित जीवन बितानेका हो, जातिके बन्धन तोडनेकी आपकी अिच्छा हो और अपनी पसन्दसे आप अपना साथी खोजना चाहते हो, तो आपको क्या करना चाहिये — यह प्रश्न आपको पूछने जैसा लगेगा।

अिस सम्बन्धमे गाधीजीने अपने दूसरे पुत्रका विवाह करते समय जो रास्ता अपनाया था, अुससे आपको शिक्षा मिल सकती है। अिस-लिअे मैं यहा अुसका विस्तारसे वर्णन करता हू। गाधीजीके पुत्रने अुन्हे बताया कि अुसकी अिच्छा किसी भी तरह जल्दी विवाह करनेकी है, और अिस बारेमे अुसने गाधीजीकी मदद और राय मागी। गाधीजीने दोनो बाते मजूर की और जाति-बन्धन तोडकर विवाह करनेका निश्चय किया। अुन्होने खोज की और अेक लडकी अुन्हे पसद करने जैसी लगी। लेकिन वह विवाह करनेके लिअे राजी नही थी। दूसरी लड़की पसन्द की। वह विवाहित जीवन बिताना चाहती थी। गाधीजीने अपनी स्वाभाविक सरलतासे अपने पुत्रके गुण और दोष लडकी और अुसके मा-बापको बताये और अुन्हे विचार करनेके लिअे कहा। गाधीजीने अुस लडकीके गुण-दोष अपने पुत्रको लिख भेजे और अपनी तरफसे अुसकी सिफारिश की। लडकीके शरीरमे अेक दोष था। अेक मित्रने गाधीजीको सुझाया कि अुन्हे लडके-लडकीको मिला देना चाहिये, दोनोका अेक-दूसरेके साथ परिचय होने देना चाहिये और यह देखना

चाहिये कि लडका लडकीके शारीरिक दोषको निभा लेनेके लिअे कहा तक तैयार है तथा परिचय हो जानेके वाद दोनो अेक-दूसरेके साथ विवाह करनेके लिअे राजी होते है या नही।

गाधीजीको यह सुझाव पसन्द नही आया। अुन्होने कहा "मुझे यह तरीका ठीक नही लगता। आज ये दोनो विवाह करनेके लिअे अधीर हो रहे है। अिनकी दृष्टि आज मोहसे अधी वनी हुअी मानी जायगी। ये दोनो मिलकर 'हा' कहे, तो भी यह नही कहा जा सकता कि अुन्होने सोच-विचारकर हो' कहा है। अुनके मुहसे 'ना' निकल सके, अैसे जितने भी कारण हो सकते थे, सब दोनोको साफ-साफ समझा दिये गये है। जिन स्त्री-पुरुषोमें विषय-भोगकी अिच्छा पैदा हुअी है, वे अेक-दूसरेको सकाम दृष्टिसे देखनेके लिअे ही अिस तरह मिले और अैसी दृष्टि अेक वार रखनेके वाद विवाह करने या न करनेका निर्णय करनेकी छूट लेना चाहे, यह मुझे अुचित नही मालूम होता। अिसमे समाजकी और खासकर स्त्री-जातिकी रक्षा नही है। यह समाजको अपवित्र वनानेवाली चीज है।"*

---

* अधिक अनुभव और विचारसे मालूम होता है कि गाधीजीके शब्दो द्वारा सूचित होनेवाला साथी खोजनेका नियम हमेशा सख्तीसे पालना सभव नही है। कच्ची अुमरमे यानी जहा वर पच्चीस वर्षके भीतरका विवाहकी अिच्छा रखनेवाला युवक हो और कन्या वीससे कम अुमरकी हो तथा दोनो अैसे सस्कारवाले हो कि अपने बडे-वूढोके मार्फत ही अपना जीवन-साथी ढूढ सकते हो, वहा तो यह नियम ठीक है। लेकिन वहा भी अुनकी सम्मति मिलनेके पहले अेक-दूसरेको देखनेका भी मौका न देना आजके जमानेमें सभव नही मालूम होता। जहा दोनोकी अुमर विवाहके योग्य हो, दोनो शिक्षा वगैरा पाकर किसी धन्धेमे लग चुके हो और वादमे 'प्रेम' हो जानेके कारण नही, वल्कि 'अकेले' पड जानेके कारण योग्य साथीकी खोज करते-कराते हो, वहा तो दोनोको अेक-दूसरेको देख-मिलकर और अपने-अपने विचारो, कल्पनाओ, भावनाओ, आदर्श आदिका आदान-प्रदान

मैं चाहता हूं कि समाजकी और स्त्री-जातिकी पवित्रताकी रक्षाके लिअे अिस आग्रहको आप लोग अच्छी तरह समझें। खास करके पुरुषोंको ध्यानमें रखकर मैं यह बात कहता हूं। आज आप अेक युवतीको अपनी पत्नी बनानेकी दृष्टिसे देखें, थोड़े दिन तक यह दृष्टि अुसके प्रति रखकर अपना मन अुसकी तरफसे खींच लें और दूसरी किसी युवतीको अैसी दृष्टिसे देखें, तो यह व्यभिचारीकी दृष्टि है। मैं जानता हूं कि सभ्य कहे जानेवाले समाजमें अैसा व्यभिचार चलता है और

करके अपना निर्णय करनेकी सुविधा दिये बिना काम चल ही नहीं सकता। लेकिन यह मान लेनेकी भी जरूरत नहीं है कि काफी देख-परख और सोच-विचारके बाद अपना विवाह निश्चित करनेवाले युवक-युवती बहुत समझदारीसे ही अिस निर्णय पर आयेंगे। कअी बार अैसा भी होता है कि बहुत दिनोंकी पहचानके बाद अनेक कन्याओं या वरोंको नापसन्द करनेवाले युवक-युवतियां भी अेक-दो घंटेमें ही अेक-दूसरेको पसंद कर लेते हैं, और बहुत दिनोंके परिचयके बाद पसन्दगी करनेवाले भी शादीके थोड़े दिन बाद ही पछताने लगते हैं और आपसमें कलह करने लगते हैं। विवाह-सम्बन्ध चाहे मां-बाप तय करें, दोनोंकी कुण्डलियां देखकर ज्योतिषी तय करें, युवक-युवती अेक-दूसरेके प्रेममें पड़कर तय करें, विषय-भोगकी अिच्छासे तय करें, या व्यवहारकी दृष्टिसे जांच-पड़ताल करके और नफा-नुकसानका हिसाब लगाकर तय करें, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह वर-कन्या दोनोंको हर तरहसे सन्तोष देनेवाला ही साबित होगा। यह तो आगेके अनुभव परसे ही मालूम हो सकता है। पर बड़ी अुमरके स्त्री-पुरुषोंके विवाहमें दोनोंकी सम्मति अनिवार्य समझनी चाहिये, और सम्मति या असम्मतिका निर्णय करनेके लिअे बड़े-बूढ़ोंको अुन्हें योग्य सुविधा देनी चाहिये। यह विवाह सुखदायी न सिद्ध हो, तो भी बड़े-बूढ़ों पर यह आक्षेप तो नहीं आयेगा कि 'मां-बापने हमें कुअेंमें डाल दिया।' वर-कन्याको अपना निर्णय खुद करनेकी सुविधा देनेसे मां-बापको अितना लाभ जरूर होगा। (जनवरी, १९४८)

अिसमे अेक तरहकी हिम्मत भी मानी जाती है। लेकिन अिसमे आप अपने स्वलक्षी भावोके वेगको अनुचित रास्ते ले जाते है। अिसमे न आपका हित है, न समाजका, और स्त्री-जाति वडे भयमे रहती है।

अगर आपको अैसा लगे कि विवाह किये विना आप सतोषी जीवन नही विता सकते और विवाहके लिअे आप जातिके ही वधनोमे नही वधे रहना चाहते, तो आपके लिअे सवमे सीधा रास्ता यह होगा कि आप अपने विचारोको जाननेवाले किसी मित्रके मार्फत अिस दिशामे प्रयत्न करे। अगर आपमे कामवासना तीव्ररूपमे जाग्रत हुअी होगी, तो आपका प्रेम-विवाह करनेका खयाल सिर्फ मोह-लग्न वन जायगा। यह सच है कि आपके मित्रोकी पसन्दगी भूलभरी हो सकती है। अिसलिअे अुनकी पसन्दगीको माननेके लिअे आप वधे हुअे नही है। अिसके लिअे आप अपनी सगिनी वननेकी अिच्छा रखनेवाली कन्याकी योग्यताके वारेमे मर्यादामे रहकर जाच भी करा सकते है। लेकिन यह जाच — जैसा कि आजकल कअी जगह चल रहा है — अगर कन्याको घर वुलाकर अुसके साथ वाते या हसी-मजाक करनेकी कोशिश करके, अुससे चाय-दूध तैयार करवाकर, अुसके साथ थोडे दिन घूमने-फिरने जाकर या अैसे ही दूसरे तरीकोसे की जाय तो वह वेहूदी कही जायगी। अिसमे स्त्रियोकी और अुनके मित्रोकी विडम्वना है। योग्यताका पता लगानेकी दृष्टिमे अिस तरहकी जाचका कोअी मूल्य नही है।

आप लोग समाजमे अैसा सस्कार दृढ कीजिये, जिससे शादीके पहले कुलीन पुरुष या स्त्री अपनेसे भिन्न जातिके व्यक्तिकी तरफ शुद्ध और निर्मल दृष्टिसे ही देख सके। यह भावना अपनेमे मजवूत वनाअिये कि विवाह करनेके वाद अपने जीवन-साथीके प्रति आपको वफादार रहना ही चाहिये। अपने शरीरके वारेमे आप पवित्रताकी अैसी भावना वढाअिये, जिससे आप अुसे दूसरेके ससर्गमे दूषित न कर सके। और अपने साथीके प्रति वफादारीकी अैसी भावना रखिये कि अुसे आपका दूसरेके ससर्गसे अदूषित शरीर ही प्राप्त करनेका अधिकार है। यदि आपकी वासनाये वहुत वलवान हो और अेकपतिव्रत या अेकपत्नीव्रत पालना आपको सभव न लगे, तो भले आप अपने साथीके मरनेके वाद दूसरा

विवाह करनेकी छूट रखे, यदि आपके और आपके साथीके स्वभावके बीच मेल बैठ ही न सके, तो आप भले तलाकका अैसा कोअी रिवाज दाखिल करे, जो दोनोके लिअे न्यायोचित हो। लेकिन जब तक आप पति-पत्नीके रूपमे साथ-साथ रहते है, तब तक आपको अेक-दूसरेकी वफादारीके लिअे बहुत ज्यादा आग्रह रखना चाहिये। अिससे आपके स्वलक्षी वेग मर्यादित रहेगे, वे दिनोदिन शुद्ध बनेगे और समाज निर्भय तथा पवित्र बनेगा।

बम्बअीके अखबारोमे हम रोज वेश्यालयोके समाचार पढते हैं। स्त्रियो पर होनेवाले जुल्मोकी बाते भी लगभग रोज अुनमे आती है। समाजमे विधवाओके कठिन परिस्थितियोमे फस जानेके अुदाहरण भी हम जानते है। हमारे सभ्य माने जानेवाले समाजमे किसी न किसीकी गुप्त निन्दा होती भी हममे से हरअेकने सुनी होगी। रानीपरज लोगोंके अिस प्रदेशमे जगह-जगह रानीपरज स्त्रियोको छला जाता है। विदेशोमे रहनेवाले पुरुषोमे से बहुतसे अनीतिमय जीवन बिताते है। अैसा हर देशमे चलता है, अिसका आप विचार करे।

विवाहके ही बारेमे आप परलक्षी भावोसे प्रेरित होकर समाजके जिन अनुचित रिवाजोका विरोध कर सकते है, अुनमें अेक रिवाज दहेजका है। गुजरातकी दो-चार जातियोको छोडकर सारे हिन्दुस्तानमे कन्या अपने मा-बापके लिअे भारी चिन्ता और अनर्थका कारण बन जाती है। शादीके समय वरको दहेजकी भारी रकम देने और कुछ जगहो पर शादीके बाद जन्मभर कन्याको पालनेकी जिम्मेदारी मा-बाप पर समाजके बुरे रिवाजके कारण लाद दी जाती है। शादीकी अपनी चर्चाओमे आप अिस रिवाज पर अधिक विचार करते नही मालूम होते। वैश्य जातियोमे होनेवाले कन्या-विक्रयके बारेमे आप बहुत विचार नही करते। नौजवान अगर सकल्प कर ले, तो पाच-दस वर्षमे अिन बुरे रिवाजोको जडसे मिटा सकते है। अगर आप खुद पैसा देकर या लेकर अिस रिवाजके वश न होनेका पक्का निश्चय कर ले, तो वह लम्बे समय तक नही टिक सकता।

जो नया जमाना आ रहा है, अुसमे नौजवान स्त्री-पुरुषोके बीचका सहवास और सपर्क बढता जायगा। मा, बहन या बेटीके साथ भी अेकातमें नही बैठना चाहिये — अिस पुरानी मर्यादाका पालन नही किया जा सकेगा। बहुतसे काम पुरुषो और स्त्रियोको साथ मिलकर करने पडेगे। अेक-दूसरेके निकट परिचयमे रहना होगा। समाजकी अिस दिशामे गति समाजकी अुन्नति करनेवाली बने, अुससे समाजका या व्यक्तिका नैतिक अध पतन न हो — अिसका आधार अिस बात पर रहेगा कि आप लोग कितनी पवित्र दृष्टि रखकर समाजमे रहते है, अपने स्वलक्षी आवेगोका कितने सकोच, विनय और मर्यादासे पोषण करते है और समाज तथा स्त्री-जातिके लिअे अपने मनमे कितना आदर रखते है।

नैतिक दृष्टिसे भूल होने जैसा मालूम होने पर समाजकी पवित्रताके लिअे सावधानी रखनेवाला मनुष्य कैसा बरताव करे, अिसका अुदाहरण हमे स्वर्गीय दयाराम गीडुमलमे देखनेको मिलता है। श्रीमती अुर्मिलादेवी और समाजके साथ अुन्होने जैसा बरताव किया, अुसमे हमे अुनकी सज्जनता और कुलीनता दिखाअी देती है।* अुसमे समाज और

---

* श्री दयाराम गीडुमलका किस्सा लोग भूल गये होगे, अिसलिअे अिस अुल्लेखको समझनेके लिअे थोडेमे अुसे यहा देना ठीक होगा। ये सज्जन अूचे ओहदे पर काम करनेवाले अेक सरकारी नौकर थे, और सेवानिवृत्त होनेके बाद बम्बअीके सामाजिक कामोमे अग्रगण्य भाग लेते थे। सोशियल सर्विस लीग कायम करनेमें अुनका खास हाथ था और अुनकी मददसे श्री अुर्मिलादेवी वह संस्था चलाती थी। अुनकी सज्जनता और चरित्रके लिअे बम्बअीकी जनतामे अुनका बडा आदर था।

अेक दिन बम्बअीके अखबारोने जाहिर किया कि श्री दयाराम गीडुमलने सिक्ख-विधिके अनुसार श्री अुर्मिलादेवीसे शादी की है। अुनकी पहली पत्नी अभी जीवित थी। अिससे स्वभावत अिस समाचारसे जनतामें बडी खलबली मची और दोनोकी काफी निन्दा हुअी। दोनोकी जिन्दगी भरकी अिज्जत धूलमें मिल गअी। अितना ही नही, अिससे जनताके मनमे सामाजिक सस्थाओके लिअे अनादर भी पैदा हो गया।

स्त्री-जाति दोनोके प्रति आदरकी भावना प्रकट होती है । अिससे अुलटा प्रसिद्ध अुदाहरण विश्वामित्रका है । अुन्होने जिस तरह मेनकासे सबध किया और बादमे जिस तरह मेनका और शकुन्तलाका त्याग किया, अुसमे अुन्होने अपने आचरणसे अुत्पन्न होनेवाली जिम्मेदारीकी अुपेक्षा करके केवल अपने स्वलक्षी आवेगोका अमर्यादित पोषण ही किया था। विश्वामित्रके जैसा आचरण हम दुनियामे रोज-रोज और जगह-जगह होता सुनते है । अुसका परिणाम कुवारी लडकियो, विधवाओ, बच्चो और अनाथाश्रमोको भोगना पडता है। अैसी कथा है कि विश्वामित्र राजर्षिसे ब्रह्मर्षिके पद पर पहुचे थे । लेकिन यह कथा स्वार्थी भावोके पोषणमे ही अमर्यादित कर्तृत्व-शक्ति लगा देनेका अुदाहरण है। अुसमे किसी तरहके समाज-कल्याणकी, दूसरोको सुखी करनेकी भावनाकी प्रेरणा मालूम नही होती।

विवाहके बारेमे नौजवानोके मडलोमे बहुत ज्यादा चर्चा होते मै सुनता हू। अिसीलिअे मैने अिस विषयकी अितने विस्तारसे चर्चा की है। अिसके लिअे आप मुझे क्षमा करेगे।

प्रस्थान, १९२८

अिसके बाद श्री दयाराम गीडुमल सारे सामाजिक कार्योंसे अलग होकर बिलकुल निवृत्त हो गये। अितना ही नही, अुसके बाद बम्बअीके अेक अुपनगरमे रहते हुअे भी वे मानो प्रायश्चित्तके रूपमे अेक कोनेमे रहनेवाली विधवाकी तरह अेकातवासमे रहे और अुन्होने शोक मनाया। वे गाधीजीसे भी बडे सकोचसे मिले।

श्री अुर्मिलादेवीकी प्रसूतिकालमें मृत्यु हो गअी। अुनके बालकको अुनके माता-पिताने बडा किया। लेकिन वह २०-२२ की अुमरमें मर गया।

श्री दयाराम गीडुमलको भी मरे अब लगभग २५ वर्ष हो चुके होगे। (जनवरी, १९४८)

३

ब्रह्मचर्यकी साधना

[गुजरात महाविद्यालयके स्नेह-सम्मेलनके मौके पर श्री किशोरलालभाअीसे अेक यह प्रश्न भी पूछा गया था 'तरुण विद्यार्थी ब्रह्मचर्यका भलीभाति पालन कर सके, अिसके लिअे आज शालाओको क्या क्या करना चाहिये ?' अिसका अुन्होने जो अुत्तर दिया था, वह नीचे दिया जाता है। —प्रकाशक]

यह याद रखना चाहिये कि ब्रह्मचर्यका भग मानसिक और शारीरिक दोनो प्रकारके विकारोका परिणाम है। यह भग पहले मानसिक होता है और बादमे शारीरिक हो जाता है।

किसी अिन्द्रियको लम्बे समय तक अेक ही तरहके कामका अभ्यास कराया जाय, तो अुसे किसी प्रयासके बिना भी धीरे-धीरे अुसी तरहका काम करनेकी आदत हो जाती है। अैसा अभ्यास करनेसे टाअिपिस्टोकी अगुलिया बिना देखे टाअिप करती जाती हैं; गवैयोके हाथ ताल देते रहते हैं। नीदमे और सन्निपातमे भी अिस प्रकारकी पडी हुअी आदतोकी क्रियाये देखी जाती है।

अुसी तरह लबे समय तक अब्रह्मचर्यके रास्ते लगे हुअे विद्यार्थीकी विपयेन्द्रियको जाग्रत हो जानेकी अैसी आदत पड जाती है कि स्पष्ट प्रयासके बिना ही नही, बल्कि अिच्छाके विरुद्ध और बेबसीसे अुसके ब्रह्मचर्यमें दोप पैदा होते रहते है। अैसा दु खद अनुभव है कि सद्भावसे सुनी हुअी ब्रह्मचर्यकी महिमा भी अुसमे अनचाहा वीर्यदोष पैदा करती है। स्नायुओको पडे हुअे अिस अभ्यासका — शारीरिक विकारका — मानसिक विकारसे अलग विचार किया जाना चाहिये।

अिसके लिअे अेक तो विद्यार्थीको स्वय यह ध्यान रखना चाहिये कि पेटके निचले भाग पर कभी बहुत बोझ न बढ जाय, शिक्षक भी अिसका ध्यान रखें। यह अनुभवकी बात है कि टट्टी-पेशाबकी हाजतको

रोकनेसे विषयेन्द्रिय जाग्रत होती है। रातमें अुठनेके आलसके कारण वहुतेरोको लम्बे समय तक पेशाव रोकनेकी आदत होती हे। अिसका नतीजा वीर्य पर वुरा होता है। अिसका अेक अुपाय तो यह है कि रातमे अेकसे दोके वीच विद्यार्थीको अुठाकर पेशावके लिअे ले जाया जाय; या कोअी अैसी चीजका सेवन किया जाय, जिससे रातमें पेशावकी हाजत न हो। सोते समय दो-तीन वादाम खानेसे वहुधा रातमे अुठना नही पड़ता। लेकिन यह अुपाय सवके लिअे कारगर हो सकता है या नही, यह अनुभवसे देखना होगा।

अब्रह्मचर्यमे से ब्रह्मचर्य-पालनका प्रयत्न करनेवालेको खुराकमें अैसी चीज नही लेनी चाहिये, जो अुसे प्रतिकूल मालूम हुअी हो। सभव है जो अब्रह्मचर्यके दोषमे पडा ही न हो, अुसके लिअे यह खुराक नुकसानदेह न भी सावित हो। अिसलिअे मै यह कहनेको तैयार नही कि सामान्यतः ली जानेवाली खुराकमे से अमुक चीज अब्रह्मचर्यका दोष अुत्पन्न करनेवाली होती ही है। लेकिन जो अिस दोषका शिकार वन चुका है, अुसे खुराकके वारेमे कमसे कम कुछ समय तक तो सावधानी रखनी ही चाहिये। कौनसी खुराक किसके लिअे प्रतिकूल है, यह हरअेकको अपने लिअे स्वय निश्चित करना चाहिये। मुझे रातके समय खिचड़ीका भोजन या सोते समय गरम-गरम दूध अुत्तेजक मालूम होता था। अेकादशीके दिन व्रत रखनेके लिअे मन तैयार हो, तो भी रातमे मूगफली जैसी चीजका फलाहार अुत्तेजक मालूम होता था। अगर दूसरे किसीका यह अनुभव हो तो वह अिससे लाभ अुठावे।

लेकिन आज मुझे रातमे खिचडी खाने या गरम दूध पीनेसे वीर्यदोषका अितना डर नही लगता। पर यह खुराक मेरे लिअे कुपथ्य होनेके कारण दमका डर रहता है। मतलब यह कि जिसके लिअे जो खुराक कुपथ्य हो, अुसमे — अगर अुसका मन विकारसे भरा हो — वह वीर्यदोष पैदा करेगी और शायद दूसरे दोष भी पैदा करे। परतु यदि अुसका मन विकारोका सामना करनेके लिअे थोडा मजवूत वन चुका हो, तो वह खुराक दूसरे दोष चाहे पैदा करे लेकिन वीर्यदोष न भी पैदा करे। तात्पर्य यह कि यदि मन विकारोकी तरफ झुका हुआ

रहता हो, तो खुराकका असर विशेष रूपसे वीर्यदोष पैदा करनेवाला होता है, अैसी मेरी राय है। अिसलिअे जब तक मनको विकारोके साथ जोरोसे संघर्ष करना पडता है, तब तक खुराकके बारेमे सावधानी रखनी चाहिये।

दूसरी ओर जो चीज वीर्यको गाढा बनानेवाली या स्नायुओको ढीला रखनेवाली हो, वह छोडने लायक नही है। परन्तु अिसके लिअे दवाओके विज्ञापन हमारे सलाहकार नही बनने चाहिये। दूधके साथ थोडा जायफल लेनेसे मुझे हमेशा अच्छा अनुभव हुआ है। कहा जाता है कि जायफलमे वीर्यको गाढा करनेका गुण है, अुसके सेवनसे नीद भी अच्छी आती है। विद्यार्थीको नीदकी जरूरत होती है। और बहुत बार कोशिश करने पर भी सो न सकनेवाला विद्यार्थी अब्रह्मचर्यका दोष करके ढीला बनकर सो जाता है, अैसा अनुभव है। अिसलिअे जिस अुपायसे झट गहरी नीद आ जाय, वह ब्रह्मचर्यके लिअे लाभदायक है।

अिस कारणसे अैसी व्यवस्था करना ठीक होगा, जिससे विद्यार्थी सोनेके पहले खेलकर या काम करके अच्छी तरह थक जाय। साथ ही अिस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि यह थकावट विद्यार्थीके शारीरिक विकासको नुकसान न पहुचावे। परन्तु यदि काफी पौष्टिक और सात्त्विक खुराक मिले, तो बढते खूनमे बहुत कमजोर शरीरवाले विद्यार्थियोको छोडकर दूसरोके लिअे अतिश्रमकी चिन्ता करनेकी कम सभावना रहेगी।

वीर्यदोष होनेके कारण शरीरको अुपवास आदिसे दुर्बल बनानेकी बातको मै गलत समझता हू। क्योकि अुपवास हमेशा जारी नही रखे जा सकते। अिसलिअे अुपवास छोडनेके बाद पेट पर थोडा भी बोझ बढनेसे वीर्यदोप हो जाता है। दूध, मक्खन आदि शरीरको पुष्ट बनानेवाली खुराकका त्याग भी मुझे ठीक नही मालूम होता। हा, युक्ताहारकी मर्यादा अवश्य पालनी चाहिये।

ये तो मैने ब्रह्मचर्यके पालनमे सहायक होनेवाली स्थूल बाते कही।

लेकिन अब्रह्मचर्यकी जड तो मनोविकारमें है, यह अच्छी तरह याद रखना चाहिये।

अर्थात् सब स्थूल नियमोका पालन करते हुअे भी अगर मनके सामने विकारी वातावरण हो, तो ब्रह्मचर्यका पालन नही किया जा सकता।

जैसे किसी तेज झरनोवाले कुअेको साफ करना हो तो अुसके झरनोमे गुदडी या मोटा कपडा ठूसकर अुसका पानी अुलीचना चाहिये, वर्ना वह कभी खाली नही हो सकता, अुसी तरह मनको निर्मल और शुद्ध बनानेके लिअे अुसमे घुसनेवाली चीजोकी तरफ खूब ध्यान देना चाहिये।

जिस विद्यार्थीको शृगार रससे भरी कहानियो, नाटको, काव्यो, चित्रो आदिका अनिवार्य रूपमे अध्ययन करना पडता हो, जो विद्यार्थी सिनेमा और नाटकशालामे जाता हो, होटलका खाना खाता हो, नये शादी किये हुअे और नया भोग भोगनेवाले विद्यार्थियो या शिक्षकोके बीच रहता हो और विलासी वार्तालापमे रचा-पचा रहता हो, अुसके लिअे चाद्रायण व्रत करके भी वीर्यको स्थिर रखना कठिन है।

हाअीस्कूलोके अूचे दरजोसे लेकर कॉलेज तकका वातावरण ब्रह्मचर्यका विरोधी होता है। अैसे वातावरणमे रहकर भी जो ब्रह्मचारी रहा हो, अुसे सचमुच भाग्यशाली समझना चाहिये।

शहरोमे चालोका जीवन बचपनसे ही विकारोको पोसनेवाला होता है। ढाअी-तीन वर्षके बालक भी मनोविकारी तो नही, परन्तु शरीरविकारी होते देखे जाते है।

कअी बार माता-पिता और शिक्षकोका आचरण विकारोको पोसनेवाला होता है। रास्तेके प्राणी जैसे कभी-कभी असभ्यताका नमूना पेश करते है, वैसे ही माता-पिता भी करते है।

अिस वातावरणको जितना निर्मल और पवित्र बनाया जा सके, अुतना बनाना हमारा प्रथम कर्तव्य है। अिसके बिना किये जानेवाले बाहरी अुपाय व्यर्थ सिद्ध होगे।

ब्रह्मचर्यके बारेमे बार-बार भाषण देनेका अच्छा असर नही होता। अुलटे अिससे निर्दोष विद्यार्थी भी अिस विषयमे विचार करने लग जाते है, अुन्हे कुतूहल भी होता है। किसी विद्यार्थीको यह विषय समझानेकी जरूरत मालूम हो, तो अेक या दो बारमे अच्छी तरह, गभीरतासे और भक्तिभावसे अुसे समझा देना जाहिये। अिस बारेमें जो विद्यार्थी कुछ भी नही जानता, अुसे जानकार बनानेके पहले खूब विचार कर लेना चाहिये। अिसलिअे छोटे बालकोके वर्गमे अिस विषयकी जानकारी देना ठीक है या नही अिस विषयमे मुझे शका है। छोटे बालक भी निर्दोप नही होते, यह मै जानता हू। फिर भी अच्छा रास्ता यही है कि जिन्हे अिसकी जानकारी कराना अुचित हो, अुनसे अेकान्तमे अिसकी चर्चा की जाय। लेकिन बार-बार तो अिस विषयकी चर्चा होनी ही नही चाहिये।

अेक दूसरी बात भी कह दू। द्वेषभावसे विकारका चितन करके भी हम विकारसे बच नही सकते। विकारका द्वेषभावसे चिंतन करनेमें भी विकारका स्मरण तो रहता ही है। ब्रह्मचर्यकी साधना करनेवालेको चाहिये कि वह विकारको भूल ही जाय। अिसलिअे अिसका सबसे अच्छा रास्ता चित्तको दूसरे कामोमें लगा देना ही है। कोअी अुदात्त रस चित्तको लगा देना विकारको दूर करनेका सच्चा अुपाय है।

अिसके साथ कसरत, आसन आदिकी समझदारीके साथ मदद ली जा सकती है, लेकिन अुनका मै जानकार नही हू।

नवजीवन, १२-२-'२८

न पढ़ने योग्य अच्छी पुस्तकें

अच्छे अुद्देश्यसे लिखी हुअी होने पर भी नौजवानोको जिन्हे वहुत नही पढना चाहिये, अैसी पुस्तकोमे में ब्रह्मचर्य विषयक पुस्तकोका समावेश करता हू। ब्रह्मचर्यका पोषण करनेके अुद्देश्यसे और सच्ची भावनासे लिखी हुअी 'ब्रह्मचर्य-सदेश', 'सजीवनी-विद्या' आदि कुछ पुस्तके मैंने देखी है। लेकिन विकारोके साथ झगडनेवाले नौजवानोंको वे वहुत फायदा पहुचा सकती है या नही, अिस बारेमे मुझे शंका है। और अिन पुस्तकोकी कुछ बाते तो अैसी होती है, जो विकारके कुछ प्रकारोसे अनजान लोगोको भी जानकार बना देती है।

जीवन-बीज और जीवन-वृद्धिके बारेमे जाननेका कुतूहल वहुतसे नौजवानोके मनमे किसी न किसी समय पैदा होता है। अिस विषयमें वे गुप्त रूपमें और अनुचित मार्गसे जानकारी प्राप्त करे, अिसके बजाय वे धार्मिक भावनावाले मनुष्य द्वारा गभीरतासे लिखी हुअी पुस्तक पढे, यह कभी अधिक वाच्छनीय हो सकता है। लेकिन अैसी कअी पुस्तके पढना तो कभी भी वाच्छनीय नही है। फिर, बहुतसे नौजवान अपनेको तकलीफ देनेवाले दोषोसे छूटनेकी अिच्छासे अैसी पुस्तकें खोजते है। अुन्हे अिन पुस्तकोमे से व्यावहारिक और अचूक अुपाय शायद ही कभी मिलते है। अुलटे, होता यह है कि अुस अुमरमें अैसी पुस्तकोका पढना ही अुन्हे विकारोका स्मरण कराकर दोषकी तरफ ढकेलता है।

तो विकारोसे मुक्त होनेके लिअे अैसी पुस्तके बहुत अुपयोगी सावित नही होती। अिसके लिअे पुस्तकोसे शायद ही कोअी रास्ता मिलता है। यह लडाअी हरअेकको अपने साथ ही लडनी होती है। अिसके लिअे कुछ खास अुपयोगी सूचनाये अितनी ही हो सकती है'

(१) निर्भय मार्ग अैसा कोअी अुपाय करना है, जिससे, विषयकी याद ही न आवे। अिसके लिअे मन और शरीरको हमेशा काममे लगाये रखना चाहिये। किसी कार्य, अभ्यास या शुभ

प्रवृत्तिका मन पर अैसा रग चढा देना चाहिये कि न मनको अुसके विचारोंसे कभी फुरसत मिले और न कभी विषयकी याद आवे। अिसके लिअे कोअी अैसा काम खोजना चाहिये, जिसमे शरीरके साथ मनको भी लगाना पडे।

कॉलेजके दिनोमे मैंने प्रसिद्ध रसायनशास्त्री जॉन डाल्टनका जीवनचरित्र पढा था। अुसकी अेक वात मै कभी भूल न सका। अुसमें मुझे स्वाभाविक ब्रह्मचर्यका आदर्श देखनेको मिला। जॉन डाल्टनके बुढापेमे किसीने अुनसे पूछा . "आप किस अुद्देश्यसे अविवाहित रहे ?" वे अिस प्रश्नसे विचारमे पड गये। थोडी देर वाद वोले "भाअी, आज ही आपने यह प्रश्न सुझाया है। मेरा जीवन विज्ञानके अध्ययनमें कैसे वीत गया, अिसका मुझे पता ही न चला। मेरे मनमें यह विचार ही कभी पैदा नही हुआ कि विवाह किया जाय या न किया जाय, अथवा मै विवाहित हू या अविवाहित।"

हमारे पुराणोमे अत्रि ऋषि और सती अनसूयाकी* कथा भी—जिस तरह मैंने सुनी है—अैसे ही आदर्शवाली है। वे विवाहित दपती थे, लेकिन ऋषिका यौवनकाल अपने अभ्यासमे और सतीकी युवावस्था ऋषिके लिअे सुविधाये जुटाने और कामकाजमें अैसी वीत गअी कि वुढापा कव आया, अिसका अुन्हे पता ही न चला! पुराणकार कहते है कि अेक वार अत्रि ऋषि अपने अध्ययनमें लगे हुअे थे, अितनेमे दीयेमें तेल खतम हो गया। अुन्होने तेल मागनेकी अिच्छासे अूपर देखा, तो थकावटके कारण अनसूयाकी आख लग गअी मालूम हुअी। अत्रिने जव अनसूयाकी तरफ ध्यानसे देखा तो वे वूढी जान पडी। अिसलिअे अुन्होने अपनी दाढीकी तरफ देखा, तो वह भी सफेद दिखाअी दी। तारुण्यावस्था कव चली गअी, अिसका अत्रिको पता ही न चला! अिस कथामे काव्यकी अतिशयोक्ति जरूर होगी, लेकिन ब्रह्मचारीके लिअे अभ्यासपूर्ण जीवन वितानेका अेक अुत्तम

* श्री नानाभाअी (नृसिहप्रसाद) भट्टने यह वात सती भामतीके नामसे वर्णन की है।

आदर्श बताया गया है, और डाल्टनकी अनुभव-वाणीका वह समर्थन करती है।

(२) फिर भी, यदि विकार पैदा हो, तो अुनका शत्रुभाव या मित्रभावसे विचार करनेके बजाय किसी नये ही विचारमे मनको लगानेकी कोशिश करनी चाहिये।

(३) जिस व्यक्ति या मूर्तिके लिअे मनमे अितना आदर हो कि अुसके समीप रहनेसे विकार शान्त होते हो, या जिसके समीप विकारके वश न होने जितना सयम रखनेका बल मिलता हो, अुसके समीप अुठना-बैठना चाहिये। अुसके अभावमे अुसका स्मरण भी सहायक हो सकता है।

सर वॉल्टर स्कॉटके बारेमे यह बात कही जाती है कि अुनकी दादीको अिस बातकी बडी चिढ थी कि लडके कुर्सी पर पीठ टेककर बैठें; और वे स्कॉटको कभी अिस तरह बैठने नही देती थी। स्कॉटने बुढापेमे भी पीठ टेककर न बैठनेकी यह आदत कायम रखी थी। वे कहते थे कि कभी-कभी पीठ टेककर बैठनेका मन हो जाता है। लेकिन अुसी समय अैसा लगता है मानो दादी आख निकालकर सामने बैठी है, और यह अिच्छा शान्त हो जाती है!

(४) जो खानपान, कपड़े या आदते खुदके अनुभवसे विकारको मदद करनेवाली मालूम हुअी हो, अुनका व्रतके रूपमे त्याग कर देना चाहिये; और सामान्यत. नीचेके नियमोंका पालन करना चाहिये:

(क) बहुत देरसे न खाना; रातमें भारी या ज्यादा गरम खुराक न लेना।

(ख) रातमे देरसे न सोना।

(ग) सुबह जल्दी अुठना।

(घ) दिनमे अितनी मेहनत करना कि रातमें आठ-नौ बजते ही नीद आने लगे। और अुषःकालमे सोनेका कभी लालच न करना।

(च) सादा और स्वच्छ जीवन बितानेकी अिच्छा रखना।

(छ) रसिक दिखनेका मोह न रखना।

यह तो नही कह सकते कि अितना करनेसे विकार विलकुल शान्त हो जायगे। यह सव करते हुअे भी वहुतसे नौजवानोको विकार सताये विना नही रहते। परन्तु ये सामान्य सूचनायें अुन्हे वहुत मदद न कर सके, तो अूपर वताअी पुस्तकोका पढना भी अुन्हे अिस वारेमे मदद नही पहुचा सकेगा। अैसे नौजवानोको मेरी सलाह है कि अैसी अेक-दो पुस्तके पढ लेनेके वाद भी जिनकी परेशानी न मिटी हो, अुन्हे अिस तरहकी दूसरी पुस्तके हरगिज न पढनी चाहिये। अुनसे कोअी मार्गदर्शन नही मिल सकेगा।

कुमार, १९२९

५

स्त्रियों पर अत्याचार

पाच हजार वर्ष पूर्व युधिष्ठिरने कौरवोके साथ जुआ खेला और अुसमे धर्मराजने द्रौपदीको दाव पर चढानेका अधर्म किया। जुअेमे धर्मराज हारे। दु शासन रजस्वला द्रौपदीको सभामे घसीट लाया और भरी सभामे वीर कहलानेवाले पाच-पाच पतियोके देखते हुअे, वृद्ध और ज्ञानी माने जानेवाले भीष्म पितामहके सामने, तथा ससुर जैसे धृतराष्ट्रकी और दूसरे सैकडो राजपुरुषोकी अुपस्थितिमें द्रौपदीकी लाज लूटनेका प्रयत्न करने लगा। द्रौपदीने वडे-वूढो और सभाजनोंके सामने न्याय मागा। वहुत समझदार लोग वडी अुलझनमें पड गये, वे न्याय न दे सके। यही नही, वल्कि किसीको अितना भी नही सूझा कि दूसरी चाहे जो अुलझन हो, पर अितना तो निश्चित है कि किसी स्त्रीकी — अपनी पत्नीकी भी — भरी सभामे लाज नही लूटी जा सकती। पाच पाडव तो मानो लज्जासे हतवीर्य वन गये थे, अिसलिअे अुनकी वात हम छोड दे। लेकिन वाकीके क्षत्रियोमें वृद्ध भीष्मको या दूसरोको अितना सीधा क्षत्रियधर्म भी

नही सूझा कि भले द्रौपदी दासी बन गअी हो, फिर भी अुस पर अत्याचार करनेवालेको तो रोकना ही चाहिये। वे लोग अहिसाके पुजारी नही थे। वे चाहते तो दु.शासनका हाथ काटकर भी द्रौपदीकी रक्षा कर सकते थे। लेकिन अैसा कुछ हुआ नही। सारी सभामे केवल दो ही व्यक्तियोने द्रौपदीकी वकालत करनेकी हिम्मत दिखाअी। अेक थे बूढे विदुर और दूसरा था दुर्योधनका अेक छोटा भाअी। अुन्होने अपनी नम्र आवाज अुठाअी, लेकिन अुस पर किसीने ध्यान नही दिया। वे दोनो दासी-पुत्र थे।

अैसी द्रौपदीकी कथा ससारके दूसरे किसी राष्ट्रके अितिहास या पुराणोमे नही मिलती। महाभारतमे व्यासने अैसा चित्र खीचा है।

गत पाच हजार वर्षोंसे हम यह कथा सुनते आ रहे है, फिर भी हमारे लिअे अभी वह पुरानी नही हो पाअी है। व्यासकी वर्णन की हुअी यह करुण कथा आज भी हम जितनी बार सुनते है, अुतनी बार हमारी आखोमे आसू आये बिना नही रहते। परन्तु व्यासने अैसी कथा क्यो रची होगी? कौरव पाडवोके शत्रु भले रहे हो, फिर भी आर्य तो थे ही। व्यासने दुर्योधनको राजाके रूपमे बहुत बुरा नही बताया है। क्षात्रधर्म जाननेवाले अेक आर्य राजाके हाथ ज्ञानी माने जानेवाले वृद्धजनोके सामने यह पापकर्म हुआ, अैसा चित्र व्यासने क्यो खीचा होगा?

लेकिन मालूम होता है कि व्यासको भी बिलकुल सच्चा चित्र खीचनेमे शरम लगी। अिस करुण प्रसगको चरम सीमा तक पहुचाकर भी द्रौपदीको सचमुच लुटी हुअी न दिखाकर अुन्होने हमारी कोमल भावनाओको बहुत ज्यादा आघात नही पहुचाया। द्रौपदीकी लाज लुटनेसे पहले ही अुसकी रक्षा करके व्यासने हमारी भावनाओको तीव्र आघातसे बचा लिया है।

क्या द्रौपदीकी यह कथा हमे कभी परियोकी कहानी जैसी काल्पनिक और असभव लगी है? महाभारतकी कथाओ परसे अनेक कवियोने बहुतसे काव्य, नाटक, कहानिया, भजन आदि रचे हैं। अुनमें महाभारतकी कथाओको कअी तरहसे अुलट-पलट डाला है।

व्यासने अपने पात्रोका जैसा चरित्र-चित्रण किया है, अुससे बिलकुल भिन्न चरित्र कवियोने अुनका बना डाला है। अुदाहरणके लिअे, कालिदास जैसे महाकविने महाभारतकी शकुन्तलाको अपने नाटकका पात्र बनाया है, लेकिन व्यासकी शकुन्तलाके बजाय सर्वथा भिन्न प्रकारकी शकुन्तलाका निर्माण किया है। लेकिन अिस द्रौपदी-वस्त्र-हरणकी कथाको किसी कविने भिन्न रूपमे चित्रित किया हो, अैसा जाननेमे नही आया। साहित्यमे अैसा क्वचित् ही होता है, और अिस तरहकी घटनामे कोअी प्रजा परिचित हो तभी अैसा हो सकता है।

मुझे लगता है कि व्यासने द्रौपदी-वस्त्र-हरणकी कथा किसी अैसे भारी अत्याचारके रूपमे नही वर्णन की जिसकी कल्पना भी न की जा सके, बल्कि अपने जमानेके दुष्ट राज्योमे होनेवाली सच्ची घटनाओका मनोवेधक वर्णन किया है।

मुझे अैसा लगता है कि गरीब प्रजाकी स्त्रियोकी और हारे हुअे शत्रुओकी स्त्रियोकी अिस तरह खुले आम अिज्जत लूटनेका पाप हमारे देशमे लम्बे समयसे चला आया है।

पजाबके अत्याचारके समय जब अैसी घटनाओका वर्णन किया गया, तो हममे से बहुतेरोको लगा था कि यह तो मानो 'न भूतो न भविष्यति' जैसा कुछ हो गया है, और अुससे हमे बडा आघात पहुचा था। अभी कुछ दिन पहले ही गाधीजीने सधिके पालनके बारेमे सरकारके खिलाफ जो आक्षेप प्रकाशित किये, अुनमे भी अैसी घटनाओके बारेमे पढकर हमारे दिलोको ठेस पहुची थी। लेकिन ये छपी हुअी घटनाये ही हमारे जाननेमें आअी, अिससे यह न समझ लेना चाहिये कि अत्याचारकी अैसी करुणा अुपजानेवाली घटनायें कभी-कभी और कुछ अत्यत पतित मनुष्योंके हाथो ही होती हैं।

सच पूछा जाय तो व्यासने द्रौपदी-वस्त्र-हरण जैसे स्त्रीके प्रति किये जानेवाले नीच व्यवहारके विषयमे जबसे लिखा है, तबसे आज तक वह हमेशा चालू ही रहा है। दु शासन किसी विशेष व्यक्तिका

नाम ही नही, बल्कि हमारे देशमे जिनकी परम्परा कभी टूटी ही नही अैसे अत्याचारी नीच राजसेवकोका सामान्य नाम भी है।

मुझे अंग्रेजी राज्यसे रत्तीभर प्रेम नही। लेकिन मेरे देशभाअी धोखेमे रहे यह मै नही चाहता। स्त्रियो पर किये गये जिन-जिन अत्याचारोकी बाते पजाबके हत्याकांडसे लेकर आज तक समय-समय पर जाननेको मिली है, अुन्हे हम सिर्फ अंग्रेजी हुकूमतका ही जुल्म न समझे। वह मुसलमान कालकी भी विरासत नही है। कअी लोगोंके देखते हुअे प्रजाकी स्त्रियोको नगी करके दिलको कपा देनेवाली हद तक अुन पर अत्याचार करने या करानेकी हिम्मत परदेशी हाकिम कब कर सकते है? मै कहता हू कि जब तक अुन्हे यह विश्वास न हो जाय कि अैसा अत्याचार चुपचाप सह लेनेकी प्रजाकी आदत है और यह अत्याचार करनेके लिअे अुसी प्रजाके आदमी मिल सकते है, तब तक वे अैसी हिम्मत कर ही नही सकते।

अिसलिअे हमे समझ लेना चाहिये कि यह भारतीय प्रजाका ही दोष है। अेक तरफ जैसे यह सोचकर बडा दु:ख होता है कि अिस तरहके अत्याचार सह लेनेवाली हमारी प्रजा कितनी निकम्मी और नि:सत्त्व है, वैसे दूसरी तरफ यह सोचकर भी लज्जासे हमारा सिर झुक जाता है कि अैसे अत्याचार कर सकनेवाली हमारी पुरुष-जाति कितनी नीचे गिर गअी है।

सौभाग्यसे हमारे ही व्यासने हमारे ही पाडवो-कौरवो द्वारा अिसके खिलाफ पहली बार अपनी आवाज बुलन्द की है। लेकिन अभी तक अैसे अत्याचारोको अशक्य बना देने जितने सस्कारी हम नही हुअे है। न्याय-बुद्धि और शान्तिसे हम सोचे, तो अिस कथनकी सचाअीके जितने चाहिये अुतने प्रमाण हमे मिल सकते है। नरपिशाच अत्याचारी राजाओके होनेका हमारे देशमे कभी आश्चर्य नही हुआ था। आश्चर्य तो हुआ हमें शिवाजीके होनेका, जिनका वर्णन हमने सावधानीसे अितिहासमे लिख रखा है। 'परस्त्री मात समान' यह आदर्श यदि राजपुरुषोमे कुलधर्म जैसा माना गया होता, तो शिवाजीके सेवकोकी अेक पकड़ी हुअी स्त्रीको अुनके पास भेंटस्वरूप भेजनेकी

हिम्मत न हुअी होती। शिवाजीने सम्मानके साथ अुसे विदा किया, जिससे अुनके सेवकोको आश्चर्य हुआ। अिससे कल्पना की जा सकती है कि अुन लोगोका अपनी प्रजाकी स्त्रियोके साथ कैसा व्यवहार रहा होगा।

दूसरा प्रमाण हमारे देशकी घृणा पैदा करनेवाली वीभत्स गालियोमे है। सभ्य लोगोके कानके कीडे झड जाय, अैसी अश्लील और गन्दी गालियोकी बौछार और अुनका भारी शब्दभडार हमारे देशका माथा शरमसे झुका देनेके लिअे हमेशा मौजूद रहेगा।*

अिसके लिअे परदेशी राज्यका दोष निकालनेसे काम नही चलेगा। मुझे दुःख है कि मै अिसका कोअी निश्चित अुपाय नही सुझा सकता। लेकिन अिस वारेमे मुझे जरा भी शका नही कि अिसका अुपाय हमारी आत्मशुद्धिसे ही हो सकता है।

यह लेख स्त्रियोके मासिकमे भेजते हुअे मुझे शरम मालूम होती है। लेकिन यह स्त्रियोका दुःख है। अुनके सामने अिसे न रखू, तो और कहा रखू? शायद द्रौपदीकी तरह स्त्रिया ही अिसका अुपाय खोज सके।

भगवान करोडो द्रौपदियोकी लाज रखे!

अुषा, १९३१

---

* लेकिन अब भी प्रमाणकी जरूरत रही है क्या? हिन्दुस्तानने आजाद होते ही अिस दुष्टताका कितना भयानक प्रमाण पेश किया है? अिसमे हिन्दू, सिक्ख या मुसलमान कोअी अेक-दूसरेसे पीछे नही रहे। (जनवरी, १९४८)

६

अेक पापपूर्ण प्रथा

सुना है कि काशीके किसी अेक तीर्थमे अपनी पत्नीका दान करनेकी प्रथा है। भोले-भाले यात्रियोको अैसा समझाया जाता है कि यदि पति अपनी पत्नीका दान न करे, तो यात्राका पुण्य नही मिलता। पण्डे यह दान लेते हैं और बादमे निश्चित की हुअी कीमत लेकर स्त्रीको अुसके पतिको वापस बेच देते है।

यह प्रथा पापमय और अधर्म है, अैसा कहनेमें संकोच होनेका जरा भी कारण नही है। अिसमे कोअी शक नही कि अिस तरह समझानेवाले पडो और अिस तरहकी तीर्थ-महिमा बतानेवाले पुराणकार दोनोने अत्यत अविचारी, अनीतिपूर्ण और तीर्थको कलक लगानेवाला कर्म अुत्पन्न किया है। अिन लोगोने भोले और अज्ञानी जनोकी श्रद्धाको अधिक सस्कारी और विवेकपूर्ण बनानेके बदले अपना व्यवसाय अिस तरहका बनाया है, जिससे यात्रियोके अज्ञान और भोली श्रद्धाका अनुचित लाभ अुठाया जा सके। सब धर्मनिष्ठ लोगोको अिस पापमय व्यवसायकी खूब निन्दा करनी चाहिये।

किसी यात्रीको अैसी माग या अैसी प्रथाके सामने कभी न झुकना चाहिये। दान अपनी सम्पत्ति या मिल्कियतका किया जा सकता है, स्त्रीको मिल्कियत माननेवाला या मनवानेवाला पुरुष कभी सस्कारी नही कहा जा सकता। यह साफ है कि अिस तरह स्त्रीका दान नही किया जा सकता।

दूसरे, जो स्त्री दूसरेकी धर्मपत्नी है, अुसका दान स्वीकार करनेवाला पडा व्यभिचारका दोषी माना जायगा। वह गुरु बनकर शिष्यकी पत्नी पर पापपूर्ण दृष्टि डालता है, और अपने ब्राह्मणत्वको कलक लगाता है।

और जिस स्त्रीका दान कर दिया गया है, अुसे वापिस खरीद-कर दान देनेवाला पुरुष अुसके साथ किसी प्रकारका धर्मयुक्त सबध नही रख सकता। क्या वह अुसे गुरुपत्नी या माताके रूपमे रखना चाहता है? साफ है कि अुसका अैसा कोअी हेतु नही होता।

अिसलिअे किसी भी दृष्टिसे देखे, यह प्रथा अधम और पापपूर्ण ही है। किसी यात्रीको अैसा धर्म वतानेवालेकी बातोमे नही फसना चाहिये।

'कार्यं दान न योषित.।' (शिक्षापत्री)

हरिजनवन्धु, ३–६–'३४

पूर्ति

अैसा ही पाखंडधर्म

यात्रामें स्त्रीका दान करनेकी पापपूर्ण प्रथाके विषयमे मैं पिछले अकमें लिख चुका हू। अैसा ही दूसरा पाखडभरा धर्म स्त्रीको गुरुको 'अर्पण' करनेका है। आज भी अैसा बहुत जगहो पर चलता है। 'तन, मन, धन गुरुको अर्पण' करवानेवाले गुरु शिष्यको अपनी पत्नी भी अर्पण करनेकी बात समझाते है, और जड, भोले, अन्धश्रद्धालु या किसी लाभकी आशामे फसे हुअे शिष्य अैसा करते भी हैं।

और कुछ सम्प्रदायोमे तो स्त्रीको पहले गुरु द्वारा 'प्रसादित' करानेके वाद पति द्वारा स्वीकार करनेकी प्रथा है।

ये सब प्रथाये धर्म नही, निरा अधर्म है, दुराचारके अखाडे है। अगर अिन्हे धर्म बतानेवाले कोअी आधार हो, तो वे जला डालने लायक माने जायगे।

हरिजनबन्धु, १०-६-'३४

स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध

क्या समाजमे और क्या सस्थाओमे, स्त्री-पुरुषके वीच अनैतिक या नाजुक सम्बन्ध पैदा होनेके अुदाहरण हम बहुत वार सुनते है। यह अिसी जमानेकी विशेषता है, अैसा माननेका मै कोअी कारण नही देखता। लेकिन यह शायद आसानीसे कहा जा सकता है कि आजकलकी भोगविलासकी प्रेरणा देनेवाली जीवन-पद्धति तथा स्त्रियो और पुरुषोको परस्पर सहवासके अधिक अवसर देनेवाली प्रवृत्तिया अिसमे वहुत ज्यादा वृद्धि कर रही है। विवाहके प्रयोजन और प्रथाके बारेमे अभी-अभी पश्चिमी देशोसे जिन विचारोका प्रचार हो रहा है, वे भी नैतिक बन्धनोको शिथिल करनेमे बहुत बडा हिस्सा ले रहे है।

अपने सामने पवित्र जीवनका आदर्श रखनेवाले और अुसके लिअे बहुत कोशिश करते रहनेवाले अनेक स्त्री-पुरुषोके जीवनमे भी अनैतिक सम्बन्ध पैदा होनेके किस्से सुने गये है। अीश्वरकी कृपासे मै आज तक अैसी स्थितिसे वच सका हू। अपने चित्तकी परीक्षा करते हुअे मै अैसा बिलकुल नही मानता कि मेरे दिलमे अीश्वरने कोअी विशेष प्रकारकी पवित्रता रख दी है, और अुसकी वजहसे मै बच गया हू। मुझमे भी साधारण पुरुषकी तरह ही विकार भरे है, और अुनके साथ मुझे हमेशा झगडा जारी ही रखना पड़ता है।

फिर भी, हम जिन्हे अनैतिक या अपवित्र सम्बन्ध मानते है, वैसे सम्बन्धोसे मै और जहा तक मै जानता हू मेरे परिवारके बहुतसे लोग आज तक बचे हुअे है। अीश्वरकी कृपाके अलावा मै अिसका अेक ही कारण मानता हू। और वह है सदाचारके स्थूल नियमोका पालन।

> ‘मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा विजने तु वय स्थया।
> अनापदि न तैः स्थेय . . . . ।।’

जवान मा, वहन या लडकीके साथ भी आपत्कालके बिना अेकातमे नही रहना चाहिये —— शिक्षापत्रीका यह सूत्र हमे बचपनसे ही रटाया गया था, और मेरे पिताजी तथा भाअियोके जीवनमे अिसका पालन करने और करानेका आग्रह मै बचपनसे देखता था।

स्त्री-पुरुष आपसमें आजादीसे हिले-मिलें, अेक-दूसरेके साथ अकेले घूमे-फिरे, अेकातमे भी बैठे, और फिर भी अुनमे विकार पैदा न हो या वे नाजुक हालतमे न फसे, तो अुसे मै केवल अीश्वरीय चमत्कार ही समझूगा। अैसे चमत्कार कदम-कदम पर नही हो सकते। सैकडो वरसोमे कोअी अेक स्त्री या पुरुष भले अैसा पैदा हो। लेकिन मै हर किसीके बारेमे तुरन्त अैसी श्रद्धा नही कर लेता, और अैसा दावा करनेवाले हर किसीके शब्दो पर विश्वास भी नही करता। कोअी मनुष्य वडा ब्रह्मनिष्ठ और योगीराज माना जाता हो और मुझसे कोअी यह सलाह पूछे कि अुसके निर्विकारी होनेके दावे पर विश्वास किया जाय या नही, तो मै पूछनेवालेसे यही कहूगा कि विश्वास न करनेसे अुसकी या आपकी कोअी हानि नही होगी।

अिस विपयमे स्त्रीके वनिस्वत पुरुषकी स्थितिको ज्यादा सभालने-की जरूरत होती है। कोअी पुरुष ५० वर्ष तक विकारोसे बचा रहा हो, तो भी यह नही कहा जा सकता कि अब वह सुरक्षित हो चुका है। और यह भी नही कहा जा सकता कि ७० वे वर्षमे भी विकारोका शिकार होनेका भय अुसे नही रहा। अिसलिअे अगर कोअी यह कहे कि अब मुझे परस्त्री या पुरुषके साथ अेकातवास न करनेके स्थूल नियमोंका पालन करनेकी जरूरत नही रही, तो मुझे यह शका हुअे विना नही रहेगी कि वह ढोग करता है।

अिन स्थूल नियमोंका सख्तीसे पालन करनेका सस्कार मुझ पर पडा है, और मुझे लगता है कि अिसी कारणसे मै आजतक किसी विषम परिस्थितिमे फसनेसे वच सका हू।

ब्रह्मचर्यका व्रत पालते हुअे भी मुझे कअी बार अपनी पत्नीके साथ अेकातमें रहना पडता है, यह मुझे स्वीकार करना चाहिये।

अिसका अेक कारण यह है कि अैसा करनेमे हमने अेक-दूसरेकी रक्षा मानी है। दूसरा कारण यह है कि हम दोनोको अेक-दूसरेकी शारीरिक सेवाकी जरूरत पडती है। और हमारे मनमे यह भावना भी रही है कि अिससे ज्यादासे ज्यादा विगाड होगा तो यही कि हम अपने निश्चयसे डिग जायगे। हम अैसी श्रद्धा रखते है कि निश्चयसे कभी डिगे, तो हम नम्रतासे यह स्वीकार कर लेगे लेकिन ढोग नही करेगे। और हमारा डिगना स्वय हमारे लिअे चाहे जितने वडे दु खकी बात हो, फिर भी अैसा नही कहा जा सकता कि अुससे समाजमे कोअी विगाड पैदा करनेका हमने दोष किया है। अितना हमें आश्वासन है।

लेकिन अेकातवासका अर्थ अधिक समझनेकी जरूरत है। जवान स्त्री-पुरुपोके बीच खानगी और लम्बे पत्रव्यवहारका सम्बन्ध भी अेकांतवासकी ही गरज पूरी करता है, और अुसीमे से स्थूल अेकात-वास अुत्पन्न होता है।

आधुनिक जीवनमे दूसरे भी बहुतसे भयस्थान बढ गये है। ये भयस्थान अेकानवाससे अुलटे ढगके अर्थात् अतिसहवासके होते है। अनेक प्रकारके कामकाज और शहरी जीवनके कारण कभी अनजानमे, कभी अनिवार्य रूपमे और कभी अचानक स्त्री-पुरुषोको अेक-दूसरेके अगोका स्पर्श हो जाता है। रेलगाडियोमे, मोटरोमे, सभाओमें, रास्तोमें अेक-दूसरेसे सटकर बैठना पडता है, चलना पडता है, बातचीत करनी पड़ती है, शिक्षकोको लडकियो या बालाओको पढाना होता है— और ये सव दोनोके लिअे भयस्थान है। अिन सब परिस्थितियोमे जो अपनी पवित्रताके लिअे आवश्यकतासे अधिक अभिमान करता है वह गिरता ही है, जो जाग्रत रहता है, अैसे अवसरोको सुखरूप नही बल्कि आपत्तिरूप समझता है और यह मनोवृत्ति रखता है कि पास आनेके बजाय यथासभव अिनसे अिंच भर तो भी दूर रहा जाय, वही औश्वरकी कृपासे बच सकता है।

जहा-जहा हम अैसे दोष पैदा होनेकी बात सुनते है, वहा-वहा यह देखनेमें आयेगा कि दोष पैदा होनेसे पहले अूपरके स्थूल नियमोंके

पालनमे लापरवाही, अुन नियमोंके लिअे थोडा-बहुत अनादर, अपनी सयमशक्ति पर झूठा विश्वास और बहुत बार अनावश्यक स्त्रीदाक्षिण्य (chivalry) थे ही।

जिसे स्वय अिन दोषोसे बचना हो और समाजका — खास करके भोली बालाओका — बचाव करना हो, वह अिन नियमोका अक्षरशः पालन करे। यही राजमार्ग है।

जब-जब मुझे स्त्रियो और बढती अुमरकी लडकियोको पढानेका मौका आया है, तब-तब मैंने सदा अिस बातका ध्यान रखा है और आज भी रखता हू कि मेरी पत्नी मेरे पास मौजूद रहे या कअी स्त्रिया साथमे हो और मैं अैसी खुली जगहमें बैठकर पढाअू, जहा मुझे मालूम हुअे बिना भी हर कोअी आ सके। यह चीज मैंने अपने पिताजी और बडे भाअीसे सीखी है। स्त्रियोके साथ अेक आसन पर सटकर बैठनेकी बात मुझे आधुनिक जीवनमे निभा लेनी पडती है, लेकिन बिलकुल अच्छी नही लगती। अपने भाअियोकी जवान लडकियोका भी आशीर्वादके बहाने मैं जान-बूझकर अगस्पर्श नही करता या नही होने देता। यदि कोअी स्त्री लापरवाहीसे अथवा आजकल जैसी स्वतत्रता ली जाती है अुसे निर्दोष मानकर मेरे पास आकर बैठ जाती है, तो मुझे दुःख होता है। अैसा बरताव आजके जमानेमे 'अतिमर्यादी' (ultrapuritan) समझा जाता है, यह भी मैं जानता हू। लेकिन अिसमें मैंने अपनी और समाजकी दोनोकी रक्षा मानी है।*

---

* २७ जुलाअी, १९४७ के 'हरिजनबधु' में 'पुराने विचारोका बचाव' नामसे गाधीजीने अेक पत्र छापा है। अुसमे पत्रलेखक मेरा अुल्लेख करके लिखते हैं कि ये तो "यहा तक कहते हैं कि स्त्री-पुरुषको अेक चटाअी पर भी नही बैठना चाहिये।"

अिस पर गाधीजी लिखते हैं "अगर यह सच हो कि जिस चटाअी पर कोअी स्त्री बैठी हो, अुस पर किशोरलालभाअी न बैठें तो मुझे आश्चर्य होगा। मैं अैसी पाबन्दीको नही समझ सकता। अुनके मुहसे अैसा मैंने कभी सुना नही।"

अिसमे मेरी थोडी निजी वाते आ गअी है। वे अनिच्छासे ही आअी है। अुन्हे अुपयोगी समझकर ही यहा लिखा है, मेरे जीवनको चित्रित करनेके लिअे नही। मैंने अपनेको कभी पूरी तरह सुरक्षित नही माना; विशेष मनोबलवाला नही माना। वेदान्तनिष्ठासे सुरक्षित रहा जाता है, अैसा मै नही मानता। अिस अभिमानसे गिरने और फिसलने-वालोके अुदाहरण मैंने वहुत देखे है। अीश्वरकी कृपासे, बडे-बूढोके दिये हुअे सस्कारोसे और अूपर बताये स्थूल नियमोके पालनसे ही मै अभी तक बचा रहा हू अैसा मै मानता हू; और अिसीके बल पर आगे भी बचा रहनेकी आशा रखता हू।

हरिजनबधु, २३–९–'३४

मेरा खयाल है कि पत्रलेखकने अूपरके पैरेके विचारोका अुल्लेख किया है। अिन विचारोमे आज भी कोअी परिवर्तन करनेका कारण मैं नही देखता। अेक चटाअी पर बैठना और अेक ही आसन — यानी आम तौर पर जिस पर अेक ही आदमी अच्छी तरह बैठ सके अैसी जगह — पर या दूसरी बहुतसी जगहके होते हुअे भी मेरे पलग पर ही आकर बैठ जाना अिन दोमे बडा फर्क है। रेलगाडी, ट्राम, भीडभाड, खचाखच भरी सभा आदिमे अैसा होना अलग बात है। परतु किसीके घर मिलने गये हो या अकेले हो, तब अैसा व्यवहार मुझे बुरा और असभ्य मालूम होता है। अिस तरह पुरुषका पुरुषके साथ या स्त्रीका स्त्रीके साथ बैठना भी जरूरी नही माना जायगा। सदाचारका यह नियम "मेहनतका काम न करनेवाले सफेदपोश मध्यमवर्गका" नही; सच पूछा जाय तो यही वर्ग अिस नियमका कम पालन करता है। शहरके मजदूरोके बारेमे तो निश्चयपूर्वक मै कुछ नही कह सकता, लेकिन मै यह मानता हू कि "गावके किसान और कारीगर जिस ढगसे रहते और काम करते है", अुसमे यह नियम अधिक पाला जाता है।

(जनवरी, १९४८)

८

शीलकी रक्षा

पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियोको अपने शील या पवित्रताके लिअे अधिक आदर और खयाल होता है और होना चाहिये अैसा मै मानता आया हू । कुदरतने पुरुषकी अपेक्षा स्त्री-जातिके लिअे शीलभगकी सजा भी ज्यादा स्पष्ट और ज्यादा कडी बनाअी है। आजकी पीढीकी स्त्रियोका अिस बारेमे क्या मत है यह मै नही जानता, लेकिन पिछली पीढी तक स्त्रियोका भी यही मत था कि पुरुष भ्रष्ट और व्यभिचारी जीवन बिताये तो भी स्त्रिया अैसा जीवन नही बिता सकती।

यह कुछ अश तक ही सच माना जा सकता है। पुरुष स्त्रीके बिना भी अपने-आपको कअी तरहसे भ्रष्ट कर सकता है। अिसलिअे यह नही कहा जा सकता कि स्त्रीसे दूर रहनेवाला पुरुष सदा ब्रह्मचारी या सयमी ही रहता है। सभव है बहुतसे लडकोको अज्ञान दशामे ही विषयभोगका ज्ञान सबसे पहले दूसरे किसी बिगडे हुअे लडके द्वारा मिलता हो। शायद प्राणियोको भोग करते देखकर भी मिलता हो। लेकिन यहा अिस विषयकी चर्चा करनेका मेरा अिरादा नही है। वह ज्ञान चाहे जिस तरह मिलता हो, लेकिन अितना तो निश्चित है कि स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषको शीलकी रक्षा करनेमे ज्यादा कठिनाअी होती है। अिसलिअे पुरुषकी भ्रष्टताको स्त्रिया भी अधिक दरगुजर करती आअी है यह कहा जाय या यह कहिये कि स्त्रिया पुरुषोकी पवित्रताके बारेमे सदा साशक रहती आअी है। स्त्रियोको अपने शीलकी रक्षाके लिअे हमेशा अधिक अभिमान और अधिक चिन्ता रहती है।

अिसलिअे जब किसी स्त्री-पुरुषके बीच अपवित्र सबध होनेकी बात मुझे मालूम होती है, तो यह समझमे नही आता कि अुसमें स्त्रीका पतन कैसे होता होगा। हिन्दू शास्त्रोने स्त्रीको पुरुषसे आठ गुनी ज्यादा कामुक बताया है, और यह सूचना की है कि स्त्रीकी पवित्रता अुसके चरित्रबलके कारण नही, बल्कि समाजके या पुरुषवर्गके अकुशो और सावधानीके कारण बनी रहती है। महाभारतने तो यहा तक कह

डाला है कि स्त्रीकी विषयभोगकी अिच्छा कभी तृप्त ही नही होती। परतु मेरा अिन वचनोमे विश्वास नही जमता। मुझे अैसा नही लगता कि ये पूर्ण अनुभवके वचन है। अनुभव अिससे बिलकुल अुलटा ही होता है, अैसी मेरी आज तककी राय है।

अिसलिअे जब मै स्त्रीके पतनकी बात सुनता हू, तब कुछ दिङ्मूढ-सा बन जाता हू। शायद यह मेरा भोलापन या अज्ञान ही हो। यदि कोअी यह कहे कि किसी समाजमे पुरुषोके बडे हिस्सेके चरित्रकी अपेक्षा स्त्रियोके चरित्रके अधिक अूचे होनेकी आशा रखना निरी नादानी है, तो अुसे दोष नही दिया जा सकता। स्त्री और पुरुष दोनों अेक ही वर्गके प्राणी है, दोनो अेक ही तरहकी वासनाओके पुतले और परिणाम है। अिसलिअे ९० प्रतिशत पुरुषोको पवित्रताके लिअे, पत्नीव्रतके लिअे या ब्रह्मचर्यके लिअे जो आदर हो सकता है, वही आदर ९० प्रतिशत स्त्रियोको होगा, कम-ज्यादा नही हो सकता।

अिस विचारमे कुछ सचाअी हो सकती है। फिर भी मुझे हमेशा अैसा लगा करता था कि अिस विषयमे थोडा गहरा विचार करनेकी जरूरत रह जाती है, कुछ स्पष्टीकरण अधूरा रह जाता है।

अिंग्लैंडके मशहूर मानसशास्त्री डॉ० मेकडूगल अिस बारेमें जो थोडा स्पष्टीकरण करते है, वह विचारने जैसा है। अुनका कहना है कि स्त्रीका स्वभाव अधिक भावनावश होता है। अुसके लिअे जो ममता या सहानुभूति बताअी जाती है, अुसका असर अुस पर पुरुषके बनिस्बत ज्यादा होता है। अिसका मतलब यह नही कि स्त्रीकी भोगेच्छा कभी तृप्त नही होती; परतु स्त्री सामान्यत. हमेशा भावकी — प्रेमकी भूखी रहती है। अिसलिअे अुसके प्रति जो दाक्षिण्य (chivalry) बताया जाता है, अुसकी प्रतिध्वनि अुसके हृदयमें अुठे बिना नही रहती। अिसका असर अुसके हृदय पर अितना ज्यादा होता है कि अुसे अपने भले-बुरेका बहुत भान नही रहता और अपने प्रति प्रेम, ममता या सहानुभूति बतानेवालेको सतुष्ट करनेके लिअे वह सब कुछ करनेको तैयार हो जाती है। हो सकता है कि भावनाका यह वेग थोडी ही देर टिके, और बादमे अुसका सताप पहले वेगसे भी ज्यादा बलवान हो जाय।

लेकिन थोडे समयके लिअे तो वह अपने-आपको भूल जाती है, भले-बुरेका विवेक खो बैठती है। धूर्त पुरुप स्त्रीके अिस स्वभावका लाभ अुठाता है और अुसे अपना शिकार बनाता है।

अिसका यह मतलब नही कि स्त्रिया कभी पुरुपसे ज्यादा विकार-वश या धूर्त होती ही नही, और पुरुष अुन्हे फसानेके बजाय अुनके जालमे कभी फसता ही नही। अैसी भी बहुतसी मिसालें मिल जाती है। लेकिन मै मानता हू कि अधिकतर पुरुष ही पहल करता है और स्त्री अुसकी तरफ खिच जाती है।

अिसलिअे जो स्त्री यह चाहती है कि अुसकी पवित्रता कभी खतरेमें न पडे, अुसे ज्यादा सचेत रहनेकी जरूरत है।

अुसे पहले यह खयाल या घमड तो छोड ही देना चाहिये कि सतीधर्म या पतिव्रतधर्मके अुसके सस्कार अितने बलवान है कि अुनके कारण वह किसी पुरुषकी ओर आकर्षित होगी ही नही। ये सस्कार बडे महत्त्वके हैं। अुनका बल भी बहुत होता है। फिर भी अिस बलको अितना महत्त्व नही दिया जाना चाहिये जिससे कोअी स्त्री यह सोचने लगे कि पुरुषोके सहवास या ससर्गमे किसी तरहकी मर्यादाका पालन न करने पर भी वह सुरक्षित है। अिसलिअे यह मानते हुअे भी कि अिन सस्कारोका बल बहुत बडा है, स्थूल मर्यादाके पालनमें कभी लापरवाही नही करनी चाहिये।

पतिव्रतधर्मके सस्कार डालनेके लिअे शास्त्रोने, शिक्षकोने या घरके बडे-बूढोने चाहे जितनी कोशिश की हो, तो भी यह बात याद रखनी चाहिये कि 'कुअेमे पानी हो तभी हौजमे आवेगा'। यदि पुरुष शीलके पालनमे ढीले हो, तो स्त्रिया शीलका दृढतासे पालन करनेवाली हो ही नही सकती। क्योंकि लडकीको भी पिताके गुणदोषोकी विरासत मिलती ही है। मतलब यह कि पुरुषोकी पत्नीव्रतकी भावना तीव्र होगी तो ही स्त्रियोकी पतिव्रतकी भावना तीव्र हो सकती है। और पुरुषोकी पत्नीव्रतकी भावना तीव्र होती है, अैसा देखनेमे नही आता। अिस कारणसे भी स्त्रियोको अपनी पतिव्रतधर्मकी भावना पर अत्यधिक विश्वास नही करना चाहिये।

अुसमे भी जहां स्त्रीको अपने पति या कुटुम्बसे किसी तरहका असतोष हो, जहा अुसका अनादर होता हो या अुसके गुणोकी कदर न होती हो, अुसके प्रति प्रत्यक्ष रूपमे प्रेम या ममता न बताअी जाती हो, या जहा आदर्श या स्वभावके किसी भेदका भान हो, वहा यदि कोअी दूसरा पुरुष स्त्रीके आदर्श या स्वभावके अधिक अनुकूल बरताव करनेवाला मिल जाय और अुसके साथ कुछ ज्यादा प्रेम या आदरका बरताव करे, थोडी सहानुभूतिसे अुसे कोअी बात बतावे, सिखावे, समझावे या अुपयोगी सिद्ध हो, तो अुसके प्रति अैसी स्त्रीके मनमें अपनेपनका भाव पैदा होना स्वाभाविक माना जायगा। अैसे पुरुषके दिलमे अगर चोर छिपा हो या बादमे आकर घुस जाय, तो अुसके द्वारा स्त्रीके स्वभावमे रही अूपर बताअी हुअी भावुकता और कृतज्ञताकी भावनाका दुरुपयोग होनेका पूरा डर है।

अिसलिअे राजमार्ग — सैकडो स्त्रियोके लिअे निर्भयतासे चलनेका मार्ग — तो यही है कि परपुरुष चाहे जितना सच्चा, सादा, प्रेमल, शुद्ध और आदर्शवादी मालूम हो, तो भी अुसके साथ अेकान्तमे न रहा जाय, अुससे हसी-मजाक न किया जाय, विशेष प्रयोजनके बिना अुसका अगस्पर्श न किया जाय या न होने दिया जाय, अर्थात् मर्यादाको लांघकर अुसके साथ बरताव न किया जाय।

लाखो मनुष्योमें कोअी विरले स्त्री-पुरुष ही अैसे हो सकते है, जो मर्यादाके बन्धनमे न रहते हुअे भी पवित्र रह सकते है। वे अपनी अुमर हमेशा पाच वर्षके बालक जितनी ही अनुभव करते है और दूसरे स्त्री-पुरुषोके लिअे माता या पिता अथवा लड़की या लड़केके सिवा दूसरी दृष्टिको समझ ही नही सकते। अैसी साध्वी स्त्री या साधु पुरुष पूजने लायक है। लेकिन जो कभी भी विकारका अनुभव कर चुके है, अुन्हे तो भागवतका यह वचन सच मानकर ही चलना चाहिये :

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोऽन्वखडितधीः पुमान्।
ऋषि नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ? ॥

'अेक नारायण ऋषिको छोडकर ब्रह्मा, देव, दानव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिमे से कोअी अेक भी अैसा है, जो सर्जनकार्यमे स्त्रीरूपी मायासे खडित न हुआ हो?' जो पुरुषको लागू होता है, वही स्त्रीको भी लागू होता है।

हरिजनवधु, ३०-९-'३४

९

पर्दा और धर्मरक्षा

'स्त्री-पुरुष-सबध' नामका लेख पसन्द करनेवाले अेक भाअी पूछते है कि पर्दा करनेका रिवाज धर्मरक्षाकी दृष्टिसे तो नही बनाया गया हो? क्या अिसका बचाव नही किया जा सकता?

मेरा अुत्तर है — नही। धर्मकी रक्षाके लिअे व्यवहारकी मर्यादा बाधना और पालना जरूरी तो है, लेकिन अुस मर्यादाकी भी कोअी मर्यादा होनी चाहिये, वर्ना वह मर्यादा ही अधर्म बन जायगी। अुदाहरणके लिअे, खाने-पीनेकी चीजो, बरतनो, कपड-लत्ते वगैराके बारेमे स्वच्छताका नियम बेशक होना चाहिये। परतु जब हम अिस स्वच्छताको अेक अैसा धर्म बना डाले कि वह धर्मका अग बननेके बजाय धर्मकी आत्माका महत्त्व ग्रहण कर ले, तब स्वच्छताका वह नियम दोषरूप ही माना जायगा। झाडकी रक्षाके लिअे बाड लगानी चाहिये। लेकिन यह बाड ही झाडको निगल जाय, तो वह रक्षकके बदले भक्षक बन जायगी।

घूघट या पर्देकी प्रथावाले समाजमे भी मा, बहन या लडकी अपने पुत्र, भाअी या पिताका पर्दा नही करती। अगर अैसा हो तो वह अतिशयता ही कही जायगी। फिर भी मा, बहन या लडकीके साथ भी अेकातमे न रहा जाय और मर्यादामें रहकर ही हिल-मिला जाय, अिस सूचनामें धर्मकी मर्यादा बाध दी गअी है। जो नियम

मा, बहन या लडकीके साथके बरतावमे पाला जाय, वही दूसरी स्त्रियोके साथके बरतावमे विशेष आग्रहसे पाला जाय, यही धर्म है।

किसी स्त्री-पुरुषको अेक-दूसरेके सबधमे आना ही नही चाहिये, अैसा धर्म नही बनाया जा सकता। यदि दोनो अेक-दूसरेका मुह नही देखे, अैसा धर्म बनाकर स्त्री-पुरुष दोनोके लिअे अेकसा लागू किया जाय, तो अुससे भी सामाजिक जीवन अशक्य बन जायगा। कोअी सूरदास यदि यह देखकर अपनी आखे फोड ले कि वे पापी बने बिना नही रहती, तो वह अुसकी अपनी पसन्दगी मानी जायगी। लेकिन अैसा नही कहा जा सकता कि शील और पवित्रताकी रक्षाके लिअे आखे फोड लेना धर्म है। अगर कोअी भक्त-सप्रदाय आखे फोडनेका धर्म बना ले, तो अुसे रोकनेका भी कर्तव्य पैदा हो सकता है। अुसी तरह कोअी निवृत्ति-मार्गी भक्त या साधक ब्रह्मचर्य पालनेके लिअे स्त्री-सहवासका आठो प्रकारसे त्याग करे, तो वह अुनकी स्वतत्र पसन्दगी मानी जायगी; और वह कभी जरूरी भी हो सकती है। लेकिन अिसे यदि समाजका धर्म बना दिया जाय, तो अुसमें अतिशयताका दोष माना जायगा। अुसी तरह अगर किसी सुन्दर स्त्रीको यह अनुभव होता हो कि अपनी या पुरुषोकी रक्षाके लिअे अुसका मुह छिपाकर रहना ही सुरक्षित मार्ग है, और अिस कारणसे वह स्वेच्छासे बुर्का पहने या घूघट करे, तो अुसके खिलाफ शिकायत करनेकी शायद हमे जरूरत न रहे। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि अैसा करना अुसका धर्म है। अैसा धर्म बताया या अूपरसे लादा तो जा ही नही सकता। और अैसा धर्म बन गया हो तो अुसका विरोध भी करना पड सकता है।

घूघट या बुर्केवाले समाजमे स्त्रीके या पुरुषके शीलका स्तर अधिक अूचा रहता है, अैसा अनुभव नही है। अुलटे यह देखनेमे आता है कि जिस समाजमे स्त्री-पुरुष अुचित मर्यादामे रहकर साथ-साथ काम करते है, अुनमे जिस तरहकी सयम-शक्ति बढती है, वह पर्दे या घूघटवाले समाजमे नही बढती। पर्देकी प्रथावाले समाजके पुरुष जब पर्देको न माननेवाले समाजमे जाते है तो जल्दी फिसल पडते हैं, अैसा दोनो समाजोका अनुभव रखनेवाले कुछ लोग मानते हैं।

शरीर कितना ढका हुआ हो तो वह विकार शान्त करनेवाला या विकार पैदा करनेवाला कहा जा सकता है, यह ज्यादातर समाजके रिवाजो और हमारी आदतो पर निर्भर करता है। अेकाध बैरागी या बावाको सिर्फ लगोटीमे देखकर या अेकाध गरीब मजदूरनीको लगभग नग्नावस्थामे देखकर किसी साधारण स्त्री या पुरुषमें भी विकार पैदा नही होता। क्योकि अुनकी यह नग्नता शृंगारके लिअे नहीं होती। लेकिन पूरा शरीर ढककर या बुर्का ओढकर भी कोअी नट या नटी अथवा कोअी रसिक स्त्री या पुरुष विकार पैदा कर सकता है। क्योकि अुसका वस्त्रका आवरण भी शृंगारके लिअे, विलासके लिअे होता है। कमसे कम कपडे पहनकर शरीरके बहुतसे भाग खुले रखना यह आजकलकी फैशन है। गरीब लोग भी अैसा ही करते है। लेकिन वे अिसे शृंगार — रसिकता — कला समझकर नही करते। अिसलिअे अुनका यह पहनाव निर्दोष होता है। फैशनके लिअे अैसा करनेवालेका पहनाव निर्दोष नही कहा जा सकता। लेकिन अुस फैशनका भी अेक बार परिचय हो जानेके बाद अुसका आकर्षण कम हो जाता है। वह आकर्षण कम हो जाता है, अिसीलिअे बार-बार फैशने बदलती रहती है, क्योकि आकर्षण अुत्पन्न करना ही तो फैशनका खास ध्येय होता है।

अिसलिअे मै यह नही मानता कि धर्मकी रक्षाके लिअे घूघट या पर्देकी जरूरत है। घूघटसे स्त्री-जातिके साथ अन्याय हुआ है, अुसे कअी तरहके बुरे नतीजे भी भोगने पडे है तथा अुसके विकासमे रुकावटें पैदा हुअी है। अिसलिअे अगर यह अनुभव हो कि स्त्रियोके पर्दा करनेंसे पुरुषोंके विकार कुछ शान्त रहते है, तो भी अुसे धर्मका नियम नही बनाया जा सकता।

मै जब यह कहता हू कि सिर्फ पवित्रता पर आधार न रखकर स्थूल नियम भी पालने चाहिये, तो अुसका यह मतलब नही है कि मै स्थूल नियमोंके पालनको मनकी पवित्रताका स्थान देता हू।

हरिजनबंधु, ७–१०–’३४

१०

अभी अितना ही

स्त्री-पुरुष-सबंध पर मैंने जो तीन लेख लिखे हैं, अुन पर काफी चर्चा हुअी मालूम पडती है। अुन विचारोंको पसन्द करनेवाली, कुछ अंश तक पसद करनेवाली और नापसन्द करनेवाली टीकाये मेरे पास आअी है। और अुनमे से अैसी सामग्री आसानीसे अिकट्ठी हो सकती है, जिस पर कअी लेख लिखे जा सके। मित्रोने अंग्रेजी अखबारोकी जो कतरने मेरे पास भेजी है, अुनसे मालूम होता है कि विलायतमें भी अिस प्रश्नकी आजकल काफी चर्चा हो रही है। फिर भी 'हरिजन-बंधु' के अुद्देश्य और मर्यादाका विचार करने पर मुझे लगता है कि अुसमे अिस विषयकी चर्चा लगातार मैं चालू नही रख सकता। अिनमें से जितने प्रश्न सिर्फ शहरी या बहुत पढे-लिखे या सभ्य समाजमें ही तीव्र बन गये है और जिनसे हरिजन, गावके लोग या अुनमें काम करनेवाले लोग लगभग अछूते हैं, अुन प्रश्नोकी चर्चाके लिअे अिस पत्रमे कम स्थान हो सकता है।

लेकिन मै दो-तीन बातोकी ओर पाठको और टीका करनेवालोका ध्यान खीचता हू। पहली यह कि कोअी चीज जल्दीमे नही पढनी चाहिये। अपने लेखोमे मैंने जो बात लिखी नही, सुझाअी नही, अुसका भी कुछ टीकाकारोने मुझ पर आरोप किया है। अुदाहरणके लिअे, कुछ लोगोको लगा कि मैंने यह नियम सुझाया है· स्त्रियो और पुरुषोको साथ मिलकर कोअी सामाजिक काम करने ही नही चाहिये; वे मिलें तो भी अुन्हे विनोदका अेक भी वाक्य नही बोलना चाहिये, वगैरा। अैसा अर्थ अुन्होने कैसे निकाला, यह मेरी समझमे नही आया; लेकिन यह जरूर है कि मै स्त्री-पुरुषोके परस्पर मिलनेमे मर्यादा-पालनकी आवश्यकता मानता हू। और जो मर्यादाअें मैंने सुझाअी है, वे मेरे खयालसे स्त्री-पुरुषोंके साथ मिलकर काम करनेमे बाधा नही डालती।

यह मैं सोच भी नही सकता कि साथ मिलकर काम करनेके लिअे अेक-दूसरेके साथ अेकातमे रहने, अेकातमे गुप्त वाते करने, या जान-बूझकर अेक-दूसरेके अगोको छूनेकी जरूरत क्यो पैदा होनी चाहिये। अेक खास अुमरमे केवल पुरुप-पुरुषका और स्त्री-स्त्रीका अैसा सहवास भी अनिष्ट होता है, तव यदि स्त्री-पुरुषका साथ ज्यादा अनिष्ट सिद्ध हो तो कोअी अचरजकी बात नही।

कुछ नवयुवक अिस वातका विश्वास दिलाते है कि ३० वर्षकी भर जवानीमे होते हुअे और जवान लडकियोके साथ आजादीसे मिलते हुअे भी अुन्होने पवित्र जीवन विताया है, और मेरी बताअी हुअी मर्यादाओंके पालनकी जरूरत नही महसूस की। अुनका जीवन पवित्र रहा है, यह अुनकी वात मैं सच मान लेता हू और अुन्हे वधाअी देता हू। मैं चाहता हू कि अुनकी यही स्थिति जीवनके अन्त तक बनी रहे। लेकिन अुन्हे सावधान कर देता हू कि जीवनके अितने ही अनुभवसे वे फूलकर कुप्पा न हो जाय। यह तो अैसी वात हुअी, जैसे कोअी कहे कि हम २० वर्ष तक आगसे जले नही, अिसलिअे आगसे जलनेका डर झूठा है।

वहुतसे नवयुवकोको शायद यह पता नही होगा कि पुरुषके जीवनमे —और खास करके महत्त्वाकाक्षी पुरुषके जीवनमे —नीचे गिरनेका समय ३५–४० की अुमरके वाद आरभ होता है। डॉक्टरो, मनोवैज्ञानिको और वृद्धोका अनुभव है कि पिछले २५ वर्षके आकडे यह वताते है कि व्यभिचारी जीवन बितानेवाले पुरुषोका बडा हिस्सा ३५-४० की अुमर पार कर चुकनेवालोका रहा है। अिसके पीछे कारण भी रहता है। अिस अुमर तक अुत्साही नवयुवकोके हृदयमे विषय-भोगकी अपेक्षा छोटी-मोटी अभिलाषाये पूरी करनेके मनोरथ ज्यादा बलवान होते है। भोगविलासका अिस अुमरमे प्रमुख स्थान नही होता। अिसलिअे वे अिस अिच्छाको दवा भी देते है। अिस अुमरमे भी जो युवक भोगोके पीछे पडा हो, वह रोगी कहा जा सकता है। अिस अुमरके बाद अुसके जीवनमे थोडी स्थिरता आती है, वह दौडधूप और चिन्ताओसे मुक्त हो जाता है, शायद कुछ फुरसतवाला, स्वतत्र और

पहलेकी अपेक्षा खाने-पीनेके ज्यादा सुभीते पा सकनेवाला हो जाता है। असकी महत्त्वाकाक्षाये ठडी पड जाती है; और अगर असका जीवन प्रपचमे बीता हो तो वह थोडा बहुत धूर्त भी बन जाता है। अिसके साथ यदि असकी सदाचार और नैतिकताकी भावना शिथिल हो, तो असके गिरनेकी सभावना बढ जाती है। अिसीलिअे यह कहा जाता है कि व्यभिचारी पुरुषोंका बडा हिस्सा अिस अुमरको पार कर चुकनेवाला होता है।

अिस परसे यह कहा जा सकता है कि ३० वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालनेकी बात कहना किसी असभव बातकी सूचना नही है। लेकिन अिसका यह अर्थ नही किया जा सकता कि अिस अुमर तक नियमोंका पालन करनेकी जरूरत नही, या नैतिक भावनाका सस्कार मजबूत करनेकी जरूरत नही, या कि अिस अुमरसे पहले विवाह-सबध जोडे बिना किया गया विषयभोग निर्दोष है। यह तो वैसा ही होगा जैसे यह कहना कि आम तौर पर 'केन्सर' ३५-४० की अुमरके बाद होता है, अिसलिअे अिस अुमर तक यह रोग अुत्पन्न करनेवाली चीजे छूटसे खाअी जा सकती है।

जो तीन अग्रेजी लेख मेरे पास भेजे गये है, अुनमे ऑक्सफोर्ड-केम्ब्रिज जैसे बडे विश्वविद्यालयोमे पढनेवाले युवक-युवतियोके सबधोकी चर्चा की गअी है। लेखक अलग-अलग रायके है। लेकिन तीनो लेखक अेक बात अवश्य स्वीकार करते है। वह यह कि पिछले २५ वर्षोंकी अपेक्षा अिन २५ वर्षोंमे विवाहसे पहले युवक-युवतियोके बीच सभोगकी मात्रा बढ गअी है, यह कहनेमे अतिशयोक्ति नही है कि लगभग अेक-तिहाअी स्त्रिया विवाहसे पहले सभोग कर चुकी होती है, और अैसा करना नैतिकताके खिलाफ है, यह मान्यता अब नही रही या तेजीसे मिट रही है। सतति-नियमनके साधनोकी मददसे अिसका स्थूल डर कम हो गया है। अेक लेखक अिसमें अग्रेज जनताका नाश देखते है। मै अुनके साथ सहमत हू। हमारे देशमे भी अिस विचारकी लहर फैल रही है, यह बुरी बात है। अिसमे मै हिन्दुस्तानकी प्रजाका कल्याण नही देखता।

लेकिन अितनी चर्चा काफी होगी। व्यास बनाम जैमिनिका यह झगड़ा बहुत पुराना है, और जीवनके अन्त तक चलता ही रहेगा। अिसके पीछे सिर्फ सच्चे या गलत तर्कका भेद नही, बल्कि मनकी रचनाका भेद है। बुद्धिमान पाठक नीर-क्षीर-न्यायसे अिसमे से जो पसन्द हो वह ले ले और बाकी छोड दें, अिससे ज्यादा आशा नही रखी जा सकती।

हरिजनबधु, २१-१०-'३४

११

सहशिक्षा

जब आचार-धर्मकी मर्यादाओका अतिरेक होता है, मर्यादाओकी मर्यादा टूटती है, तब अुलझने पैदा होती है। जब तक विवेकयुक्त मर्यादाअे कायम करके अुनके पालनका आग्रह रहता है, तब तक कठिन समस्याअे पैदा नही होती।

मर्यादाका अतिरेक दो तरहसे होता है अस्वाभाविक मर्यादाअे बाधकर और अुचित मर्यादाओकी अुपेक्षा करके।

स्त्री और पुरुषके बीचका भेद गाय और घोडेके जैसा योनिभेद नही है; बिल्ली और चूहे जैसा भक्षक-भक्ष्य प्राणियोका भेद तो वह और भी कम है। स्त्री और पुरुषके बीच लिंगभेद है — योनिभेद नही। जो नियम अिन्हें अलग योनिके प्राणी मानकर अलग-अलग बाडो या पीजरोमें रखनेकी कोशिश करते है, अुन नियमोका भी भग होता है। क्योकि अिनके भीतरकी सजातीयता किसी न किसी तरह जोर किये बिना नही रहती।

परतु स्त्री और पुरुषके बीच लिंगका भेद तो है ही। वह भेद अकस्मात् पैदा नही हुआ, बल्कि सृष्टिका अेक महत्त्वपूर्ण और व्यापक सत्य है। अिस भेदके पीछे दोनोके अलग-अलग धर्म हैं। यह लिंगभेद

है ही नही, अैसा मानकर आचरण करनेका प्रयत्न किया जाता है, तो वह प्रयत्न भी व्यर्थ सिद्ध होता है। क्योंकि यह भेद प्रकृतिका ही बनाया हुआ है, अिसलिअे वह भी किसी न किसी तरह जोर किये बिना नही रहता।

मनुष्य भी आखिर तो अेक पशु ही है। अिसलिअे यदि वह अपनेको पशु समझे और पशुकी तरह ही बधनोसे परे रहकर प्रकृतिकी प्रेरणाके अनुसार बरताव करे तो वह अेक दिशाका अतिरेक होगा। क्योकि मनुष्यको प्रकृतिने तो पशु बनाया है, लेकिन अुसने अपना जीवन प्रकृतिकी गोदमे ही नही रख छोडा। अुसने अपनी सारी रहन-सहन और जीवन-व्यवस्था विकृत या सस्कृत की है। यानी कितनी बातोमें विकृत की है, तो कितनी ही बातोमें सस्कृत भी की है। अिसलिअे बिलकुल अनियत्रित या प्रकृति द्वारा नियत्रित जीवन अुसके लिअे सभव नही है। अिस सच्चाअीको न माननेसे अेक अतिरेक पैदा होता है।

लेकिन मनुष्य अप्राकृत या सस्कृत बना हुआ है, अिसलिअे वह सब प्राणियोके समान धर्मोसे सर्वथा परे रह सकता है, वह पशु है ही नही, अिस विचारसे दूसरा अतिरेक पैदा होता है। क्योकि विकृति और सस्कृति दोनो शाखाये प्रकृतिमें से ही निकली है। और अुसीसे अन्तमे अुन्हे जीवन-रस मिलता है। अिसलिअे मनुष्यमे रहे पशुभावको भी समझना ही पडेगा। अिसके सिवाय कोअी चारा नही।

अिस तरह मनुष्य दूसरे प्राणियो जैसा प्रकृतिका अेक बालक है। अुसमे प्रकृतिको विकृत या सस्कृत बनानेकी शक्ति तो है, पर अुससे पूरी तरह स्वतत्र हो जानेकी शक्ति नही है। दूसरे प्राणियोकी तरह अुसमे स्त्री और पुरुषके भेद है। ये भेद गाय और घोडेकी तरह योनिभेद पैदा करनेवाले नही, बल्कि गाय और बैलकी तरह अलग-अलग धर्म पैदा करनेवाले है।

यह सारी वस्तुस्थिति हम ध्यानमे रखें, तो ही अुलझनें सुलझ सकती है। अिनमे से अेककी अुपेक्षा करे, या दूसरी बातको सारा महत्त्व दे दे, तो अुलझनें अवश्य पैदा होगी।

* * *

अूपर कहा गया है कि मनुष्यने प्रकृतिको विकृत भी किया और सस्कृत भी किया है। यह विकृति और सस्कृति अेक-दूसरेसे अलग भी नही की जा सकती। प्रकृति कुछ अिस तरहकी है कि जब तक कोअी अुसे छेडता नही, तभी तक वह शुद्ध प्रकृति रहती है। छेडते ही वह कुछ हद तक विकृत होती है—बुरे परिणाम देनेवाली बनती है और कुछ हद तक सस्कृत होती है—अच्छे परिणाम देनेवाली बनती है। अुसके प्रत्येक स्पर्शसे जो शाखा फूटती है, अुसमे विकृति और सस्कृति दोनोके अश रहते हैं।

अुदाहरण लीजिये. प्राणी अपनी दिगंबर अवस्थासे शरमाते नही। वे ठड और धूपसे बचनेके लिअे गुफामे, खड्डेमे, पेडके नीचे या झाडीमे घुसते हैं। लेकिन अैसा वे सिर्फ ऋतुओसे या दुश्मन प्राणियोसे बचनेके लिअे करते हैं, अपनी दिगबर अवस्थाको छिपाने या गुप्त रहनेके लिअे नही।

लेकिन मनुष्यको अपनी दिगबर स्थितिसे शरम मालूम हुअी और अुसने गुप्तता (privacy) की अिच्छा की। अुसने कपडे पहने और मकान बनाये। प्राकृत (कुदरती) स्थितिको छेडा। अिससे अुसने सस्कृति और विकृति दोनो फल पाये हैं। अुसके कपडो और घरमे से अुसकी समाज-व्यवस्था अुत्पन्न हुअी। लेकिन अुसके कपडो और घरने ही अुसे ज्यादा विलासी बनाया। अुसके कपडे और घर केवल अुसकी रक्षाके ही साधन नही रहे, बल्कि अुसके भोगविलासको बढानेके साधन भी बने। अिस कारणसे अुसका सयम और विकारवशता दोनो पशुसे भिन्न प्रकारके रहे।

अिसी तरह वह पशुओके बीच होनेवाले नर-मादाके कुदरती व्यवहारोंसे भी शरमाया। अुसने कुटुम्बकी व्यवस्था बनायी। प्रकृतिको और छेडा। लेकिन अिसमें से भी अुसे सस्कृति और विकृति दोनो ही फल मिले। अुसने कुटुम्बके जरिये कअी अच्छे गुणो और सभ्यताका विकास किया। मा-बेटे, बाप-बेटी, भाअी-बहन आदिके बीच दोनोंके विजातीय होते हुअे भी साधारण तौर पर अविकारी प्रेमका विकास

किया। दूसरी तरफ वह सकुचित विचारवाला भी बना; कुटुम्ब, जाति, देश, आदिके अभिमानोमे बध गया।

* * *

मनुष्यके लिअे अब फिरसे प्रकृतिकी गोदमे जाकर प्राकृत जीवन बिताना कठिन है। क्योकि अुसने जो अेक अवयव पाया है और जिसके मीठे फल भी चखे है अुसे वह अपने भीतरसे निकाल नही सकता। वह अवयव है बुद्धि — विवेक। जब तक मनुष्य बुद्धिमान प्राणी बना रहेगा, तब तक अुसके लिअे प्रकृतिका शुद्ध प्राणी बनना असभव है। अुसका सस्कृत और विकृत हुअे बिना भी छुटकारा नही।

अुसकी बुद्धि अुसे किसी न किसी तरह प्रकृतिको छेडनेकी प्रेरणा देती है और आगे भी देती रहेगी। जैसी स्थिति है वैसीकी वैसी बनी रहे — या वह अपने-आप बदले तो भले बदले — अिससे मनुष्यको कभी सतोष नही हो सकता। वह प्रकृतिको सस्कृत बनानेकी कोशिश करता ही रहेगा। और सस्कृत बनानेकी कोशिशमे अुसे विकृत भी बनावेगा ही। अिस प्रकृतिको वशमे रखना मनुष्यका सदाका कर्तव्य माना जायगा। घोडे पर बैठकर अुसे अुसकी मरजीसे चलने देनेवालेके लिअे लगाम और रकाब रखनेकी जरूरत नही। लेकिन घोडेको अपनी मरजीके मुताबिक चलानेकी अिच्छा रखनेवालेको तो दोनो ही रखने होगे। और लगाम व रकाब दोनो पर हमेशा ध्यान रखे बिना अुसका काम नही चल सकता। हा, ध्यान रखनेकी अुसे अैसी आदत पड जाय कि अुसके लिअे विशेष परिश्रम करनेका अुसे भान ही न रहे, तो बात दूसरी है। यह अभ्यासका — कुशलताका नतीजा माना जायगा। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि अभ्यास हो जानेसे अिस तरफ अुसे ध्यान ही नही देना पडता। बात अितनी ही है कि ध्यान देनेमें अुसे कोअी श्रम नही मालूम होता।

अिस तरह मनुष्यने कुटुम्ब बनाकर यह अनुभव किया कि स्त्री-पुरुषके बीच अविकारशील प्रेम भी सिद्ध किया जा सकता है। मा-बेटे, बाप-बेटी और भाअी-बहनमें लिंगभेद होते हुअे भी अुनके

वीच अेक तरहका अैसा स्वाभाविक प्रेम हो सकता है, जिसका विकारके साथ कोअी सवध न हो।

परन्तु समझदार मनुष्यने यह भी देखा कि यह प्रेम भी विकारके भयसे विलकुल मुक्त है, अैसा नही कहा जा सकता। यह प्रेम-सम्वन्ध सस्कृतिसे निर्माण हुआ है, कुदरती नही है। अिसलिअे अुसकी यदि सावधानीसे मर्यादा न वाधी जाय, तो वह भी विकृत वन सकता है। मनुष्यने अिस प्रेमकी महत्ता और पवित्रता समझी और अुसे वनाये रखनेकी जरूरत महसूस की। अुस प्रेमकी शुद्धताको कोअी आच न आवे, अिसके लिअे अुसने मा-वेटे, वाप-वेटी, और भाअी-वहनके वीच भी व्यवहारके नियम सुझाये, अुनके वीचके प्रेमाश्व पर भी लगाम और रुकावका अकुश लगा दिया।

* * *

प्राणियोकी तरह ही — लाखोमे से अेकाध व्यक्तिको अपवाद माने तो — अधिकतर मनुष्योमे देरसवेर विजातीय परिचय और स्पर्शकी वासना जाग्रत होती है। प्रजाततुको अविच्छिन्न बनाये रखनेके लिअे प्रकृतिने जो योजना वना रखी है, अुसीके अनुसार यह वासना पैदा होती है। परिचय, परिचयात्मक स्पर्श और सभोग — अिस तरह क्रमश यह वासना वढती है।

पशु कपडे नही पहनते और घर वनाकर कुटुम्बके रूपमे वधे नही रहते, अिसलिअे अुनकी यह वासना प्रकृतिकी प्रेरणाके अधीन ही रहती है। प्रकृति अमुक समय पर अुनकी अिस वासनाको जाग्रत करती है और वह समय वीत जानेके वाद अुसे शान्त भी कर देती है। मनुष्य विकृत और सस्कृत दोनो है, अिसलिअे अपनी वासनाके नियत्रणका मार्ग अुसे खुद ही सोचना पडता है।

अिससे स्त्री-पुरुषके परिचयकी, स्पर्शकी और सभोगकी मर्यादा अुत्पन्न होती है।

अिस मर्यादाके भीतर होनेवाला परिचय सद्भावनाओका पोषण करता है, स्पर्श सेवाके लिअे होता है और सभोग निर्दोष होता है। अिस मर्यादाको छोडकर होनेवाला परिचय और स्पर्श विलासी

भावनाओका पोषण करता है, और अुसका परिणाम व्यभिचार और वर्णसकरता होता है।

किन्तु परिचय, स्पर्श और सभोगकी मर्यादा बाधनेके बजाय अुनका आत्यतिक निषेध किया जाय तो भी काम नही चलता। अिससे प्रकृतिकी प्रेरणा विकृत मार्ग ग्रहण करती है।

* * *

अिस तरह सहशिक्षाका प्रश्न अिस विशाल प्रश्नका ही अेक अंग है कि स्त्री-पुरुषके परिचय, स्पर्श और सभोगकी मर्यादा क्या होनी चाहिये।

क्योकि सहशिक्षामे सिर्फ लडके-लडकियोको अेकसाथ पढानेकी ही समस्या नही है, बल्कि शिक्षको और शिष्याओ तथा शिक्षिका (या गुरुपत्नी) और शिष्योके सहवास और स्पर्शकी तथा स्त्री-पुरुषकी मित्रता और सहकार्यकी भी समस्याये है।

* * *

बहुत लोग अैसा कहते है, और मै भी अिसे स्वीकार करता हूं, कि जीवनमे ब्रह्मचर्याश्रमका सबसे बडा महत्त्व है। लेकिन यह बात याद रखनी चाहिये कि ब्रह्मचारीका जन्म भी गृहस्थके घर ही होता है। अर्थात् यह बात समझनेकी जरूरत है कि प्रजाका गृहस्थ-जीवन जितना पवित्र होगा, अुससे अधिक पवित्र ब्रह्मचारी कोअी समाज निर्माण नही कर सकेगा। जिस प्रजाका गृहस्थ-जीवन अपवित्र होगा —पतिव्रत और पत्नीव्रतका आदर्श शिथिल होगा—अुस प्रजामे बडी सख्यामे शुद्ध ब्रह्मचारी कभी नही हो सकते।

अिसलिअे यह जाच करनेकी जरूरत है कि हमारा कौटुम्बिक जीवन कैसा है। हम अुसे जितना शुद्ध मानना चाहते है, अुतना शुद्ध वह है नही।

स्त्रियोंको हम पातिव्रत्य और सतीत्वका अुपदेश देते आये है। सती स्त्रियोकी हमने कितनी ही कथाये गढ डाली है। सतियोकी नामावलीके श्लोक भी रचे गये है। परन्तु यह बात अच्छी तरह समझ लेनेकी जरूरत है कि यदि पुरुषोके बहुत बडे भागमे पत्नीव्रतकी

भावना शिथिल हो, तो अत्यन्त सावधानीसे सतीत्वकी रक्षा करनेवाली स्त्रिया समाजमें अुत्पन्न हो ही नही सकती।

शात चित्तसे हम अिस विषय पर विचार करेगे तो पता चलेगा कि :—

अेक, अब्रह्मचर्यके दोष सहशिक्षाकी सस्थाओमें ही होते है अैसा नही है; वे केवल लडको या लडकियोकी सस्थाओमे भी होते है, और परिवारके वीच भी होते है।

दूसरे, अिस विषयमे पुरुषके दोषोके प्रति समाजको अितनी घृणा नही होती जितनी कि स्त्रियोके दोषोके प्रति होती है। हमने स्वयं या हमारे लडकेने कोअी दोष किया हो, तो कुअेंमे डूब कर मर जानेकी हमारी अिच्छा नही होती, न यही लगता है कि अब कभी अैसे लडकेका मुह भी नही देखना चाहिये। लेकिन हमारी पत्नी या लडकीने दोष किया हो तो हमे या हमारे कुटुम्बको कलक लगने जैसा महसूस होता है। परन्तु जो दूसरेके कुटुम्बको कलक लगनेकी वातको तुच्छ मान सकता है, अुसका अपनी पत्नी या लडकीके प्रति या अुसे भ्रष्ट करनेवालेके प्रति क्रोध करना व्यर्थ है।

तीसरे, हम अिन हकीकतोको न भूले.

ठेठ प्राचीन कालसे दुनियामे वेश्यावृत्ति राज्य और समाज द्वारा मान्य किये हुअे धधेके रूपमे पोषण पाती आअी है।

वाममार्गका भी अेक तत्त्वज्ञान वना लिया गया है, और अुसने व्यभिचारको साधनाका अेक अग माना है। वेदान्तके विचारकोने भी कअी बार अुसका समर्थन किया है, और अुसका पोषण करनेवाला भक्तिमार्ग भी मौजूद है।

जिनमे शरीरस्पर्श अनिवार्य हो जाय, अैसे व्यक्तिगत सेवाके सारे धधे आम तौर पर स्त्रियोके ही माने जाते है, जैसे, रजवाडोमे दासिया, अस्पतालोमे नर्सें, गुसलखानोमे मालिश करनेवाली स्त्रिया।

अूचे माने जानेवाले वर्णोमे जवरन् वैधव्यका पालन कराया जाता है; और आर्थिक जिम्मेदारीसे वचनेके लिअे ही पुरुषो और स्त्रियोको अविवाहित जीवनकी जरूरत महसूस होती है।

चौथे, सामाजिक तत्त्वज्ञानमे आज नीचेके विचार फैल रहे है:

१. विवाह अेक कृत्रिम व्यवस्था है। यह पशुधर्म — या जिसे अिन विचारोके हिमायती 'मुक्त प्रेम' कहते है, वह नही है। प्रायोगिक विवाह, सीमित कालके विवाह, आदि प्रथाओंकी भी चर्चाअे चल रही है।

२ सभोगसे प्रजोत्पत्ति होनेका और कुछ रोग हो जानेका डर रहता है। अिसे अगर सुरक्षित ढगसे टाला जा सके, तो अुसके प्रति किसी तरहकी धर्म या अधर्मकी भावनासे देखनेकी जरूरत नही; बल्कि केवल स्वास्थ्यकी, परस्पर संमतिकी और आनन्द-प्राप्तिकी दृष्टिसे विचार करनेकी जरूरत है। यह अेक तरुणावस्थाके लिअे अुचित, परन्तु थोडा जोखिमभरा, खेल ही है। अिसे धर्माचार या कामाचार मानना अधविश्वास है।

३. लिगभान (sex-consciousness) का पैदा होना ही विकारका कारण है। विजातीय परिचय या स्पर्श विकारका कारण नही है। विजातीय परिचय या स्पर्शकी आदत न हो, तो थोडे निमित्तसे ही यह भान पैदा हो जाता है। परिचय और स्पर्शकी नित्यकी आदत पड जानेके बाद हम स्वय और सामनेवाला व्यक्ति पुरुष है या स्त्री, अिसका खयाल नही आता और विकारका अनुभव नही होता।

४. बाप-बेटी, मा-बेटे और भाअी-बहनको भी मर्यादामे रहकर बरताव करना चाहिये, अैसा सुझानेवाले स्मृतिकारमे विकृत लिगभानकी पराकाष्ठा हो गअी है। अुलटे, अुसे यह विचार सुझाना चाहिये था कि बाप-बेटी, मा-बेटे या भाअी-बहन जिस निसकोच भावसे आपसमें बरताव करते है, वही निसकोच भाव गुरु और शिष्याको, शिक्षिका (या गुरुपत्नी) और शिष्यको, विद्यार्थी और विद्यार्थिनीको, या दूसरी तरहसे साथ-साथ काम करनेवाले स्त्री-पुरुषोको परस्पर व्यवहारमे दिखानेकी आदत डालनी चाहिये।

जो पिता या भाअी लडकी या बहनका हाथ पकडते हुअे, अुसके साथ अकेले बैठते हुअे, अुसके कधे पर हाथ रखते हुअे, प्रेम अुमडने पर अुसे चूमते हुअे या अुसे वस्त्रहीन दशामे देखते हुअे

विचारमे पड जाता है, वह बहुत हीन मनुष्य होना चाहिये। और यदि अिन लोगोके साथ वह निर्विकार और नि सकोच रह सकता है, तो दूसरी स्त्रियोंके साथ क्यो नही रह सकता? अिसलिअे वह जिस तरह अपनी लडकी या बहनके साथ व्यवहार करता है, अुसी तरह अपनी शिष्या या सखीके साथ नि सकोच व्यवहार रखनेकी आदत डाले।

*　　　*　　　*

मुझे लगता है कि सहशिक्षाके कारण दोष पैदा होते है और अलग-अलग शिक्षा पानेसे नैतिक पतन नही होता, यह कथन सही नही है। लेकिन स्कूल-कॉलेजो और समाजमे धार्मिक तत्त्वज्ञानके नाम पर जो अुपर्युक्त विचार फैल रहे है, वे आजके अब्रह्मचर्य-सबधी दोषोके लिअे अेक महत्त्वका कारण है।

अिन विचारोको मै प्रजाको नैतिक पतनकी ओर ले जानेवाले मानता हू। जब किसी देश या धार्मिक सप्रदायमे पैसा बढ जाता है, तब अैसा तत्त्वज्ञान अलग-अलग रूपोमे अुत्पन्न हो जाता है। लेकिन वह सिर्फ पैसेवाले वर्गमे ही नही रहता। दुर्भाग्यसे वह गरीबोमे भी फैल जाता है, और अुसके बुरे परिणाम अुस तत्त्वज्ञानके अुत्पादकोकी अपेक्षा गरीबोको ज्यादा भोगने पडते है।

सस्कृतिका अर्थ अूर्ध्वगति है। अूर्ध्वगतिमे पल-पल पर प्रयत्न करना पडता है। बहुत जोरसे अूचा फेका हुआ गेंद कुछ सेकण्ड तक अूचा चढता मालूम होता है, लेकिन नीचे गिरानेवाली शक्तिका ही असर पल-पलमे अुस पर अधिकाधिक आक्रमण करता जाता है और अुससे वह पल-पल नीचे ही गिरता जाता है। क्योकि अुसे अूचा चढाने-वाली शक्ति हाथसे छूटनेके बाद चालू नही रहती। और नीचे गिरनेमें गतिकी तेजी बिना प्रयत्नके बढती जाती है। मानव-जीवनमें सस्कारिता और विकारिताको भी अैसे ही नियम लागू होते है। मानव-जातिने अनेक अच्छे गुणोका और अूचे चरित्रका जो विकास किया है, वह कदम-कदम पर अुनके चिन्तन, मनन और अभ्यासका प्रयत्न करनेसे हुआ है। यह प्रयत्न छोड दिया जाय तो चाहे जितनी अूची कोटि पर सस्कारिता पहुची हो, तो भी थोडे समयमें अुसका लोप हो

सकता है। अहिंसक मनोवृत्तिवाले मनुष्यको अपनी वृत्ति हिंसक बनानी हो, निःस्वार्थको स्वार्थीपन सीखना हो, या यतिको स्वच्छंदी बनना हो, तो मनको विचलित करनेके लिअे अेक ही बार धक्का देनेकी जरूरत रहती है। बादमें तो वह अपनी कल्पनासे भी ज्यादा नीचे गिर जाता है। लेकिन अहिंसक वृत्ति सीखने, निःस्वार्थ बनने और संयमी होनेमें पल-पल पर मनका अनुशीलन करनेकी जरूरत पड़ती है।

प्राणियोंका लिंगभेद अेक जन्मसिद्ध भेद है — प्रकृतिका भेद है। अिसलिअे लिंगभानका स्फुरण बिलकुल न हो, यह असंभव है। अिस स्फुरणको संस्कारी या विकारी बनाना हमारे हाथमें है। विकारी स्फुरणकी भी आदत डाली जा सकती है और संस्कारी स्फुरणकी भी। आदत पड़ जानेके बाद होनेवाली क्रिया अितनी सहजसाध्य या स्वाभाविक होती है कि अुसके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह 'भान' (consciousness) पूर्वक होती है। जिस स्वाभाविकतासे आंखकी रक्षाके लिअे पलकें हिल अुठती हैं, सिर पर आनेवाले वारको रोकनेके लिअे हाथ अूंचा हो जाता है, साअिकल सवार अपना तोल संभालता है, पनिहारिन अपना शरीर और घड़ा संभालकर पानी खींचती है, जिस स्वाभाविकतासे मूर्तिपूजकका सिर देवकी मूर्तिको देखकर झुक जाता है, या अेक सभ्य पुरुष किसी परिचित व्यक्तिसे मिलने पर नमस्कार करता है; अुसी स्वाभाविकतासे संस्कारी पुरुष या स्त्री दूसरी स्त्री या पुरुषके साथ मर्यादा रखकर व्यवहार करते हैं। सभ्य समाजमें जैसे बड़े-बूढ़ों और बालकोंके बीच आदर और व्यवहारके अेक प्रकारके नियम होते हैं, समाजके बीच दूसरे प्रकारके होते हैं, अधिकारी और कर्मचारीके बीच तीसरे प्रकारके होते हैं, अुसी प्रकार स्त्री और पुरुषके बीच आदर और व्यवहारके अेक प्रकारके शिष्ट नियम माने गये हैं, और सभ्य पुरुष अुनके अनुसार ही व्यवहार करता है। अिसमें लिंगभान नहीं होता अैसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु अुसका विकारी स्फुरण होता है या स्पष्ट स्फुरण होता है यह भी नहीं कहा जा सकता। वह अुसका सहज स्वभाव

ही वन जाता है। जिस प्रकार वह सभ्य समाजके अुठने, वैठने, खाने, पहनने वगैराके नियम पालता है, अुसी प्रकार अिन नियमोको पालनेमे वह अपनी सभ्यता समझता है। अिससे अुसकी और समाजकी दोनोकी रक्षा होती है और सस्कारिता वढती है।

* * *

स्त्री-पुरुपके सम्वन्धमे आज तक कितने ही मार्ग और रूढिया प्रचलित हुअी है : कुछ दक्षिण और कुछ वाम।

अिनमे से जो आशयकी दृष्टिसे दक्षिणमार्गकी मानी जा सकने-वाली, किन्तु अतिरेकयुक्त होनेके कारण विकृत मार्ग पर ले जाने-वाली रूढिया वन गअी है, अुनका भी विचार कर लेना चाहिये।

पहला तरीका ऋष्यशृगी पालन-पोषणका है। यह तरीका अैसा परहेज रखकर वालकका पालन-पोषण करनेका है, जिससे वह अिस अज्ञानमे रहे कि दुनियामे स्त्री-जातिका अस्तित्व ही नही है। अिसमे विजातिका दर्शन ही न हो, अिस ढगसे नियत्रण रखनेकी अलग-अलग पद्धतिया काममे ली जाती है। स्त्रियोके परदे — घूघटके पीछे कुछ हद तक यही विचार रहा है।

दूसरा तरीका . विकारोका अस्तित्व मानकर ही विकारोका निर्माण हुआ है, अैसा समझकर विकारोके अस्तित्वसे ही अिनकार करके अिस विश्वाससे वालकका पालन-पोषण करना कि जो निर्दोषता दो-तीन वर्षके वालकोमे होती है वैसी ही निर्दोषता जीवनमे सदा रह सकती है। अर्थात् जिस तरह दो-तीन वर्षके वालकोके व्यवहार पर लिंगभानकी दृष्टिसे कोअी अकुश नही होता, अुसी तरह सव अुमरवालोके लिअे भी माना जाता है। अिसलिअे अिसमे यह मानकर चला जाता है कि अकुश या नियमोके वन्धनसे पवित्रता रखनेका विचार न करके वालकोमे रहे शुभ वीजोका पोषण किया जाय, क्योकि वे ही वडे होने पर स्वतत्रतासे परस्पर सपर्कमे आने पर भी अुन्हे निर्दोष रखेगे।

अिन दोनो मार्गोमे अतिरेक होनेके कारण प्रकृतिकी सत्ता, विकृतिका वेग और सस्कृतिका नियम — अिन तीनोकी अुपेक्षा होनेसे

थोडा भी निमित्त मिलते ही अिन मार्गोमे पल-पुसकर बडे हुअे लोगोका जल्दी ही पतन हो जाता है।

अिससे अुलटा तरीका वाममार्गियोका है। अिसमे मर्यादामात्रका मजाक अुडाया जाता है। शिक्षाशास्त्र, समाजशास्त्र, वेदान्तशास्त्र, योगशास्त्र और भक्तिशास्त्र सभीमे अिसके प्रवर्तक मिलते हैं। अिसमें अनैतिकताका व्यवस्थित प्रचार होता है।

*　　*　　*

दोनो सीमाओंका त्याग करके बीचका मार्ग अपनानेसे ही स्त्री-पुरुषोके परस्पर व्यवहारमे पवित्रता रखी जा सकती है और सस्कारिताको बढाया जा सकता है। जो परिवार या व्यक्ति लालचमे नही फसे है या फसने पर भी बचकर निकल गये है, अुनसे पूछा जाय तो मुझे लगता है कि वे सस्कारी मर्यादापालनकी जरूरतको स्वीकारेगे।

केवल 'मन चगा' का सिद्धान्त शरीरको पवित्र नही रख सकता। केवल शरीरके स्थूल नियमोका पालन मनके बिगाडको रोक नही सकता, और अिसलिअे अन्तमे शरीरको भी बिगडनेसे रोक नही सकता। शुद्ध सस्कारोका मनको अभ्यास कराना और अच्छे नियमोका पालन करना — अिन दो सिद्धान्तोको स्वीकार किये सिवाय कोअी गति नही।

मेरी दृष्टिसे ये सस्कार और नियम अिस प्रकार है:

१. स्त्री और पुरुष दोनोका शरीर अेक पवित्र वस्तु है। अुसे बिना कारण किसीके स्पर्शसे दूषित नही करना चाहिये। किसीको — अर्थात् स्त्रीको पुरुषका या पुरुषको स्त्रीका ही नही, बल्कि स्त्रीको स्त्रीका या पुरुषको पुरुषका भी — बिना कारण स्पर्श नही करना चाहिये। जरूरतके बिना किसीका स्पर्श हो जानेसे बुरा मालूम हो और किसीका स्पर्श करनेमे सकोच हो, अैसा हमारा स्वभाव बन जाना चाहिये। अिससे बिना कारण किसीका आलिंगन करना, हाथ पकड लेना, किसीके गलेमे हाथ डालना, किसीसे लिपट पडना, आदि आदते बुरी — अशिष्ट — समझी जानी चाहिये। जगह होते हुअे भी किसीसे सटकर बैठनेका ढंग असभ्य माना जाना चाहिये। चुबन अेक गदी क्रिया है। छोटे

वालकोको सव कोअी चूमते है, लेकिन अुनसे पूछा जाय तो मालूम होगा कि माके अलावा किसी दूसरेका चूमना वे शायद ही पसद करते है। अितना ही है कि वे अुसे सह लेते है। छोटी अुमरके वालकोमे वहुत छोटे शिशुओको चूमनेकी अिच्छा होती है। लेकिन अुसमे चुम्वनकी वृत्ति नही होती। अुनके मनमे जिस तरहका प्रेम अुमडता है, वह ठीक वैसा ही है जैसा किसानोको खेतमे घूमते हुअे कोमल ककडी, टिडा, गिलकी वगैरा शाकभाजी देखकर अुमडता है, —यानी खा जानेका। किसी छोटे शिशुके सुकुमार हाथ-पाव देख-कर वालकोंके मनमे अुन्हे मानो खा जानेकी अिच्छा होती है। कअी लोगोने वालकोको अैसा कहते सुना होगा। मनको कावूमे रख-कर वे छोटे शिशुओको चूमकर ही रुक जाते है। कम समझवाले वालक कभी-कभी अुन्हे काट भी खाते है। लेकिन वे अिस वातको शायद ही पसन्द करते है कि दूसरे अुन्हे चूमे। किसी भी तरहसे अुनमे चूमने या चूमने देनेकी वातको नापसन्द करनेकी भावना पैदा करनी चाहिये। वालकोको अुसे सह लेनेके लिअे मजवूर नही करना चाहिये।

यह नियम मा-वेटे, वाप-वेटी, भाअी-वहन सवको लागू होता है। क्योकि यहा नियम नही वल्कि सस्कार वताया गया है।

२ अतिपरिचित स्पर्श अर्ध सभोग ही है। पूर्ण सभोगके लिअे अेक व्यक्ति और अर्ध सभोगके लिअे दूसरा अेक या अनेक व्यक्ति, यह पवित्र जीवन नही है। अिसलिअे अपने शरीरको परिचित स्पर्श करने देनेका अधिकार—विना किसी आपत्तिके—अेकको ही हो सकता है। वह है अपना (विवाह हो जानेके वाद) पति या पत्नी। हरअेक स्त्री या पुरुषको अैसी अपेक्षा रखनेका अधि-कार है कि अुसके साथ विवाह करनेवाले पुरुष या स्त्रीने किसीके स्पर्शसे अपना शरीर भ्रष्ट नही किया होगा।* जिस दम्पतीने

---

* अर्थात् पुनर्विवाहमे अपने पूर्व पति या पत्नीका अपवाद समझना चाहिये।

आपसके अिस अधिकारकी निष्ठापूर्वक रक्षा की होगी, वह दम्पती पवित्र है। अुनका सयम और सभोग दोनो समाजका कल्याण करेगे।

३. मा-बेटे, बाप-बेटी और भाअी-बहनके सहवासमे बढनेवाला प्रेम अेक अच्छे प्रकारका प्रेम-सम्बन्ध है। आपत्तिको छोडकर यह सहवास भी अेकातमे नही हो सकता। अिसमे भी जरूरतके बिना अेक-दूसरेका स्पर्श नही किया जा सकता। अिस मर्यादामे रहकर अूपर बताये हुअे सस्कारोवाला गुरु शिष्याके, शिक्षिका शिष्यके, शिष्य या शिष्या गुरुपत्नी अथवा शिक्षिकाके पतिके, या विद्यार्थी-विद्यार्थिनिया आपसमे अेक-दूसरेके परिचयमें आवे तो अुससे कोअी हानि नही होगी, बल्कि समाजका या अुन व्यक्तियोका भला ही होगा। जहां यह सस्कारिता नही है, अिन मर्यादाओंके लिअे आदर नही है, वहा विजातीय परिचयमे खतरा है।

४. सस्कारी गृहस्थ अपने घरको अेक पवित्र स्थान मानते है। अुसमें भोग है पर वह नियंत्रित है; अर्थात् जिस तरह देवको अर्पण किये हुअे भोजनमे प्रसादकी पवित्र भावना है, अुसी तरह अिस भोगके विषयमे पवित्र कर्मकी भावना है। अिसलिअे घरकी पवित्रताकी रक्षा करनेके लिअे अुन्हे किसी पेढीकी साख बनाये रखने जितनी चिन्ता रहती है। अैसी सस्कारितामे पल-पुसकर बडे होनेवाले बच्चोका पतन आसानीसे नही होता। अुसमे भाअी-बहन, देवर-भौजाअी, ससुर-बहू सब साथ-साथ रहते है, और अेक-दूसरेको देखकर न तो परदा करते या छिप जाते है, न बोलना बन्द करते है, न परदेके भीतरसे बोलते है, लेकिन अिस सहवासमे मर्यादा जरूर रखते है। स्कूल-कॉलेजोमे यही पवित्रता होनी चाहिये। स्कूल-कॉलेज कोअी वर-वधू खोजनेके बाजार नही, दूसरोकी लड़कियोंके साथ असभ्य या अनुचित बरताव करनेके, हसी-मजाक करनेके स्थान नही। शिक्षक वहा अपनी लडकियोको देखे और विद्यार्थी अपनी मा-बहनोको देखे, तो यह सहवास अेक-दूसरेकी वृत्तियोको स्थिर और गभीर बनानेवाला हो सकता है। यह भावना न हो तो अुसमे मलिनता अुत्पन्न हुअे बिना रह नही सकती।

५ यह भ्रम दूर करना चाहिये कि पच्चीस-तीस वर्ष तक पवित्रतासे ब्रह्मचर्यका पालन करना असभव है। बच्चोमे यह सस्कार डालना भी अुचित नही कि गृहस्थाश्रममे प्रवेश करना पतनका लक्षण है या लज्जाजनक चीज है। सभोग केवल कामाचार है, यह भावना गलत है। यह मानकर चलना ही अुचित है कि सैकडो स्त्री-पुरुष समय आने पर कामवासनासे प्रेरित होगे ही। अिसलिअे अुन पर अिस तरह सस्कार डालने चाहिये, जिससे अुन्हे धर्मसे विरुद्ध न जानेवाले कामकी दीक्षा मिले। धर्मसे विरुद्ध न जानेवाले कामकी शर्ते ये है विवाहके पहले किसी स्त्री या पुरुषके प्रति कामातुर दृष्टिसे देखना पाप है, कामातुर दृष्टिसे किसीका स्पर्श करना भी पाप है। अनावश्यक स्पर्श यदि निर्दोष लगे तो भी हरगिज नही करना चाहिये, क्योकि वह कर्तव्यरूप नही है। अिस दृष्टिसे विवाहका अर्थ होगा अपने पवित्र रखे हुअे शरीरको धर्मके विरुद्ध न जानेवाले सभोग द्वारा धार्मिक प्रजा अुत्पन्न करनेके लिअे अर्पण करनेका समारभ।

६ अिसलिअे कामातुर होकर पत्नी या पतिको खोजनेकी वृत्ति या किसी स्त्री या पुरुष पर पहले कामासक्त होकर बादमे अुससे विवाह करनेका निश्चय करनेकी प्रवृत्ति सस्कृति नही बल्कि विकृति है। हरअेक व्यक्ति अेक खास अुमरमे कामवासना या पति-पत्नी-व्यवहारका अर्थ समझता ही है। तब फिर अुसके लिअे यही विचारना रह जाता है कि अिस वासनाका ज्ञान होते हुअे भी अुसका वेग मुझमे कितना तेज है, और कितने समय तक अुसके लिअे सयमधर्म पालना आवश्यक है। अगर शरीर-सपत्ति और दूसरी परिस्थितिया अनुकूल हो, अुसकी अुमर विवाहके योग्य हो, और अेक व्यक्तिके स्पर्श या सभोगको सहन कर लेने जितनी अपनी स्पर्शघृणा कम हो गअी अनुभव करता हो, तो कामदृष्टिसे नही बल्कि व्यवहारकी दृष्टिसे वह योग्य साथी खोजनेका प्रयत्न करे, या अपने हितचिन्तको द्वारा करावे।

७ कामवासनाको समझ सकनेवाले और पति-पत्नीके व्यवहारकी कल्पना कर सकनेवाले सस्कारी स्त्री-पुरुष अेक-दूसरेसे थोडे

दूर रहे और किसीका स्पर्श करनेमे तथा किसीको घूरकर देखनेमें ज्यादा सावधानी रखे, तो अिसमे कोअी दोष नही, बल्कि विनय — सभ्य व्यवहार — ही है।

अिन नियमो द्वारा हजारो स्त्री-पुरुषोके लिअे राजमार्ग सुझाया गया है, किसी लोकोत्तर व्यक्तिके लिअे नियम नही बताया गया है। परन्तु कोअी लोकोत्तर पवित्र व्यक्ति अैसे नियम पालनेसे छोटा नही हो जायगा। वह धर्मके विरुद्ध न जानेवाला कामी नही, बल्कि निष्कामी होगा। धर्मके अविरोधी कामकी बात सुनकर अुसे वासना अुत्पन्न होनेका डर ही नही है। और, अगर समाजमें हजारो दम्पती गृहस्थाश्रममे धर्मके विरुद्ध न जानेवाले कामका सेवन न करते हो, तो अैसे निष्काम स्त्री-पुरुषोंके अुत्पन्न होनेकी आशा ही नही रखी जा सकती। जिस समाजके गृहस्थाश्रममे धर्म-अविरुद्ध कामका अभाव हो, अुस समाजका नैष्ठिक ब्रह्मचर्यकी महिमा गाना निरर्थक है।

जिस समाजमे अैसे संस्कारोको पोषण मिले, अुसमें स्त्री-पुरुषोकी अेकत्र सस्थाये चल सकती है। जाग्रत सचालककी देखरेखमें चलनेवाली अैसी सस्थाओमे कमसे कम दोष होगे। दोष होगे ही नही, अैसा विश्वास तो कौन दिला सकता है? लेकिन मुझे अैसा लगता है कि जिस समाज और सस्थाकी अैसी विचारधारा, सस्कारिता और नियमावली होगी, अुसमे यदि कोअी दोष होगा तो वह व्यक्तिका रोग होगा, सस्थाका रोग नही। अुसी तरह वह रोग अुपद्रवके रूपमे फूट नही पडेगा।

प्रस्थान, १९३५

१२

आदर्श (?) लग्न

काठियावाडके मेरे दौरेमे शामलदास कॉलेजके विद्यार्थियोकी तरफसे मुझे नीचेका प्रश्न पूछा गया था

"आदर्श लग्न किसे कहा जाय? 'दम्पतीका देव (या दिव्य?) प्रेम' यह कथन सत्य है या नौजवानोको लग्नके प्रपचमे फसानेकी अेक युक्ति है?"

अिस विषयमे मेरी राय यह है

आदर्श लग्न अेक मनोरथ—कल्पना है। सच पूछा जाय तो नित्य बदलनेवाले अिस ससारमे किसी भी विषयमे सपूर्णता सभव नही है। ससार सदा गतिशील रहता है, अिसीलिअे टिका हुआ है। अगर किसी क्षण वह पूर्ण बन जाय, तो दूसरे ही क्षण अुसमे जो परिवर्तन होगा, वह अुसे अपूर्ण बनानेवाला माना जाना चाहिये। वर्ना पूर्ण बनकर अुसे अेक जगह रुक जाना चाहिये, अर्थात् नष्ट हो जाना चाहिये।

अिस न्यायसे आदर्श अर्थात् पूर्ण सतोषकारक लग्न सभव नही है। अिसके बारेमे कल्पना-जगत्में विहार करनेसे केवल झूठी आशाये बधती है। और जब वे आशाये पूरी नही होती, तब भावुक युवक-युवतिया अपने कल्पना-जगत्की भूले देखनेके बजाय अपने आसपास भूले खोजते है और हताश हो जाते है, अुनका दिल टूट जाता है।

स्त्री और पुरुष हरअेकका अपना-अपना व्यक्तित्व होता है। चाहे जितनी कोशिश की जाय, तो भी वह पूरी तरह नष्ट नही हो सकता या दूसरेके साथ पूरी तरह अेकरस नही हो सकता। स्वतत्र व्यक्तित्वका अर्थ ही यह है कि वह किसी न किसी बातमें दूसरेसे भिन्न और मेल न खानेवाला स्वभाव रखे। जब कभी दूसरेके साथ अुसका मेल न बैठनेका मौका आवेगा, तब कुछ न कुछ सघर्ष अवश्य होगा।

परन्तु अैसा होते हुअे भी अधिकतर मनुष्योमें — कहा जा सकता है कि ८० फी सदीसे अधिक मनुष्योमे — अेक-दूसरेको निभा लेनेकी भारी शक्ति रहती है। अगर विरोधोके होते हुअे भी मनुष्योमे अेक-दूसरेको निभा लेनेकी शक्ति नही होती, तो समाज जैसी कोअी चीज दुनियामें नही होती। पति-पत्नीमे भी यह शक्ति होती है। ८० फी सदीसे ज्यादा पति-पत्नी अिस तरह अेक-दूसरेको निभा लेनेकी कला सीख लेते है। और अिसलिअे कभी-कभी लडाअी-झगडा हो जाने पर भी अेक-दूसरेमे सुख मान लेते है। दो-चार फी सदी पति-पत्नी ही अैसे निकलेगे, जिनके जीवनमे लडने-झगडनेके — विरोधी व्यक्तित्वके — अवसर अितने कम आते हो कि अुन्हे अेक-दूसरेको निभा लेनेका प्रयत्न शायद ही करना पडता हो। अैसे लग्न या विवाह आदर्श माने जा सकते है। अिसकें खिलाफ, कुछ फी सदी विवाह विलकुल असफल भी रह सकते है — यानी यह सभव है कि ये पति-पत्नी अेक-दूसरेको निभा ही न सकें। लेकिन ये दोनो स्थितिया अपवाद-रूप मानी जायगी। वहुत बड़ा भाग अैसे स्त्री-पुरुषोका होता है, जिनके वारेमे न तो यह कहा जा सकता है कि अुन्हे अेक-दूसरेको निभानेका प्रयत्न ही नही करना पडता, न यही कहा जा सकता है कि निभानेकी कला अुनमे नही होती। आप लोगोमें से भी वहुत वड़े भागमे यह शक्ति है। कभी किसी तरहका विरोध आपसमे पैदा ही न हो, और पैदा हो तो तलाक दे दू, आत्म-हत्या कर डालू या पागल हो जाअू — लग्नकी अैसी कल्पना करनेके वजाय मैं आपसे कहूगा कि अपूर्ण स्त्री-पुरुष आपसमे लडाअी-झगडा जरूर करेगे, लेकिन साथ ही साथ अुनमे अेक-दूसरेको निभा लेनेकी जो सामाजिक वृत्ति होती है अुस पर आप विश्वास रखे। अिसमे अधिक सौभाग्यशाली या दुर्भागी अपवाद तो रहेगे ही, लेकिन अिन अपवादो परसे हम साधारण नियम नहीं वना सकते।

तव आप पूछेगे कि अिस लग्नके झगड़ेमे फसा ही क्यो जाय? लग्नके झगडेमें फसने न फसनेका प्रश्न स्त्री-पुरुषके वहुत वडे भागके लिअे वुद्धिका प्रश्न ही नही है। 'दम्पतीके दिव्य प्रेम' के

वारेमे तो थोडे ही कवियोने गाया होगा, लेकिन अनेक साधु-सतोने ब्रह्मचारी जीवनकी महिमा गाअी है और वे ससारके जालमें न फसनेका अुपदेश दे गये है। गाधीजीने पुकार-पुकार कर कहा है कि गुलामोको सतान नही वढानी चाहिये। लेकिन ये सव वुद्धिकी दलीले है। वुद्धिमे विकारोको हमेशा वशमे रखनेकी शक्ति नही होती। प्रकृतिकी नियामक शक्तिने प्रजाततु कायम रखनेके लिअे प्राणीमात्रमे जो अेक वलवान विकार पैदा किया है, अुस विकारका आवेग वहुतसे स्त्री-पुरुषोमे अितनी तेजीसे अुठता है कि वहा विवेककी दलीले काम नही देती। किसी कविके कहनेसे नही, वल्कि विकारके अिस आवेगके वश होकर आपमे से अधिकतर युवक-युवती विवाहका विचार करेगे, और सभव है कि अुस समय आपको जो रोके अुससे आप नफरत करने लगे।

परन्तु आपने शायद अिस विचारसे यह प्रश्न पूछा हो कि विवाहके जालमे फसे विना ही स्त्री-पुरुष अपने विकारोको तृप्त करे तो कैसा? मै मानता हू कि अैसे विचारो पर आजकल काफी चर्चा चल रही है। नियनकालिक विवाह, प्रयोगात्मक विवाह, आदि शब्द प्रचलित हो रहे है। अिस वारेमे मै कहूगा कि ये विचार मानव-समाजको खड्डेमे डालनेवाले फदे सावित होगे। हो सकता है कि अिन विचारोंके प्रवाहको और अिनके असरको मै रोक न सकू। लेकिन अिस वारेमे अपने विचार तो मै अवश्य वताअूगा। मानव-समाजने आज तकमें जो सस्कृति निर्माण की है — गिरते, पडते और ठोकरे खाते हुअे भी वीच-वीचमे अुच्च जीवनकी जो मजिले अुसने सर की है — अुसमे कौटुम्विक जीवनका सवसे वडा हाथ रहा है। लडने-झगडने पर भी प्रेमसे, निष्ठासे अेक-दूसरेके साथ सदा रहनेवाले और अेक-दूसरेके लिअे तथा सन्तानके लिअे अनेक कष्ट अुठाकर खपनेवाले पति-पत्नी और अुनकी देखरेखमे पल-पुसकर वडी होनेवाली प्रजा द्वारा जो सस्कारिता विकसित हुअी है, अुसने मानव-समाजके सामने महान गुणोके अुदाहरण पेश किये है। भले कामविकार ही विवाहकी प्रेरणाका कारण रहा हो, फिर भी लग्न-व्यवस्थाने सिर्फ विकारको ही तृप्त नही किया, वल्कि वहुतसे

सद्‌गुणोका विकास भी किया है। यह आरोप भले विचारने जैसा हो कि लग्न-व्यवस्थाके नामसे विकारकी निरंकुश तृप्तिका द्वार खुल जाता है। लेकिन अुसका अिलाज लग्न-प्रथाका नाश नही, बल्कि दम्पती-जीवनमे सयमके अुपाय खोजना है। अिन विचारोके प्रवाहमें न बहकर जब आपको विवाहकी अदम्य भूख मालूम हो, तब यथा-सभव सावधानी रखकर हमेशाके लिअे अपना जीवनसाथी खोज लीजिये और अुसके साथ विवाह-सबंधमे बधकर जीवनभर अेक-दूसरेके वफादार मित्र बने रहनेका विचार बढाअिये।

अैसे विवाहोके कुछ ध्यानमे रखने लायक अुदाहरण हमारे साहित्यमें मिलते है। अुनमे से आप अपने स्वभावके अनुसार पसन्द कर सकते है। राम और सीता, नल और दमयन्ती, हरिश्चद्र और तारामती, शिव और पार्वती या शिव और सती तथा, आप चाहे तो, पाण्डव और द्रौपदी भी अनेक तरहसे दम्पती-जीवनके आदर्श प्रस्तुत करते है। ये लग्न-सबध सर्वथा निर्दोष चाहे न हो, फिर भी हरअेकमे किसी न किसी तरहकी विशेषता रही है, जिसका अनुकरण किया जा सकता है। विवाहके अैसे किसी आदर्शके लिअे प्रयत्न करनेकी और आदर्शकी अुतनी ही मात्रासे सतोष माननेकी मैं आपको सलाह देता हू।

हरिजनबन्धु, २९-१२-'३५

स्पर्शकी मर्यादा

जहा तक मै जानता हू हिन्दुस्तानमें — हिन्दू और मुस्लिम दोनो समाजोमे — जो सदाचारधर्म माना गया है, वह जवान मा, बहन और बेटीको परस्त्रीकी कोटिमे ही रखता है और दूसरेकी स्त्रीके साथ व्यवहार करनेमे जो मर्यादाये पालनी चाहिये, अुन्हीको अिनके साथके व्यवहारमे भी पालनेकी सूचना करता है। मै हिन्दू आदेशको अिस तरह समझा हू कि परस्त्रीको मा, बहन या बेटीके समान मानना चाहिये और मा, बहन और बेटीके साथ भी अेक खास अुमरके बाद मर्यादायुक्त व्यवहार ही करना चाहिये। अिस तरह वह सभी स्त्रियोके साथ अेकसा व्यवहार करनेका आदेश देता है।

यह बात विचारने जैसी है कि मा, बहन या बेटीको भी अिस तरह दो हाथ दूर रखनेकी प्रथाका खडन आवश्यक और अुचित है या नही, धर्म और समाजके सुधारके लिअे आवश्यक है या नही। अेकाध लोकोत्तर विभूतिका व्यवहार अिस प्रथाके बन्धनसे परे हो यह दूसरी बात है। अुसकी लोकोत्तर या अलौकिक विशेषताके कारण समाज अुसमे कोअी दोष न मानकर अुसे सहन कर सकता है। लेकिन 'दोष न मानने' का अर्थ सिर्फ अितना ही है कि करोडो मनुष्योमें अेकाधके लिअे सदा अपवाद रहता ही है।* लेकिन अगर सभी मनुष्य अुस प्रथाको तोडे, तो समाज सहन नही करेगा, यानी अुनकी निन्दा किये बिना नही रहेगा। अिसलिअे, अिस विचारके साथ मेरा बहुत विरोध नही है कि किसी विरले पवित्र व्यक्तिके लिअे अिसका अपवाद हो सकता है।+

---

* अिस वाक्यमें 'सदा अपवाद रहता ही है' के बदलेमे अब मै यह सुधार करना चाहता हू 'समाज अुदारतासे या निर्बलतासे अुस पुरुषके दूसरे महान गुणोको ध्यानमे रखकर अुसके दोषोकी अुपेक्षा करता है।' (जनवरी, १९४८)

\+ 'अिसलिअे . . अपवाद हो सकता है' — यह वाक्य मै निकाल देना चाहूगा। (जनवरी, १९४८)

लेकिन जो पिता अपनी मा, बहन या बेटीका निकटसे स्पर्श करनेमे — अुदाहरणके लिअे कधे पर हाथ रखकर चलनेमे — सकोच रखता है वह सकुचित मनोवृत्तिवाला है, अैसा कहा जाय तो यह मुझे ग्राह्य नही लगता।

सच पूछा जाय तो स्त्री-पुरुषके बीचकी जो मर्यादा है, अुसका पालन स्त्री-स्त्रीमे या पुरुष-पुरुषमे करना जरूरी नही, अैसा भी नही कहा जा सकता। स्त्रिया स्त्रियोके साथ और पुरुष पुरुषोके साथ जान-बूझकर आवश्यकतासे अधिक स्पर्शादि करे तो वह दोष ही माना जायगा। यानी स्त्री-पुरुषके बीच जो मर्यादायें बताअी गअी है, वे दो विभिन्न जातियोके कारण ही नही बताअी गअी है। बात अितनी ही है कि दो विभिन्न जातियोंके लिअे अुनका ज्यादा स्पष्टीकरण किया गया है — अुन पर ज्यादा जोर दिया गया हैं।

गाधीजी कहते है : 'जो ब्रह्मचर्य स्त्रीको देखते ही डर जाय, अुसके स्पर्शसे सौ कोस दूर रहे, वह ब्रह्मचर्य नही। साधनामें अुसकी आवश्यकता होती है। लेकिन अगर वह स्वय साध्य बन जाय, तो वह ब्रह्मचर्य नही। ब्रह्मचारीके लिअे स्त्रीका, पुरुषका, पत्थरका, मिट्टीका स्पर्श अेकसा होना चाहिये।'

अिस भाषाको आवश्यक अध्याहारोके साथ समझें, तो यह मुझे ठीक मालूम होती है। अध्याहार ये है . 'जो ब्रह्मचर्य **धर्म पैदा हो जाने पर भी** स्त्रीको देखते ही डर जाय . ' तथा '**विवेक-दृष्टि रखकर** ब्रह्मचारीके लिअे स्त्रीका . . .।' जिस तरह हम गीताजीके समदृष्टि-वाले श्लोकमे अिन शब्दोको अध्याहारके रूपमे समझते है, अुसी तरह यहा भी समझना चाहिये। वहा जैसे समदृष्टिका अर्थ यह नही होता कि गायकी तरह ब्राह्मणको भी बिनौले और घास खिलाया जाय या ब्राह्मणकी तरह गायके लिअे भी आसन बिछाया जाय, बल्कि यह होता है कि हर प्राणीके प्रति समानवृत्ति रखते हुअे भी हरअेककी विवेक-युक्त सेवा करनी चाहिये, वैसे ही यहां भी हरअेकका समानवृत्तिसे परतु केवल विवेकयुक्त स्पर्श किया जाय। दो वर्षकी बाला और २५ वर्षकी युवतीके स्पर्शके प्रति ब्रह्मचारीकी समानवृत्ति होनी चाहिये।

फिर भी दो वर्षकी बालाको वह गोदमे बैठाये, अुसके साथ बालोचित खेल खेले और आदत होनेके कारण कभी कभी अुसे चूम भी ले, तो वह निर्दोष माना जायगा। लेकिन २५ वर्षकी युवतीके साथ वह यह सब नही करेगा —— नही कर सकता। अर्थात् सकटका कारण पैदा हुअे बिना नही करेगा, और अुसे चूम लेनेकी तो सकटमे भी कल्पना नही की जा सकती। यह भेद किसलिअे? अिसका कारण यह है कि दोनोके बारेमे अेकसा निर्विकारी होने पर भी किसके साथ क्या बरताव अुचित है, यह अुसकी आखे जानती है, मन जानता है और बुद्धि जानती है। यही अुसका विवेक है।

कोअी मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी हो, अपनी निर्विकारी अवस्थाके बारेमें अुसके मनमे जरा भी शका न हो, छाती ठोककर यह भी कह सके कि कैसी भी परिस्थितिमे अुसके मनमे विकार पैदा नही होगा, फिर भी यदि वह मनुष्य-समाजमे साधारण जनताके लिअे सदाचारके जो नियम आवश्यक मालूम हो अुनकी मर्यादामें रहे, तो क्या अिसे अुसके ब्रह्मचर्यका दोष माना जायगा? और यदि अैसे नियम पालनेसे वह अधूरा ब्रह्मचारी माना जाय तो अिससे क्या? क्योकि वह कितना निर्विकार है, अिसकी अपने सतोषके लिअे परीक्षा करने या जगत्के सामने यह सिद्ध कर दिखानेकी अुसकी जिम्मेदारी —— पैदा हुआ धर्म —— नही है। अुसकी जिम्मेदारी या धर्म तो हर बातमे अपना आचरण अैसा रखनेकी है, जिसका यदि अविवेकी पुरुष अनुकरण करे तो भी अुससे समाजमे दोषयुक्त आचरणका निर्माण न हो, अुसका अनु-करण करनेसे समाजमे रसिक स्त्री-पुरुषोकी मनोदशाको पोषण न मिले, बल्कि सयमी स्त्री-पुरुषोकी मनोदशा निर्माण हो और अुसे पोषण मिले।

किसी मनुष्यमे बडी-बडी सख्याओका मुहसे गुणाकार कर देनेकी शक्ति होती है। यह अुसकी विशेष सिद्धि मानी जायगी। फिर भी यदि वह शिक्षक बन जाय, तो अुसे बालकोको सख्यायें लिखकर और अेक-अेक अक लेकर गुणाकी रीति अिस तरह सिखानी होगी, मानो अुसके पास अैसी कोअी सिद्धि है ही नही। यदि यह

सिद्धि प्राप्त करनेकी कोअी विशेष रीति हो तो वह बालकोको बतानी चाहिये। यदि वह केवल जन्मसिद्ध शक्ति हो, तो किसी समय भले वह अुसका अुपयोग करे। लेकिन अिससे गुणाकार करनेकी गणितकी पद्धतिका निषेध नही किया जा सकता, और बालकोको सिखानेके लिअे तो वह अुसी पद्धतिका अुपयोग कर सकता है। अुसी तरह जो दृढ ब्रह्मचारी हो, अुसे अैसे नियमोका शोधन और पालन बताना चाहिये, जो समाजके प्रयत्नशील साधको और भोगियोंके लिअे ब्रह्मचर्यके मार्ग पर चलनेमे सहायक सिद्ध हो। मै अिसी दृष्टिसे अिस प्रश्न पर विचार किया करता हू।

गाधीजीका अेक दूसरा वाक्य यह है—'स्त्रीके स्पर्शके मौके ढूढे बिना अनायास ही स्त्रीका स्पर्श करनेका मौका आ पडे, तो ब्रह्मचारी अुस स्पर्शसे भागेगा नही।' अिस वाक्यमे भी 'कर्तव्यकी दृष्टिसे', 'धर्म समझकर' जैसे शब्द जोड देने चाहिये। क्योकि यह निश्चय करना कठिन है कि क्या अनायास आ पडा है और क्या अनायास आ पडा मान लिया गया है। किसी क्रियाको करनेकी आदत डालनेसे वह सहज या स्वाभाविक हो जाती है। और फिर वह अनायास आ पडी मालूम होती है। अुदाहरणके लिअे, मुझे लेख लिखनेकी आदत है, अिसलिअे कअी सपादक मुझसे लेखोकी माग किया करते है। अब अेक तरहसे देखे तो यह कहा जा सकता है कि 'लेख लिखनेका काम मुझ पर सहज ही आ पडता है।' लेकिन हर समय वह धर्मके रूपमे आ पडता है, अैसा कहना कठिन है। लेख लिखनेका धर्म आ पडा है, अैसा तो कुछ अंशमे भी तभी कहा जायगा, जब अुस लेखके प्रकाशनकी जिम्मेदारी मुझ पर हो अथवा कोअी विचार मुझे अितना महत्त्वपूर्ण लगे कि अुसे जनताको समझाना विवेकबुद्धिसे मुझे जरूरी मालूम होता हो। हम जानते है कि विवेकबुद्धिका अुपयोग करनेमे भी कभी-कभी आत्मवचना होती है। फिर भी यह तो माना ही जायगा कि यथासभव हमने विवेकबुद्धिका अुपयोग किया। साराश यह कि अनायास आ पडनेवाला प्रत्येक कर्म धर्म नही ठहरता, और अिसलिअे यह बचाव नही किया जा सकता कि

कोअी कर्म अनायास आ पडा अिसलिअे किया। गीतामे यह अवश्य कहा गया है कि 'सहज कर्म, कौन्तेय, सदोषमपि न त्यजेत्।' लेकिन जो धर्म न हो, अुसे गीताने कर्म ही नही माना है। वह विकर्म है, और अिसलिअे अपकर्म है। अुसके लिअे अनायास आ पडनेका बहाना नही किया जा सकता। फिर गीतामे 'सहज' का अर्थ 'अनायास आ पडनेवाला' नही, वल्कि सह-ज — साथ अुत्पन्न हुआ — स्वाभाविक, प्रकृतिधर्मके अनुसार है। कोअी कर्म सहज हो और कर्तव्यरूपमे आ पडा हो, तभी वह दोषयुक्त होने पर भी नही छोडा जा सकता।

यह आप स्वीकार करते है कि ब्रह्मचर्यकी साधना बडी कठिन है। अिसका अर्थ यही है कि हमारे जमानेमें करोडो मनुष्योके लिअे पूर्ण ब्रह्मचर्य असभव-सा है। अेकाधके लिअे वह स्वाभाविक हो सकता है, और अतिपुरुषार्थीके लिअे प्रयत्नसाध्य है। अत करोडोके लिअे तो अैसा ही धर्म बताना होगा, जिससे वे भोगमे मर्यादाका पालन कर सके, अतिभोगकी तरफ न बह जाय और मर्यादा पालनेवालोकी दिनोदिन सयमकी ओर प्रगति हो। मै अैसा मानता हू कि जिसके वशमे पीढियो तक अेकपत्नीव्रत और अेकपतिव्रत पाला गया होगा — तथा कितनी ही पीढियो तक ब्रह्मचर्यके लिअे प्रयत्न किया गया होगा — अुसीकी पीढीमे नैष्ठिक ब्रह्मचारी अुत्पन्न हो सकता है। अथवा, अैसा कहा जा सकता है कि जिसने कितने ही जन्म तक अेकपत्नीव्रत पाला होगा, पत्नीके साथ भी ब्रह्मचर्य पालनेकी कोशिश की होगी, वह किसी जन्ममे नैष्ठिक ब्रह्मचारी होगा। मुझे लगता है कि ब्रह्मचर्यकी साधनाके मार्ग और मर्यादाके नियमोका अिस तरह विचार होना चाहिये।

अिस बारेमे हम सिर्फ कल्पनाके घोडे दौडाना चाहे, तब तो कहीके कही पहुच सकते हैं। यदि अैसा कहे कि जो स्त्रीके सहज या साधारण स्पर्शसे भागे वह ब्रह्मचारी नही, तो जो अेकातवाससे या बलात्कारपूर्वक सभोग करना चाहनेवालोसे डरकर भागे, अुसे भी ब्रह्मचारी कैसे कहा जाय? और शकरकी कथामें बताया गया है, वैसे क्रोधसे कामदेवको जला देनेवाला भी ब्रह्मचारी कैसा?

ब्रह्मचारी तो भागवतमे नारायणकी कथामे बताया गया है, वैसे मनुष्यको कहा जा सकता है। यानी जो अप्सराओसे कह सके कि 'तुम भले नाचो परन्तु मेरे तपके प्रभावसे मै या तुम — दोनोमे से किसीमे भी विकार पैदा नही होगा।' विकारी वातावरणमे स्वय तो निर्विकार रहे ही, पर जो विकारीके विकारको भी शान्त कर दे वही सच्चा ब्रह्मचर्य है। अैसे ब्रह्मचर्यको साध्य माने, तो अुसकी साधना क्या है? अिसमे मुझे कोअी शका नही कि वह साधना अनावश्यक सामान्य स्पर्श करते रहना या स्त्री-पुरुषके साथ अेकात-वासके प्रयोग करते रहना तो हो ही नही सकती। मुझे तो लगता है कि जिस स्पर्शकी कोअी जरूरत ही नही, अैसा हर तरहका स्पर्श त्याज्य ही माना जाना चाहिये। न केवल स्त्री या पुरुषका, न केवल प्राणियोका, बल्कि जड पदार्थोका भी अैसा स्पर्श त्याज्य है। स्पर्शेन्द्रिय सारी त्वचा पर फैली हुअी है। वह चाहे जिस जगहसे और चाहे जिसके स्पर्शसे विकार पैदा कर सकती है। भोगमे अुसकी सीमा अवश्य है। जहा जड या चेतन — किसीका भी लिपटकर स्पर्श करनेकी अिच्छा होती है, वहा सूक्ष्म कामोपभोग है। अिस तरहकी स्पर्शेच्छा न हो, और यदि हो तो अुसके प्रति मन निर्विकार रहे — अैसी शक्ति और दृष्टि प्राप्त करना ही ब्रह्मचर्यकी साधना है। यह सच है कि अिसमे अन्तमे भागनेकी आवश्यकता नही रहेगी; लेकिन आरभमें या अन्तमे भी लिपटनेकी, स्पर्शको खोजनेकी या अुसकी आदत डालनेकी जरूरत नही होनी चाहिये। सूक्ष्म स्पर्श अनायास नित्यके जीवनमे होते ही रहते है। आदतके लिअे, परीक्षाके लिअे अुतने स्पर्श काफी है। जिस प्रकार त्वचाको जीतनेके लिअे सर्दी या धूपमे बैठना, पंचाग्निमे तपना, काटो पर सोना आदि साधना जड और तामसी है, अुसी प्रकार अिन स्पर्शोके सेवनको साधना कहे तो वह रसिक और राजसी साधना है। अिस रास्तेमे गिरे तो बहुत है, परन्तु पार कौन लगे है, यह प्रभु जाने!

अिस बारेमें हमें गाधीजीका अनुकरण करनेका मोह छोड देना चाहिये। गाधीजीकी तो सब मार्गोमें पराकाष्ठा होती है। अुनके

त्याग, दीर्घश्रम और व्रतपालनका अनुकरण करके अुन्हे कोअी अपना जीवनधर्म नही बनाता। लेकिन अुनकी सगीतकी रुचि, स्त्रियोके साथ नि सकोच व्यवहार और कुछ सूक्ष्म सुघडताकी आदतोका अनुकरण करनेका मोह होता है। परन्तु गाधीजीको जिस बातमे जिस क्षण अपनी भूल मालूम हो जाती है, अुसमे से अुसी क्षण पीछे हटने और सारे जगत्के सामने अपना अपराध स्वीकार करके माफी मागनेमे अुन्हे सकोच नही होता। दूसरोको तो प्रतिष्ठाके और अैसे दूसरे कितने ही विचार आते है।

मुझे लगता है कि गीताके श्लोकको* आपने बहुत गलत तरीकेसे लागू किया है। आपके अर्थके अनुसार तो सयमके सारे प्रयत्न मिथ्याचारमे शामिल हो जायगे। विवाहकी अिच्छा रखनेवाले अेक वृद्ध पुरुषको मैने अिस श्लोकका अैसा ही अर्थ करते सुना है। वे कहते कि जब मेरे मनमे तीव्र विषयवासना है, तब मेरे स्थूल सयम-पालनसे क्या होगा? यह तो केवल मिथ्याचार ही होगा। अिसलिअे मुझे शादी कर लेनी चाहिये। 'अ' शराबके लिअे तडपता रहता हो, 'ब' पराअी स्त्रीको कुदृष्टिसे देखता हो, 'ग' का किसीकी घडी चुरा लेनेका मन करता हो, परन्तु वे अपनी अिन्द्रियोको वशमे रखते हो तो क्या अिसे मिथ्याचार माना जायगा? क्या अुन्हे शराबका नशा, व्यभिचार, चोरी आदि करना चाहिये? विषयोका स्मरण हो सकता है, अिच्छा भी हो सकती है, परन्तु अिस कारण कर्मेन्द्रियोका सयम गलत है—अैसा अिस श्लोकका अर्थ करना मुझे ठीक नही लगता। जैसा कि मैने अूपर कहा, गीताके अनुसार जो कर्म धर्म्य नही वह कर्म ही नही है; वह विकर्म है, या अपकर्म है। विकर्मकी तरफ चाहे जितना हमारा मन दौडे, हमे वह पागल भी बना दे, तो भी

---

* कर्मेन्द्रियाणि सयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
अिन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचार स अुच्यते।। ३–५

कर्मेन्द्रियोका सयम करके जो मूढ पुरुष मनमे विषयोका स्मरण किया करता है, वह मिथ्याचारी कहा जाता है।

अुससे कर्मेन्द्रियोको हमेशा हठपूर्वक रोकना ही चाहिये। परन्तु जो कर्म धर्म्य हो अुनमे अिन्द्रियोका सयम करना चाहिये या नही, यह प्रश्न पैदा हो तो गीता कहती है कि मनमे अुनकी आसक्ति रखना और स्थूल त्याग करना ठीक नही है। सबसे अुत्तम तो यह होगा कि आसक्ति न रखकर वे कर्म किये जाय। गीताके प्रस्तुत विषयमे अर्जुन क्षात्रधर्म और क्षात्रस्वभाव दोनोकी अुपेक्षा करके लडाअीसे स्थूल रूपमे निवृत्त होना चाहता था। वहा अुसका मिथ्याचार होनेकी सभावना थी। कुछ कर्म अैसे होते है, जिन्हे करनेकी धर्म — सदाचार — अिजाजत देता है, लेकिन वे अनिवार्य कर्तव्यके रूपमें नही होते। अैसे कर्मोके बारेमे भी यह श्लोक लागू हो सकता है। अुनमे आसक्ति हो तो धार्मिक ढगसे अुन्हे करते क्यो नही? लेकिन आसक्ति न हो तो कोअी अुन्हे करनेको नही कहता। परन्तु आसक्ति है अिसलिअे अधार्मिक ढगसे अुन्हे करना तो ठीक नही।

लेकिन आसक्ति होने पर भी ये कर्म करने ही चाहिये, अैसा कोअी नही कहता। साधक आसक्तिके समयमे ही सयमका प्रयत्न करता है। वह अिन्द्रियोको रोकता है, मनको मोडना चाहता है, पर सफल नही होता। अुसका यह सयम कैसा माना जायगा? सफलता नही मिलती अिसलिअे अुतने समयके लिअे हम भले अुसे मिथ्याचार कहे। परन्तु यह अुसी तरह मिथ्या है, जिस तरह गणितके किसी अटपटे सवालका सही रीतिसे किये जाने पर भी कही नजरचूकसे भूल हो जाने पर गलत अुत्तर आवे और हम अुसे मिथ्या कहे। अिसमे अुत्तर गलत आया है, लेकिन रीति सही है। अुसी तरह सयमका प्रयत्न भले निष्फल गया, लेकिन अुसकी रीति तो सही है। वह मिथ्याचार है, अिसका यह अर्थ नही कि वह सत्यविरोधी आचार है, अुसका अर्थ केवल अितना ही है कि वह अुस क्षणके लिअे गलत — मिथ्याचार है। अुसे मिथ्याचार कहे तो अैसे सैकडो मिथ्याचार अुचित माने जायगे।

अेक पत्र, २५-४-'३५

१४

प्रकीर्ण

.. मैं तो आज देखता हू कि भरजवानीमे पोसी हुअी अनेक सुखो और भोगोकी आशाओको निष्ठुरतासे नष्ट कर देनेमे ही हमारा पुरुषार्थ है।

भोगोकी अिन आहुतियोमे पहली आहुति विषयेच्छाकी होनी चाहिये। धर्म, आध्यात्मिक जीवन, आर्थिक स्थिति, शारीरिक स्थिति, राजनीति, स्त्रीशिक्षा, तत्त्वज्ञान अित्यादि — जिस जिस दृष्टिसे भी मैं विचार करता हू, मेरे विचार मुझे ब्रह्मचर्यकी सीढी पर ही लाकर खडा कर देते हैं। जब तक जनताकी सेवाके लिअे हजारो युवक-युवतिया अुद्देश्यपूर्वक और बुद्धिपूर्वक ब्रह्मचर्य पालनेका निश्चय नही करते, तब तक हमारे देशके अुज्ज्वल भविष्यके बारेमें मुझे शका ही है। हमारे शरीर निर्माल्य जैसे निकम्मे बनते जा रहे हैं। बालकोको पौष्टिक खुराक नही दी जा सकती, अुनकी देखभाल नही की जा सकती, व्यवस्था या स्वच्छता नही रखी जा सकती, फिर भी हमारा हिन्दू समाज अितना विवेकशून्य बन गया है कि जिसकी सीमा नही। अिस विवेकशून्यताको किस तरहकी जडता समझना चाहिये? लेकिन याद रखिये कि ब्रह्मचर्यसे मेरा मतलब अविवाहित जीवन नही है। मैं वीर्य-रक्षा करनेकी बात कहता हू। यदि आपको अैहिक सकल्पो या पारमार्थिक सकल्पोकी कोअी भी सिद्धि अिसी जीवनमे पानी हो, तो अुसे ब्रह्मचर्यके बिना पानेकी आशा मत रखिये।

गाधी जयती, नवम्बर १९२४
'साबरमती' से

*　　*　　*

मैंने आपसे अविवाहित रहनेकी बात कही। अविवाहित जीवन पवित्रतासे बिताना चाहिये, यह विद्यापीठके स्नातकोंसे तो कहनेकी जरूरत ही न होनी चाहिये। फिर भी अिस बारेमे कुछ कहनेकी जरूरत मालूम होती है। क्योंकि तरुणवर्गके बारेमें मुझे जो थोडा-बहुत अनुभव हुआ है, अुस परसे मुझे लगता है कि कुछ तरुण मडलोमे पवित्रता और सयम पर कम जोर दिया जाता है और कभी-कभी अिनके बारेमे निरादर भी बताया जाता है। कुछ लोग दबी जबानसे यो भी कहते है कि पराक्रमी और देशोद्धारकके नाते आदर पाये हुअे बहुतसे पुरुषोका व्यक्तिगत जीवन अपवित्र था, फिर भी वे अपने देशको विजयके रास्ते पर ले गये। नैतिक दृष्टिसे बात न करके सिर्फ व्यावहारिक दृष्टिसे ही कहू, तो जिनके पास कर्तव्य और साहसकी अपार स्वाभाविक विरासत होती है, या जहा हत्याग्रही लडाअिया होती है और सैनिको यानी दो पावके पशुओको ही सेनामे भरती करनेकी अपेक्षा रखी जाती है तथा जहा कुल मिलाकर सारे समाजका नैतिक स्तर पवित्र जीवनके लिअे कम आग्रह-वाला होता है, वहा शायद अैसा कहा जा सकता है कि पवित्र जीवन और देशके अुद्धारका आवश्यक सम्बन्ध नही है। लेकिन हमने तो आग्रहपूर्वक या परिस्थितियोसे मजबूर होकर सत्याग्रही लडाअीका मार्ग अपनाया है। अिस रास्ते लडाअी करनेके लिअे हमे सारी जनताको तैयार करना है। लडाअीकी तैयारीके रूपमे, स्वतत्र रूपसे और लडाअीका आरभ नही हुआ अिसलिअे बीचके समयमे हमे रचनात्मक कार्यमे जुटना है — अिन सब कारणोसे अगर आप लोग पवित्र जीवनका आग्रह न रखेगे, तो लडाअीमे आपकी भरती नही हो सकेगी।

यदि आप पवित्रतासे ब्रह्मचर्यका पालन करके सेवा करनेकी शक्ति या अुत्साह अपनेमे न पाते हो, तो आपके सामने अेक ही मार्ग रह जाता है: जैसे दूसरी तरहसे हमारी शक्तिकी मर्यादाका अन्दाज लग गया है, वैसे ही अिस बारेमे भी अन्दाज लग गया है अैसा समझकर आप तुरन्त शादी कर ले और अपने बादकी पीढीके युवकोसे यह कहकर सन्तोष माने कि देशके भविष्य-निर्माणका काम तुम्हारे हाथमे है।

अविवाहित दशाके साथ जैसे पवित्र जीवन आवश्यक है, वैसे ही कार्यके प्रति अेकनिष्ठा भी जरूरी है। बहुतोका यह अनुभव है कि अविवाहित पुरुषोके अपने कार्यमे लगनके साथ जुटे रहनेका विश्वास नही रखा जा सकता। अेक तरहकी स्वच्छन्दता, लापरवाही या अस्थिरता अविवाहित लोगोका लक्षण बन जाती है। कुछ हद तक यह स्वाभाविक हो सकती है, फिर भी विचारसे अुसे दबाया या बदला जा सकता है। अिस बात पर मै आप लोगोका ध्यान खीचता हू।

तृतीय स्नातक समेलन,
'स्नातक-धर्म' नामक भाषणसे, १२-१-'२९

* * *

युवावस्था अर्थात् जीवनका वसतकाल। अुस समय हमारी नसोमें जीवन फूटा पडता है। हमारे भीतरकी क्रियाशक्ति — अिस दिशामे काम करू या अुस दिशामे अिस तरह — बाहर निकलनेके लिअे छटपटाती रहती है। भाव — शुद्ध हो या विकारी — अितने जोरसे अुठते है कि अुन्हे दबाना हमारे लिअे कठिन हो जाता है। कुछ भाव अशुद्ध, अपवित्र, त्याज्य है, अैसे जबरदस्त सस्कार हमारे मन पर पडे हो, हमारी विवेकबुद्धिको भी अैसा लगता हो, तो भी अुनके वश न होना हमारे लिअे कठिन होता है। .

युवावस्थामे हजारमे से ९९९ मनुष्योमे विकार जोरसे अुठते ही है। परन्तु यदि हम पर बचपनसे माता-पिता या किसी पूज्य व्यक्तिकी या बालसखाकी भावनाओका अिच्छापूर्वक आदर करनेका, किसी अूचे आदर्शको प्राप्त करनेका, किसी प्रतिज्ञा या बडे कार्यको पूरा करनेका, देश या कुलके यशको मन्द या निस्तेज न होने देनेका या अैसा ही कोअी दूसरा अूचा और बलवान सस्कार पडा होता है, तो वह हमारे आवेगोको योग्य दिशा देनेमे बहुत कीमती सिद्ध होता है। हमारी विवेकबुद्धि हमे जो मदद नही कर सकती, वह मदद हमें अिस तरहके बलवान सस्कारसे मिलती है। किसी व्यक्ति,

आदर्श, व्रत, प्रतिज्ञा, अुद्देश्य, देश, कुल, नाम आदिके बारेमे हम अत्यत आदरकी भावना रखते हो और अुसके लिअे 'दिव्य' शब्दका अुपयोग करे — तो अैसे 'दिव्य' के प्रति अत्यंत आदर युवावस्थामे देरसवेर हमारा अचूक त्राता बन जाता है। जिस व्यक्तिमे किसी 'दिव्य' के लिअे आदरका बलवान संस्कार नही होता, अुसकी स्थिति टेनिसके गेदकी तरह अेक भाव और दूसरे भावके आवेगोके बीच अस्थिरतासे अुछलते रहनेकी हो जाती है।

जिसमे अैसे किसी अुदात्त 'दिव्य' के लिअे अत्यन्त आदरकी भावना नही होती, अुसके हृदयमे दूसरा मनुष्य अैसा आदर पैदा कर सकता है या जिसमे वह आदर होता है स्वयभू ही हो सकता है, यह मै निश्चयके साथ नही कह सकता। लेकिन अितना तो मै निश्चयपूर्वक कह सकता हू कि यह आदर मनुष्यकी अुन्नतिके लिअे अत्यत आवश्यक है। और अगर आप यह पूछे कि आज अैसी कौनसी दिव्य वस्तु है, जिसके लिअे अत्यन्त आदरकी भावना रखकर आप अपनी सपूर्ण कर्तृत्वशक्ति और अपने परलक्षी भावोके आवेगको सफल कर सकते है, तो मै कहता हू कि वह दिव्य वस्तु भारतीय मानव-समाजकी सेवा है।

प्रस्थान, १९२८
'युवक और समाज' नामक भाषणसे

स्त्री-पुरुष-मर्यादा

दूसरा भाग

लग्न-मीमांसा

अपोद्घात*

यह लिखते हुअे मुझे अत्यन्त सकोच हुआ है और होता रहता है। जब मै कॉलेजमे पढता था, तभीसे भावनाप्रेरक जीवन-चरित्र लिखकर तरुणोके मनमे स्वदेशभक्तिका जोश भरनेवाले लेखकके रूपमें मै श्री नरसिंहभाअीका नाम जानता था और अुनकी पुस्तकोका मैने रसपान किया था। अुनकी और मेरी आयुमे अितना भेद है कि वे मुझे अपना पुत्र समझ सकते है। लेखकके नाते अुन्होने गुजरातमें अैसी प्रतिष्ठा पायी है कि वे जो कुछ लिखते है, अुसे गुजरातको ध्यानपूर्वक पढना ही पडता है। अुनकी पुस्तकका अुपोद्घात (प्रस्तावना) लिखनेका मुझे क्या अधिकार है? यह विचार मेरे मनमें सदा रहा, और अिस सकोचके कारण मैने श्री नरसिंहभाअीसे विनती की कि वे मुझे अिस भारसे मुक्त कर दे।

अिसके अलावा, सकोचके दूसरे भी कारण है। अुनमें से अेक कारण यह है — किसी मित्रने कहा है कि मुझे पुस्तके लिखना आता है, लेकिन प्रस्तावना लिखना नही आता। और यह टीका मुझे सही मालूम हुअी है। मुझे कअी बार विचार आता है कि मै अपनी पुस्तकोकी प्रस्तावनाको प्रस्तावना किसलिअे कहता हू, पुस्तकका अेक प्रकरण ही क्यो नही मानता? जब अपनी ही पुस्तकोकी प्रस्तावना मुझे लिखते नही आती, तब दूसरेकी पुस्तककी प्रस्तावना लिखने बैठू तो तारतम्यका न जाने कितना भग करूगा, यह डर तो मुझे था ही। अिस कारणसे भी मुझे यह अुपोद्घात लिखनेमे सकोच होता था।

लेकिन श्री नरसिंहभाअीने अितने प्रेमसे आग्रह किया कि आखिरमे मुझे अुनकी बात माननी ही पडी। पर अैसा करके मै बडी मुसीबतमे भी फस गया हू। क्योकि जैसे-जैसे मै लिखता गया, वैसे

---

* श्री नरसिंहभाअी अीश्वरभाअी लिखित ‘लग्नप्रपच’ नामक गुजराती पुस्तकका।

वैसे मेरा लेख अुचित विस्तारका अुपोद्घात बननेके बजाय अेक छोटीसी पुस्तक ही बनता गया। अुपोद्घातके रूपमे तो वह शोभा दे ही नही सकता। थोडेमे कितना लिखना, अिसका मुझे अन्दाज नही रहा। फिर, वह कुछ अिस तरह लिखा गया है कि श्री नरसिहभाअीकी सपूर्ण पुस्तक पढ जानेसे पहले पढनेके बजाय बादको पढनेमे ही अुसकी अुपयोगिता अधिक हो सकती है। मुझे लगा कि अिसमे श्री नरसिह-भाअीके मूल विचारोका खडन किये बिना भिन्न प्रकारसे पूर्तिके रूपमे कुछ जोड़ा गया है। अत मैंने सोचा कि अपना यह लेख मैं श्री नरसिंहभाअीकी पुस्तकके पूरक अध्यायके रूपमे अुन्हे सौपू, और अुनकी अिच्छा हो तो वे अिसका अुपयोग करे। अिसलिअे अुस पुस्तकमें जो नही लिखा गया है अुतनेका ही अिस अुपोद्घातमे मैं अुल्लेख करता हू।

लग्नके बारेमे आज युवकोके चित्त अजीब अुलझनमें फसे हुअे हैं, अैसा कहनेमे कोअी अतिशयोक्ति नही है। अुसमे भी पश्चिमके कुछ विचारकोने अिस बारेमे नये-नये विचार फैलाये हैं, और अुनका असर हमारे देशके स्त्री-पुरुषो पर भी पडा है। अैसे अनेक विचारोके कारण अुलझनमें फसी हुअी बुद्धिको स्थिर और निश्चित बनानेका प्रयत्न श्री नरसिंहभाअीने किया है। अुनका आदेश तो स्त्री और पुरुष दोनोके लिअे है। लेकिन अगर पुरुषवर्ग न सुने तो भी अपने भलेके लिअे स्त्रिया तो अुसे सुने ही, अैसी अुनकी स्त्रीजातिसे आग्रहभरी प्रार्थना है। गुजराती समाजमे गाधीजी और श्री नरसिंहभाअीसे वढकर कोअी हिमायती पुरुषवर्गमे स्त्रीजातिको अपने लिअे मिलनेकी वहुत कम सभावना है।

मानव-समाजमे विवाहकी प्रथाने — बल्कि स्त्री-पुरुष-सम्बन्धने — अलग-अलग देशो और जमानोमे जो अलग-अलग रूप लिये हैं, अुनके पुराने जमानेसे लेकर आज तकके अितिहासकी श्री नरसिंहभाअीने वहुत बारीकीसे अिस पुस्तकमे छानबीन की है। कअी तरहकी पुस्तके अुन्होने पढ़ी हैं और कअी तरहकी सूक्ष्म जानकारिया अिकट्ठी की हैं। अुनमे से कुछ तो दिलचस्प हैं और कुछ घृणासे कपकपी पैदा करने-

वाली हैं, कुछके बारेमे लगता है कि अैसी गन्दी जानकारी लोगोंके सामन न रखी जाती तो ही ठीक होता। कुछ विषयोमे मनुष्यका मन मक्खीकी तरह होता है। वह मिठाअी पर बैठी हो और पाससे मैलेकी गाडी निकले, तो अुस पर भी रसपूर्वक चली जाती है। अुसी तरह घृणा पैदा करनेके लिअे गन्दी जानकारी दी गअी हो, तो अुसमे से भी मनुष्यका चित्त गन्दे सस्कार ले लेता है — अुसके साथकी घृणा भी लेता है; लेकिन घृणा दिखाकर भी गन्दगी पर चिपक जाय, अैसा चित्तका स्वभाव होता है। सहजानन्द स्वामीके 'वचनामृतो' मे अेक जगह अुनसे पूछा गया है कि असत्पुरुप शास्त्रसे कैसी वुद्धि ग्रहण करता है? अुन्होंने जो अुत्तर दिया, अुसका सार यह है कि वह शास्त्रोको भी अिस तरह समझता-समझाता है जिससे अुसके विकारोको पोषण मिले। यह बात बिलकुल सच है। और अिस तरह सभव है अिस पुस्तकके कुछ भाग विकार पैदा करनेवाले सिद्ध हो। श्री नरसिंहभाअी अैसा कभी नही चाहेगे। लेकिन कुछ बातोका अज्ञान कल्याणकारी होता है। अैसी अेक बात है दुनियामे पहले हो चुकी और आज चल रही बुराअियोका अज्ञान। साधारण पाठकोके लिअे लिखी हुअी पुस्तकमे यह कूडा-कचरा न डाला जाय तो अच्छा है। अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण साहित्यके अमूल्य रत्नोकी तरह अुसका अमूल्य कचरा भी विद्वानोके पढने और समझने लायक महगी पुस्तकोमे ही भरना चाहिये।

श्री नरसिंहभाअीने अिस पुस्तकमे जो विचार रखे हैं और अुनके साररूप 'नवनीत' मे जिन सूत्रोका प्रतिपादन किया है, अुनमे से अधिकाशके साथ मैं पूरी तरह सहमत हू। किसी-किसी जगह विचारोको रखनेकी अुनकी और मेरी पद्धतिमे फर्क होना स्वाभाविक है। श्री नरसिंहभाअीने यह विषय स्त्रीजातिके वकीलकी तरह पेश किया है, और वह भी प्रतिवादीका वकील बनकर नही बल्कि वादीका वकील बनकर। फिर, अुनकी तात्त्विक दृष्टि अनीश्वर साख्यवादीके जैसी है। मैंने अिन भूमिकाओके आधार पर विचार नही किया, परन्तु स्त्रीजाति द्वारा सहे जानेवाले अन्यायोके बारेमें और पुरुषजातिके

अपराधोके बारेमे मेरे मनमे कोअी शका नही है। फिर भी यहां तलाकका न्याय नही दिया जा सकता, या पुरुषजातिको सजा नही दी जा सकती। अिसलिअे सारे समाजको गलत रास्ते चढा हुआ मानकर ही कोअी अुपाय खोजना होगा।

स्त्री-पुरुषके सम्बन्धो और सुख-दु खका विचार वर्गविग्रहकी दृष्टि रखकर — अर्थात् दोनोके बीच मानो हितोका विरोध हो, दोनो विरोधी कैम्पोमे मानो अेक-दूसरेको दबाने या छकानेके ही अिरादेसे बैठे हो, अैसी दृष्टि रखकर — करनेसे कोअी फायदा नही होगा। स्त्री-जातिको तो होगा ही नही। श्री नरसिंहभाअी भी अिस बातको अस्वीकार नही करते। अुन्होने मगलाचरणमे स्पष्ट किया है कि अुन्होने अपनी पुस्तकमे पुरुषजाति पर स्त्रीजातिके साथ छल-कपट करनेका जो आरोप लगाया है, अुस परसे "कोअी सचमुच यह शका कर सकता है कि जबसे मानव-समाजमे लग्नकी व्यवस्था हुअी, तभीसे क्या पुरुषने लग्नमे छल-कपटकी योजना की होगी? नही, कभी नही; धीरे-धीरे ही अिस भावनाका विकास हुआ है।" मेरी दृष्टिसे अिसका यह मतलब होता है कि आज स्त्री-पुरुषके बीच जो विषम स्थिति है, वह कोअी जान-बूझकर बनायी हुअी योजना नही है, बल्कि बहुत पुराने जमानेमे जो बुरा बीज बो दिया गया था, अुसने अितने लम्बे समयके बाद अेक बडे वृक्षका रूप ले लिया है और वह बडे-बडे अनर्थोंका कारण बन गया है। अुसके परिणाम जान-बूझकर किये हुअे छल-कपट जैसे ही आये है। लेकिन सच पूछा जाय तो जान-अनजानमे स्त्री-पुरुष दोनोने अुस वृक्षको पानी पिलाकर बड़ा किया है। अिस अनर्थकारी वृक्षके फल पुरुषजाति और अधिक धृतिवाली जातियोके बनिस्बत स्त्रीजाति और कम धृतिवाली जातियोके लिअे अधिक हानिकर सिद्ध हुअे है। यहा स्त्रीजातिका ही विचार हुआ है, अिसलिअे अुसकी अत्यत करुण स्थितिका विचार करते हुअे श्री नरसिंहभाअीका क्रोधसे जल अुठना अुचित ही है। अिस क्रोधने अुन्हे पुरुषको अपनी पुस्तकमें अिस प्रकार चित्रित करनेके लिअे प्रेरित किया है, मानो अुसने जान-बूझकर स्त्री-जातिको धोखा दिया और स्त्री लाचारीसे अुसका शिकार बन गअी।

श्री नरसिंहभाअी द्वारा रखे गये सिद्धान्तोमे अुन्होने सयम और ब्रह्मचर्यकी जो व्याख्या की है, अुसने मेरे विचारोको नयी दिशामें मोड़ दिया है। वह व्याख्या मेरे गले अुतर गअी है, और मैं अैसा कहूं तो चल सकता है कि मेरे पूरक अध्यायके अतिम दो परिच्छेद अुसीमें से पैदा हुअे हैं।

अुनमे से जो नवनीत मुझे विस्तारसे चर्चा करने लायक मालूम हुअे, अुन पर पूरक अध्यायमे विचार किया गया है। यहां दूसरे नवनीतो और विचारोंके वारेमे थोडी चर्चा करता हूं।

अुनका वीसवा[१] नवनीत मुझे थोडा खटकता है। अुसमें अर्धसत्य है। वह और सत्ताअीसवा[२] नवनीत मध्यम या धनीवर्गके

---

१. नवनीत २० : और तव अिस सेवाके लिअे समझना चाहिये कि पति-पत्नी लग्नसे तो अेक हो गये, परन्तु दूसरी तरहसे — शरीर और वुद्धिसे — वे स्वाभाविक रूपमे अलग-अलग काम कर सकते है। पुरुषमे वीजधर्म है अिसलिअे वह हमेशा स्वतत्रतासे वाहर घूम सकता है, अुसके अिस काममे कोअी वडा विघ्न नही पडता। स्त्रीमें क्षेत्रधर्म — जननीधर्म है, अिसलिअे अुसके वाहर घूमनेमे वार-वार विघ्न पडते है, कअी प्रतिकूलताअे आती हैं। अिसलिअे अुसे घरमें रहना ही अनुकूल पड़ता है। अिस कारणसे स्त्री घरमें रहकर सन्तान पैदा करे और अुसकी सेवा करे, साथ ही साथ अनुकूल होनेके कारण घरकी व्यवस्था भी करे; और पुरुष स्त्री — सन्तान — कुटुम्व — के जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था करनेके लिअे वाहर घूमे।

२ नवनीत २७ : कौटुम्विक जीवनकी रक्षाके लिअे पैसेकी भी आवश्यकता है। सन्तान-सेवाका धर्म स्त्री अच्छी तरह पूरा कर सके, अिसलिअे अुसे पैसा कमानेकी चिन्तासे मुक्त कर देना चाहिये — पैसा कमानेकी जिम्मेदारी पुरुषको खुद अपने सिर लेनी चाहिये। जिस तरह सन्तानके प्रति माता-पिताका समान धर्म है, अुसी तरह धनके प्रति भी पति-पत्नीका समान धर्म है, समान अधिकार है। वे दोनो सहाधिकारी है। वे दोनो घरके दम्पती हैं।

लोगोंको ध्यानमे रखकर ही विचारा हुआ मालूम होता है। गरीब, मेहनत-मजदूरी करनेवाले लोगोंके लिअे यह संभव ही नही है। मैं तो यह मानता हूं कि स्त्री-पुरुषके कार्यके बीच अनुकूलताके अनुसार श्रम-विभागकी चाहे जैसी व्यवस्था की जाय, तो भी दोनोंके श्रमसे अेक ही व्यवसाय पैदा होना चाहिये। बच्चोका पालन-पोषण, घरकी व्यवस्था और धनोपार्जन अिन तीनो बातोंमें दोनोका कुछ न कुछ हिस्सा हो; अितना ही नही, बल्कि जिस धन्धेसे धनोपार्जन होता हो, वह धन्धा दोनोकी मददसे चलनेवाला हो। अेक डॉक्टर हो और दूसरा शिक्षक यह ठीक नही। लेकिन अेक डॉक्टर हो और दूसरा अुसीके साथ रह कर नर्स या कम्पाअुण्डरका काम करे तो चल सकता है। किसान-ग्वालिन, दर्जी-दर्जिन, सुतार-सुतारिनके जोड़े चल सकते है। फिर, अेकका यदि सामाजिक, पारमार्थिक, धनोत्पादक या बाहरी जीवन हो, और दूसरेका सिर्फ व्यक्तिगत, स्वार्थी, धनव्ययी या गृहजीवन हो तो ठीक नहीं होगा।

श्री नरसिंहभाअी मातृगृहसंस्था (Matriarchal System — वह पुरानी व्यवस्था जिसके अनुसार यह माना जाता है कि माता ही सब कौटुम्बिक अधिकारोकी जड है, पिता नही।) के हिमायती है। मुझे अिस संस्थाका कोअी अनुभव नही है। जहां यह संस्था चलती है, वहा अिसका स्त्री-पुरुष पर क्या असर हुआ है, यह मैं नही जानता। अिसलिअे अिस बारेमे मैं कोअी निर्णय नही कर सकता।

श्री नरसिंहभाअीने वैयक्तिक जायदादकी प्रथाको गृहीत मानकर अुत्तराधिकारके बारेमें स्त्रियोंके अधिकारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले मत व्यक्त किये है। वैयक्तिक जायदादकी प्रथाको गृहीत मानकर विचार करें, तो व्यवहारकी दृष्टिसे मुस्लिम कानून ज्यादा सरल और सीधा मालूम होता है। अुसमे स्त्रीके साथ पूर्ण न्याय नही किया गया है, परंतु न्याय करनेका पहला प्रयत्न जरूर है। ज्यादा सरल, सीधा और न्याययुक्त तो यह होगा कि:

(१) लग्नसे पति-पत्नीकी जायदाद और कमाअी मिलीजुली मानी जाय;

(२) अुसमे से जमीन, घर, गहने, शेयर वगैरा द्वारा जितनी जायदाद पूजीके रूपमें वदली गअी हो, अुस पर दोनोंके जीतेजी दोनोका समान अधिकार रहे और दोनोकी स्वीकृतिके विना अुसकी विक्री वगैरा नही की जाय।

(३) दोनोमे से अेकके मरने पर जीवित रहनेवालेका आधा हिस्सा माना जाय और वाकीका आधा हिस्सा मरनेवालेके लडके-लडकियोमें समान रूपमे वाट दिया जाय,

(४) दूसरे साथीके मरने पर वह अपने हिस्सेमें से जो कुछ वढा-घटाकर छोड जाय, वह अुसके लडके-लडकियोमें समान रूपसे वाट दिया जाय,

(५) पुनर्विवाहसे अिस व्यवस्थामे किसी तरहका परिवर्तन करनेकी आवश्यकता नही,

(६) यदि विवाह-विच्छेद हो जाय और कोअी सतान न हो, तो जायदादका आधा-आधा हिस्सा किया जाय। यदि सन्तान हो तो जायदादके तीन वरावर भाग किये जाय; अेक-अेक तृतीयाश पति और पत्नी ले और वाकीका तृतीयाश सन्तानमें वाट दिया जाय।

अिससे कोअी यह न माने कि मै अुत्तराधिकारका पूरा कानून बनानेकी कोशिश करता हू। यहा मैंने कुछ अधिकारोका स्थूल विचार ही किया है।

श्री नरसिंहभाअीने 'मगलाचरण' मे स्त्रीजातिके प्रति रही अपनी मूल तुच्छ भावना और अुसमे होनेवाले सुधारका अितिहास दिया है। श्री नरसिंहभाअीकी तरह मै भी स्वामिनारायण सप्रदायमे वडा हुआ और लगभग ३० वर्ष तक मैंने अुत्कट श्रद्धासे अुसका अनुसरण किया। अुन्हीकी तरह मुझमे भी स्त्रीजातिके प्रति तुच्छ भावनाके तीव्र सस्कार थे और मुझे नजदीकसे जाननेवाले लोग मानते है कि अुन सस्कारोके असरसे आज भी मैं पूरी तरह मुक्त नही हुआ हू। श्री नरसिंहभाअी जैसा ही मेरा साम्प्रदायिक ममत्व छूट गया है। स्वामिनारायण सम्प्रदायमें — हिन्दू धर्मके दूसरे सप्रदायोकी तरह ही — स्त्रियोकी निन्दाके बहुतसे अुद्गार आते है और यह नही कहा जा

सकता कि अुनका असर मेरे मन पर नही पडा। फिर भी, अुस सम्प्रदायके साथ न्याय करनेके खातिर मुझे यह कहना चाहिये कि अुसके कवियो द्वारा की गअी स्त्री-निन्दा केवल अुसके परपरागत साहित्यका अनुकरणमात्र है, परतु अुस सप्रदायने स्त्रीजातिकी जो प्रतिष्ठा बढाअी है और अुसका जो सम्मान किया है, वह अुसकी नअी देन है। पुरुषके हाथों स्त्रीजातिका कितना अपमान हुआ है, अिसका चित्र श्री नरसिहभाअीने अिस पुस्तकके अेक-अेक पृष्ठ पर खीचा है। स्वामिनारायण सप्रदायने अुसमे अेक अनोखापन भी ला दिया है।* सहजानन्द स्वामीने अपनी शिष्याओकी कितनी प्रतिष्ठा बढाअी और की होगी, अुसका अन्दाज अिस परसे लगाया जा सकता है कि आज तक जितने आदरसे अुनके पुरुष-भक्तोका नाम लिया जाता है, अुतने ही आदरसे जीवुबा, लाडुबा आदि स्त्री-भक्तोका नाम भी लिया जाता है। और पुरुष-भक्तोकी तरह अैसी स्त्री-भक्तोकी परपरा भी चलती आयी है।

सहजानद स्वामीने स्त्री-पुरुषके बीचकी मर्यादाओको बहुत मजबूत बना दिया; लेकिन अिससे सप्रदायके भीतर तो स्त्रीजाति अधिक सुरक्षित बन गअी। 'स्त्रियोको देखकर पुरुष दूर हटकर चले'— अुनके अिस कथनमे स्त्रीजातिके प्रति घृणा बढनेका भाव किसीको लग सकता है, लेकिन अिससे स्त्रियोके प्रति विनय भी बढा है।

यहा सहजानद स्वामीकी 'शिक्षापत्री' मे स्त्रीजातिकी रक्षाके लिअे दी हुअी कुछ आज्ञाओकी जानकारी कराना ठीक होगा। अुदाहरणके लिअे ·

"स्त्रीका दान नही करना चाहिये; विधवा स्त्रीके पास अपना गुजर चलाने जितना ही धन हो, तो अुसे धर्मके लिअे भी अुसका दान नही करना चाहिये, ब्रह्मचारीको किसी भी तरह स्त्रीका ससर्ग नही करना चाहिये — फिर भी यदि अुसके या स्वय अपने प्राणोको हानि पहुचने जैसा कोअी सकट पैदा हो जाय, तो अुस समय अुससे बोलकर या अुसे छूकर भी दोनोकी रक्षा करनी चाहिये।"

---

* अुपोद्घातके अन्तमे जोडी हुअी टिप्पणी 'पूर्ति' देखिये।

स्त्री पतिको अीश्वर तुल्य माने, यह परपरागत आज्ञा है। लेकिन विधवा अीश्वरको ही पति माने, यह नया सूत्र है। स्वामी मुक्तानंदने 'सती-गीता' मे कहा है कि जो स्त्री सकाम हो, वही पतिकी मृत्युके बाद सती होकर स्वर्ग जाय। निष्काम साध्वी स्त्रिया अैसा न करे; वे तो जीवित रहकर मोक्षधर्म स्वीकारे। मुझे लगता है कि अुस समयके लिअे तो यह बिलकुल नया ही विचार था।

मैंने श्री नरसिंहभाअीको यह दृष्टिकोण सक्षेपमें लिख भेजा और सुझाया कि स्त्रीजातिके प्रति हमारे भीतर जो तुच्छ भावना है, वह कोअी स्वामिनारायण सप्रदायकी नअी देन नही है, सभवत. वह समाजसे सप्रदायमे अुतरे हुअे और स्वतत्र रूपसे समाज द्वारा मिले हुअे सस्कारोका परिणाम है। अुलटे, निन्दा-साहित्यके होते हुअे भी स्त्रीजातिके प्रति आदरका बरताव करनेकी सप्रदायकी प्रत्यक्ष प्रथा बीजरूपमे स्त्रीजातिके प्रति न्यायवृत्तिका सस्कार विकसित करनेमे कारणभूत हो। श्री नरसिहभाअी भी मेरे अिस विचारसे सहमत हैं, अिसलिअे अितना स्पष्टीकरण किया है।

पुरुष न सुने तो भी श्री नरसिंहभाअीने स्त्रियोसे अपने आदेशोको सुननेका आग्रह किया है। मै चाहता हू कि अुनकी पुस्तकको पढकर वह बल स्त्रियोमे आवे, जिसकी लेखकने कामना की है। पर जिस न्यायबुद्धिने श्री नरसिंहभाअी जैसे पुरुषको स्त्रियोके प्रति रहे कर्तव्य और अुन पर होनेवाले अनेक अन्यायोंके प्रति जाग्रत किया है, मुझे आशा है कि वही न्यायबुद्धि अनेक पुरुषोमे पैदा होगी और अिस पुस्तकको पढनेवाले पुरुष स्त्रीजातिके प्रति प्रायश्चित्तकी दृष्टिसे देखना सीखेंगे तथा स्वय अुसके साथ अैसे अन्याय न करके अुन्हे समाजसे दूर करानेके लिअे तैयार होगे। जिस तरह अिस जमानेमे सवर्ण हिन्दुओका हरिजनोके प्रति प्रायश्चित्त करनेका कर्तव्य पैदा हो गया है, अुसी तरह पुरुषजातिका स्त्रीजातिके प्रति भी है। भगवान् करे श्री नरसिंहभाअी जैसे स्त्रीजातिके अनेक वकील पुरुषोमे पैदा हो और पुरुषजातिको शुद्ध बनावें।

वर्धा, १-४-१९३७

पूर्ति

मैंने हालमे ही स्वामिनारायण सप्रदायके ‘सत्सगी जीवन’ नामक ग्रन्थका गुजराती अनुवाद ध्यानसे पढा। अुसके अनेक प्रकरणोमे स्त्री-पुरुष-मर्यादा पर जोर दिया गया है, और सूक्ष्म चर्चाके साथ मर्यादाके विधि-निषेध बताये गये है। अूपर कहे अनुसार स्त्रियोकी निन्दाके परम्परासे चले आये अुद्‌गार अुसमे नही है। लेकिन यह भी जगह-जगह स्पष्ट दिखाअी देता है कि मर्यादा बतानेमें सहजानद स्वामीको स्त्री-रक्षाके लिअे कितना आदर और चिन्ता थी। यहा दो-चार अुदाहरण ही देता हू·

१ सहजानद स्वामीके पिता भी अपने गावमें अेक छोटे धर्मोपदेशक थे। ‘सत्सगी जीवन’ के प्रकरण १, अध्याय २९ से अैसा मालूम होता है कि सहजानन्द स्वामी स्त्री-पुरुष-मर्यादाका आग्रह अपने पितासे सीखे होगे। अुसमे आया है अुनके पिताने “स्त्रिया अपना आश्रय लेना चाहती है यह जानकर . . .जो शिष्य-परपरा हितकारी हो अुसका विचार किया। . . अिस दुनियामे जो पुरुष स्त्रियोके गुरु बनते है, वे अपनी शिष्या बनी हुअी परस्त्रियो पर और खास करके अपने वश हो जानेवाली स्त्रियो पर आसक्त होकर भ्रष्ट हो जाते है। . . . स्त्रियोका हित चाहनेवाला गुरु अपनी पत्नी द्वारा अुन्हे श्रीकृष्णके मत्रका अुपदेश (आदि) करावे। . . ”

२. प्र० २, अ० ३७· “अुन स्त्रियोके पिता, भाअी, पुत्र आदि सबधी भी पहले अुस सत्पुरुषकी परीक्षा कर ले और फिर स्त्रियोको अुसके दर्शनके लिअे ले जाय। क्योकि सतोके वेषमे बहुतसे असन्त भी घूमते रहते है, जो मुहसे ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और धर्मका अतिशय निरूपण करते है। सब पुरुष अुन्हे आसानीसे नही पहचान सकते, क्योकि अच्छी तरह ढोग करनेवालोका भेद पाना कठिन होता है।”

३. प्र० ३, अ० २५. “पिता तथा पुत्र आदि सबंधियोको (बिना पतिवाली स्त्रियोकी) रक्षा करनी चाहिये। समाजके अुत्सवो,

तीर्थो और विवाहमे तथा रास्तेकी संगतिमे साधुओसे और किसी भी आश्रमका पालन न करनेवाले मनुष्योसे स्त्रियोको सब तरहसे बचाना चाहिये। क्योकि राक्षस अति कामी पुरुष और अत्यन्त हिंसा करनेवाले लोग स्त्री और धनके हरणके लिअे हमेशा वहा मौजूद रहते है। . . धार्मिक और बुद्धिमान पुरुषोको अुन स्त्रियोकी रक्षा भी साम, दान या भेदकी युक्तिसे करनी चाहिये। अुन अबलाओका अगच्छेद या अगभग नही करना चाहिये, न अुनका वध करना चाहिये और न अुन्हे अैसे कठोर वचन कहने चाहिये कि वे आत्महत्या कर ले।"

४. प्र० ३, अ० ६१: "श्रीकृष्णके गुणो सबधी भजन-कीर्तन, अुपासना आदि भी पिता, भाअी वगैरा जैसे नजदीकके सबधियोमे ही करना चाहिये। . श्री हरिके जन्माष्टमी जैसे अुत्सवोके दिनोमे . . . यदि सन्तोने अपने निवासस्थानके आसपास कोट या वाड न कर ली हो, तो अपने पिता वगैराके साथ वहा जाना चाहिये। वहा अनेक लोगोका समुदाय हो, तो स्त्रिया स्त्रियोमे और पुरुष पुरुषोमे बैठें। दूसरी तरह न बैठें। . . . लेकिन यदि अुस स्थानके आसपास छोटी दीवाल या बाड हो, तो स्त्रिया कभी अुसमें प्रवेश न करें। . . . हे भक्तो, स्त्रिया अपने अिष्टदेवके दर्शनके लिअे भी दो अुत्सवोको छोडकर कभी रातमे न जाय। अेक जन्माष्टमीका और (दूसरा) मेरे जन्मका अुत्सव। और अुस समय भी स्त्रिया अपने सगे-सबधियोके साथ ही रातमें जाय। धर्म और शीलको भ्रष्ट करनेवाले कालरूप राक्षसजन रातमे घूमते रहते हैं, अिसलिअे सावधानीसे ही जाना चाहिये।"

५. प्र० ४, अ० ४४: (शिक्षापत्री) "अैसा वचन अपने गुरुका भी नही माना जाय, जिससे अपने ब्रह्मचर्यव्रतका भग हो। . . . जबरदस्ती पास आती हुअी स्त्रीको मुहसे बोलकर या अपमान करके भी तुरन्त रोकना चाहिये। (परतु) किसी समय स्त्रियोंके या खुदके प्राण जानेका सकट अुपस्थित हो जाय, तब तो स्त्रियोको छूकर या अुनसे बोलकर भी स्त्रियोकी और अपनी रक्षा करनी चाहिये।"

६. प्र० ४, अ० ५३ : अपने दत्तक पुत्रोको आचार्यपद पर बैठाते समय अुन्होने अुन्हे जो अुपदेश दिया, अुसमे स्त्रियोको दीक्षा देनेका निषेध करनेके साथ कहा है : "स्त्रिया धर्मवंशके पुरुषो (यानी मेरे द्वारा स्थापित किये हुअे आचार्यो) से कभी दीक्षा न ले। . . . अिस कलियुगमे हजारो स्त्रिया पुरुषोसे दीक्षा ग्रहण करके पशुओकी तरह भ्रष्ट हुअी देखी जाती है।"

ये सब अुद्धरण यही दिखानेके लिअे दिये गये है कि सहजानद स्वामीके नियमनके पीछे पुरुषोके ब्रह्मचर्यकी रक्षाकी जितनी चिन्ता रही होगी, अुससे ज्यादा चिन्ता स्त्रियोके सतीत्वकी रक्षाकी मालूम होती है। और अुस समयके धार्मिक पन्थोमे घुसी हुअी सडाधका अुन्हे जो अनुभव हुआ था, अुसीकी वजहसे स्त्री-पुरुष-मर्यादा पर वे अितना जोर देते थे। मै यह हरगिज नही कहना चाहता कि अुनके बताये हुअे सारे नियम आज जैसेके तैसे पाले जाने चाहिये।

(जनवरी, १९४८)

पूरक अध्याय

१

बाहुबल

आजके जमानेमे जीवनके सारे प्रश्नो पर वर्गविग्रहकी परिभाषामे विचार करनेका रिवाज पड गया है। अैसा अेक वर्गविग्रह स्त्री-पुरुषका सघर्ष माना जाता है। जिन-जिन वर्गोंके बीच झगडा चला आया माना जाता है, अुन सबमे शायद स्त्री-पुरुषके वर्ग अेक तरहसे सबसे सच्चे माने जा सकते है, और यदि वर्गविग्रह अनिवार्य चीज हो, तब तो अिन दोनोके बीचका झगडा मिटानेका शायद कोअी अुपाय भी न मिले। क्योंकि मालिक-मजदूर जैसे दूसरे सब वर्ग चाहे जितने पुराने हो, फिर भी वे मनुष्यके बनाये हुअे है। अिसलिअे अुन्हे मिटानेकी आशा की जा सकती है। लेकिन स्त्री-पुरुषका वर्ग कुदरतका बनाया हुआ है, अिसलिअे अुसे मिटानेकी आशा नही रखी जा सकती।

दूसरे वर्गविग्रहोके मिटानेके दो रास्ते है और वे सुझाये भी गये है। अेक, समन्वय अर्थात् अहिसाके द्वारा, दूसरा, सत्तासे अर्थात् अेक वर्गका हिंसासे नाश करके। लेकिन स्त्री-पुरुषका वर्गविग्रह, मनुष्य-जातिका ही नाश करनेका विचार किये बिना, दूसरे रास्तेसे मिटानेकी तो कल्पना भी नही की जा सकती। अिसलिअे अिस वर्गविग्रहको मिटानेका समन्वयके सिवा दूसरा कोअी रास्ता नही हो सकता। फिर भले कोअी अिस समन्वयको सिद्ध करनेके लिअे सत्ताका थोडा-बहुत बल काममे लेनेका विचार या प्रयोग करे। पर अिसमे दोनो वर्गोंको कायम रखकर दोनोंके बीच समन्वय साधनेके सिवा दूसरा कोअी ध्येय नही रखा जा सकता।

पुरुषने अपने बढे-चढे बाहुबलसे स्त्रीजातिकी हर तरहसे अवदशा कर रखी है, यह अिस पुस्तकका अेक मुख्य ध्रुवपद है। स्थूल दृष्टिसे

देखे तो यह बात गलत भी नही है। अिस पुस्तकमे अनेक प्रमाण देकर अिसे सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है।

फिर भी अिस बारेमे ज्यादा गहराअीसे सोचने पर मुझे मालूम होता है कि कुल मिलाकर पुरुषका स्त्री पर अधिकार जमनेमे वाहु-वलकी अपेक्षा अन्य दो चीजोका पहला हाथ रहा होगा। अुनमे से अेक है स्त्री-पुरुषकी अलग-अलग 'धृति' और दूसरी मनुष्य-जातिकी दड-नीति पर अत्यन्त श्रद्धा।

यहा मै 'धृति' शब्दका गीताके अर्थमे अुपयोग करता हू। अुसका अर्थ है धारणा या दृढता. किसी कार्य, विचार या अुद्देश्यसे चिपटे रहनेकी चित्तकी शक्ति।

मुझे लगता है कि स्त्री अपने शारीरिक जीवनमे पुरुषके अधीन और अुसकी आश्रित बनी, अुससे पहले ही किसी न किसी कारणसे अुसका धृतिवल कम हो चुका होगा, या गुणमे घटिया बन गया होगा। अर्थात् वह अपने मनसे ज्यादा पराधीन, आश्रित और लाचार वन चुकी होगी। पुरुष मुझसे ज्यादा श्रेष्ठ है, शरण लेने योग्य है या अुसका आधार जरूरी है; अथवा मै पुरुषसे ज्यादा हीन हू, शरणा-र्थिनी हू, या अुसके विना दु.खी, लाचार, लताकी तरह पगु हू — अैसा विचार किसी कारणसे अुसके मनमे बस गया, अैसी अुसकी धृति या पूर्वग्रह बन गया और वह बढता गया। अिससे अुलटी धृति पुरुषके मनमे वधी। अिन दो पूर्वग्रहोको श्री नरसिंहभाअीने क्रमसे स्त्रीमे दास्यवृत्ति (अिन्फिरियोरिटी कॉम्प्लेक्स) और पुरुषमे स्वामीवृत्ति (सुपि-रियोरिटी कॉम्प्लेक्स) का नाम दिया है। स्त्री पुरुषके वाहुवल, खुशामद, गहने-गाठे या धन आदिके वश हुअी, अुसके पहले ही अुसकी धृति घट गअी होगी। अुसके पहले ही वह पुरुषकी अपेक्षा दूसरी चीजोकी या जीवन-लालसाकी अधिक मात्रामे दासी वन चुकी होगी और अुसने माना या अनुभव किया होगा कि ये चीजे पुरुषसे ज्यादा आसानीसे प्राप्त की जा सकती है। अिस तरह स्त्रीकी स्थूल अधीनता पुरुषके वाहुवलका सीधा परिणाम नही है, वल्कि वह पहलेसे ही अुसकी मानसिक धृति घट जानेके फलस्वरूप अुसमे आअी होगी। अपवाद नियमको सिद्ध

करता है, अिस न्यायसे विचारने पर भी अैसा ही मालूम होता है। अैसे अुदाहरण देखनेमे आते है कि जिस स्त्रीकी धृति पुरुषसे अधिक होती है, वह आज भी — आजके सारे कानून और रिवाज स्त्री-जातिके खिलाफ होते हुअे भी — अत्याचारी पुरुषके अधीन नही रहती, अुलटी अुसे छकाती है, हराती है और वशमे भी रखती है। यह वताता है कि प्रत्यक्ष वाहुवलकी अपेक्षा धृति अधिक महत्त्वकी चीज है। अिस वारेमें आगे ज्यादा विस्तारसे चर्चा करेंगे।

स्त्रीजातिके सबधमे ही नही, वल्कि मनुष्य समाजमे जहा-जहा अेक मनुष्य दूसरेके अधीन है, वहा-वहा जाच करनेसे मालूम पडेगा कि वाहुवलका अुपयोग करनेवाले और अुसके वश होनेवाले दोनोमे अेक श्रद्धा समान रूपसे पाअी जाती है। अिस श्रद्धाके कारण ही बाहुबलका अुपयोग होता है और वह राजीखुशीसे स्वीकार किया जाता है। आज तक सारी मानव-जातिमे दडशास्त्रके प्रति अटूट श्रद्धा रही है। मनुष्य-जातिने पुराने समयसे अहिसासे — प्रेमसे — समन्वयवृत्तिसे काम तो अनेक वार लिया है, परतु श्रद्धाके अेक सिद्धातके रूपमें वह दडशास्त्रमें ही विश्वास रखती आअी है। यह श्रद्धा सिर्फ पुरुषकी ही नही, स्त्रीकी भी है, अर्थात् अपने क्षेत्रमे स्त्री भी अुसका अुपयोग करनेमे विश्वास रखती है। केवल स्त्रीजातिको ही यह वात लागू नही होती, बल्कि जहा-जहा अेकके द्वारा दूसरेको नियम या नियत्रणमें रखनेकी जरूरत पैदा होती है, वहा सभी जगह यह पायी जाती है। राज्यशासनके आजके नयेसे नये मत — समाजवाद (सोशियलिज्म) या साम्यवाद (कम्युनिज्म) — भी यह मानते है कि राज्यसत्ताका अतिम आधार अुसकी दडशक्ति ही है। अपनी अिच्छाका जबरन् अमल करानेकी शक्ति ही राज्यका प्राण है। अिस विषयमे पूर्वके या पश्चिमके, पुराने या नये विचारकोमें कोअी मतभेद नही है। विद्वानो और आम लोगोमें भी मतभेद नही है। मानो किसीके सिखाये विना ही सवने यह मान लिया है कि समाज-व्यवस्थाका अतिम वल ‘दड’ ही हो सकता है। राजा प्रजाको, मालिक नौकरको, ग्वाला ढोरको, गुरु शिष्यको, पुरुष स्त्रीको, वड़े-बूढे बच्चोको, बडे लडके छोटे लड़कोको — अिस

तरह चाहे जिस कारणसे बडे बने हुअे सभी लोग किसी भी कारणसे छोटे बने हुअे सभी लोगोको 'दड' से ही नियत्रणमे रखते है। यही शास्त्रीय मार्ग है; और अिसलिअे राजनीति समझनेवालोकी दृष्टिसे अुनका धर्म भी है। 'ढोल, गवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताडनके अधिकारी'—अिसमे मनुष्य-जातिकी दडनीतिमे रही श्रद्धाका सार सादी भाषामे आ जाता है।

प्रारभसे ही समस्त मानव-जातिकी यह श्रद्धा रही है और आज भी है। अिसलिअे पुरुषने स्त्री पर बाहुबलका प्रयोग किया हो, तो कोअी अचरजकी बात नही। पुरुषने पुरुष पर और स्त्रीने स्त्री पर, और अनुकूल अवसर मिलने पर स्त्रीने पुरुष पर भी अिसका प्रयोग किया है। जिस समय शाकाहारका विचार ही पैदा नही हुआ था, अुस समय लिखी हुअी रामायणमे राम-लक्ष्मणको मांस-मछलीका भोजन करनेवाले बताया गया हो, तो अुसमें अचरज ही कौनसा है? अुसी तरह जब दडबलका निषेध करनेवाला विचार ही मानव-जातिमे पैदा नही हुआ था, अुलटे यह माना जाता था कि दंड ही स्वाभाविक, तर्कशुद्ध, नीतिशुद्ध और शास्त्रीय मार्ग है, तब पुरुषने स्त्री पर अपने बाहुबलका प्रयोग किया हो तो कोअी अचरजकी बात नही। अैसा भी नही कहा जा सकता कि दड देनेवालेको हमेशा दडशक्तिका अभिमान ही रहता है, या जिसे दंड दिया जाता है अुसके लिअे दंड देनेवालेके मनमे प्रेमका अभाव ही रहता है। अैसा भी हो सकता है कि प्रेमके होने पर भी, अपनी कोमल भावनाको ठेस लगने पर भी, हृदयके टुकडे हो जाने पर भी दडको कर्तव्य-धर्म समझकर कोअी काममे ले। मा बच्चोको मारती है और रोती है; क्योकि मारना जरूरी समझती है, लेकिन मारना अच्छा नही लगता अिसलिअे अुसे रोना आता है। पुरुष स्त्रीको दड देने पर अेकदम चाहे रो न पडे, लेकिन मनमें जलता या कुढता तो है ही।

मानव-जातिमें आज तक पोषण पाअी हुअी अैसी श्रद्धाका विचार करें, तो 'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताडनके अधिकारी'—यह टीकाका विषय बनी हुअी तुलसीदासजीकी चौपाअी

अितना ही बताती है कि अुनके जमाने तक यह मान्यता चली आअी थी कि दड ही समाज-व्यवस्थाका अतिम शस्त्र और शास्त्र है। सिर्फ अितने परसे यह नही कहा जा सकता कि अुनके मनमे गवार, शूद्र, पशु और नारीके लिअे घृणा थी। अैसा था या नही, यह निर्णय तो अुनके जीवनके और साहित्यके दूसरे भागो परसे किया जाना चाहिये। अैसा नही मालूम होता कि अिन सबके प्रति अुनके मनमें घृणा थी। परतु अिस चर्चाका यह स्थान नही।

सच बात तो यह है कि महावीर, बुद्ध या अीसा जैसे महापुरुषोने भले अहिसा या प्रेमकी महिमा खूब बढाअी हो और अहिसा-धर्मके विकासमे महत्त्वका भाग लिया हो, फिर भी यह मालूम नही होता कि अुन्होने समाज-नियमनके आवश्यक अुपायके रूपमे दडनीतिकी बिलकुल मनाही की हो। यह विचार नया ही पैदा हुआ है। शायद टॉल्स्टॉयने ही दडनीति पर रही श्रद्धाको मिटानेके लिअे सबसे जोरदार लिखित प्रचार किया, और गाधीजी जीवनके हर क्षेत्रमे यथासभव प्रयोग करके अिसका प्रचार कर रहे है। शिक्षाके क्षेत्रमे — अर्थात् गुरु-शिष्यके सम्बन्धमें — गुजरातमें दडशास्त्रके खिलाफ प्रचार करनेमे दक्षिणामूर्ति सस्थाका सबसे ज्यादा हाथ माना जा सकता है। लेकिन यह सब दडशास्त्र पर रही मानव-श्रद्धाको निर्बल बनानेकी शुरुआत ही कही जायगी। अैसी हालतमे 'अधिकारी' शब्दका अेक अलग ही अर्थमे अुपयोग करे, तो सारे दलितवर्ग तुलसीदासजीकी चौपाअीको अेक करुण सत्यके रूपमें अपने पक्षमे भी अुद्धृत कर सकते हैं। 'अधिकारी' यानी जिस मामलेमे खुदको अधिकार है, जो खुदके हाथकी बात है। जिस तरह 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन' — कर्म करना अपने हाथकी बात है, लेकिन फल पैदा करना अपने हाथकी बात नही, अुसी तरह बेचारे दलितवर्ग कह सकते हैं कि मार सहना हमारे हाथकी — हमारे तकदीरमें लिखी हुअी — बात है। *

---

* तुलसीदासजीने कही अिसी अर्थकी तो यहां कल्पना नही की हो? यह शका अुठनेका कारण यह है कि यह चौपाअी सुन्दर-

कांडमे समुद्रके मुहसे कहलवाअी गअी है। रामके बाणसे वश होकर समुद्रको अुनके लिअे अनिच्छासे रास्ता बना देना पड़ता है। तब भयभीत और दीन बना हुआ समुद्र रामको खुश करनेकी अिच्छासे कहता है:

'हे नाथ, मेरे सब अवगुणोके लिअे मुझे क्षमा कीजिये। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी अिन सबकी क्रियाये, हे नाथ, स्वभावसे ही जड होती है। सब ग्रन्थ यह गाते है कि आपकी मायाकी प्रेरणासे वे सब सृष्टिके हेतुसे अुत्पन्न हुअे है। प्रभुकी आज्ञासे जो जहा हो, वहा अुसी ढगसे रहे तो सुख पाता है। हे प्रभु, आपने मुझे दड दिया यह अच्छा किया। सब मर्यादाये आपकी ही ठहराअी हुअी है। (अर्थात् आपकी मर्यादाके अनुसार चलनेवालेको आप दंड दे यह कैसा शोभता है! या आपकी मर्यादाको बदलनेकी आपको सत्ता है। अिस-लिअे यदि आप मुझे दड देकर अुसे बदलना चाहे तो आप स्वामी है, मै कैसे विरोध कर सकता हू?) ढोल, गवार, शूद्र, पशु और नारी ये सब मार खानेके ही अधिकारी हैं। (अिसलिअे आप मुझे मारे तो कोअी अचरज नही।) आपके प्रतापसे अब मै सूख जाअूगा और आप अपनी सेना पार अुतारना; अिसमें मेरा कोअी बड़प्पन नहीं है। (अर्थात् आप ही मेरा बडप्पन मिटायेंगे।) सब श्रुतिया गाती है कि प्रभुकी आज्ञा तोडी नही जा सकती, अिसलिअे अब आपको जो ठीक लगे वह जल्दी कीजिये।'

अैसे नम्र वचन सुनकर कृपालु (राम) मुस्कराकर बोले. 'हे भाअी, अैसा अुपाय बताओ, जिससे सेना पार अुतारी जा सके।' अर्थात् समुद्रके तानेसे राम शरमा गये अैसा भाव अिसमे है। अिस-लिअे मालूम होता है कि यह चौपाअी यहा तानेके रूपमे है।

२

विकारबल

तो वाहुबलके प्रत्यक्ष अुपयोगकी अपेक्षा धृति (धारणा या दृढता) मे अुत्पन्न हुआ दोष और दडशास्त्रकी आवश्यकता तथा योग्यताके बारेमें मनुष्य-मात्रमे रही अत्यत श्रद्धा ही, क्या स्त्री और क्या दूसरे दलित या पराधीन बने हुअे वर्ग, सबकी दुर्दशाका आदि कारण मालूम होती है। अिसकी हम थोडी ज्यादा जाच करे।

सच पूछा जाय तो सभी यह समझते है कि स्त्री और पुरुष दोनो मिलकर घर-ससारको बनानेवाले है। गाड़ीको बाया पहिया या बायी तरफका बैल अधिक चलाता है अथवा दाहिना पहिया या दाहिनी तरफका बैल अधिक चलाता है—यह चर्चा जैसे बेकार है, ताली बजानेमे वाया हाथ गतिशील और दाहिना हाथ स्थितिशील (स्थिर) रहता है, यह चर्चा जैसे निकम्मी है; अुसी तरह स्त्री-पुरुषके बीच अैसा भेद ढूढनेवाली चर्चा मुझे बेकार मालूम होती है। चौमासेमे जव विजली चमकती है, तब बिजलीकी गति बादलमे से धरतीकी तरफ होती है या धरतीमें से बादलकी तरफ, अिस बारेमे अन्तिम नियम बताना कठिन है। दोनोमें से किसमे 'पॉजिटिव' और किसमे 'निगेटिव' नामसे पहचाना जानेवाला सचार होता है, अिसका भी अन्तिम नियम मालूम नही पडता। अुसी तरह पुरुषो और स्त्रियोमे सारे पुरुष गतिशील और सारी स्त्रिया स्थितिशील ही होती है, अैसा कोअी अन्तिम सिद्धान्त ठहराना कठिन है। मुझे लगता है कि कोअी बार पुरुष गतिशील होते है, तो कोअी बार स्त्रिया गतिशील होती है, कभी-कभी दोनो अेक-दूसरेके प्रति गति करते है। परन्तु आदतके कारण जैसे बहुतसे पुरुष दाहिने हाथसे काम करनेवाले होते हैं और बायें हाथसे काम करनेवाले पुरुषोके बनिस्वत अैसी स्त्रिया ज्यादा होती है, अुसी तरह यह सभव है कि अलग-अलग

समाजकी रूढियोके अनुसार वहुतसी जगहोमे पुरुषकी तरफसे पहल करनेकी अपेक्षा न रखी जाती हो या स्थितिशील पुरुषोके वनिस्वत स्थितिशील स्त्रियोकी तादाद ज्यादा हो। लेकिन यह स्त्री-पुरुषके भीतरी भेदकी अपेक्षा रूढि या आदतका ही परिणाम अधिक हो सकता है।

परन्तु स्त्री और पुरुष दोनो अिस तरह गृहस्थीके समान चक्र होते हुअे भी अूपर कहे मुताबिक — साधारण तौर पर — अेकमें जो हीनताग्रह (अिन्फिरियोरिटी कॉम्प्लेक्स) और दूसरेमें श्रेष्ठताग्रह (सुपिरियोरिटी कॉम्प्लेक्स) पैदा हुआ है, अुससे दोनोके सुख-दु खमे और घमड-लाचारीमे वहुत फर्क पड गया है। अिस फर्कका अुनके शरीरवलसे कोअी सम्वन्ध नही है। अर्थात् बाहुवल न रखनेवाले पुरुषमे भी श्रेष्ठताग्रह और मजबूत शरीरकी स्त्रीमे भी हीनताग्रह पाया जाता है। सच तो यह है कि साधारण पुरुष अेक दिन भी स्त्रीके विना ठीकसे ससार नही चला सकता; अुलटे, साधारण पुरुषकी अपेक्षा साधारण स्त्री पुरुषके बिना ज्यादा अच्छी तरह ससार चलाती देखी जाती है। दु ख या कामकाजका बोझ सहन करनेकी शक्ति भी आम तौर पर स्त्रीमें ज्यादा होती है। फिर भी अधिक पुरुषोंके मनमें यह झूठा घमड भरा रहता है कि वे स्त्रीके आधार हैं और अुन्हे स्त्रीकी कोअी जरूरत नही। साथ ही, अधिकतर स्त्रियोंके मनमे भी यह भ्रम घुसा रहता है कि पुरुष ही अुनके जीवनका सहारा है, और पुरुषके विना वे विना मल्लाहकी नाव जैसी हैं। स्त्रीकी यह लाचारी और वेवसी वहुधा मानसिक ही होती है। हम हिन्दुस्तानियोको यह वात आसानीसे समझमे आ जानी चाहिये। वास्तवमे अिग्लैण्डको ही हिन्दुस्तानकी अधिक आवश्यकता है और हिन्दुस्तानके विना अिग्लैडकी हालत अुस पुरुषके जैसी हो सकती है जिसका वुढापेमें स्त्रीके मर जानेसे घर टूट गया है। फिर भी अग्रेजोके मनमे हिन्दुस्तानके वेली होनेका झूठा घमड है; अितना ही नही, वहुतसे हिन्दुस्तानियोंके मनमे भी यह भ्रम घुस गया है कि अिग्लैड न हो तो हिन्दुस्तान कहीका न रहे। वैसी ही यह स्त्री-पुरुषकी शरण और शरण्यकी मनोदशा है। हिन्दुस्तान अिग्लैडकी जवरदस्त ताकतके कारण लाचार

बना हुआ है, यह कहना अितिहासका गलत अर्थ करना है। ताकत घटनेके कारण हिन्दुस्तान गुलाम नही बना, बल्कि आज अुसकी ताकत कम हो तो वह अुसकी पराधीनताका परिणाम है। अुसकी ताकत घटनेके पहले अुसका धृतिबल घट गया था। अुसमे अपने-आपको आश्रित और पराधीन बनानेवाली बीमारी या बीमारिया घुस चुकी थी। स्त्रीजातिके बारेमें भी मै अैसा ही मानता हू।

लेकिन अिससे अधिक हिन्दुस्तान-अिग्लैण्ड और स्त्री-पुरुषकी तुलना नही की जा सकती। हिन्दुस्तान और अिग्लैण्डका सम्बन्ध स्त्री-पुरुष जैसा नही है। ये दोनो हमेशाके लिअे अेक-दूसरेसे अलग रह सकते है। स्त्री-पुरुषके बारेमें अैसा नही हो सकता। कुछ पुरुष या स्त्रिया भले अेक-दूसरेके बिना जीवन बिता सके, परन्तु अिनकी सख्या हजार पीछे अेक-दोसे ज्यादा नही होगी। बाकीके ९९९ स्त्री-पुरुषोका ससार तो अेक-दूसरेके साथ ही चल सकता है। स्त्री-पुरुष लडें-झगडे या मिलकर रहे, मातृक सस्था (Matriarchal System) बनाकर रहे या पैतृक सस्था (Patriarchal System) बनाकर रहे, अेक पत्नीकी, बहुपत्नीकी, अेक पतिकी या बहुपतिकी चाहे जो प्रथा रखे, विवाहके बन्धन न टूटनेवाले रखें या टूटनेवाले रखे, सयमी जीवन बिताये या स्वेच्छाचारी जीवन बिताये, सन्तान बढानेवाले हो या सन्तति-निरोध करनेवाले हो, अरेबियन-नाअिट्सके बादशाहकी तरह रोज अेक स्त्रीसे विवाह करके दूसरे दिन अुसका सिर काट डालें अथवा मकडी या बिच्छू जैसे जीवोके बारेमे कहा जाता है अुस तरह स्त्रिया पुरुषोका वध करनेवाली हो, अीर्षासे या प्रेमकी निराशासे कोअी पुरुष बेवफा स्त्रीका खून करे या कोअी स्त्री अपने रास्तेका काटा बननेवाले पतिका खात्मा कर दे या दोनो साथ-साथ आत्महत्या करे; पुरुष स्त्रीका स्वामी बन बैठे और कानून अुसे स्त्री पर यह सत्ता दे, या स्त्री अुसे गुलाम बनाकर रखे और मरजीमे आवे तब अुसे घरसे निकाल देनेका कानूनी अधिकार प्राप्त करे, पुरुष अपना 'स्वामीनाथ' पन दिखाते हुअे भी स्त्रीके बिना पगु बन जाय, या स्त्री अपनेको पतिकी 'चरणदासी' मानते हुअे भी पतिको अिस तरह अपने

वशमे रखे कि जितना पानी वह पिलावे अुतना ही पीये; — अिस तरह चाहे जैसे अच्छे-बुरे, सुखमय-दुःखमय, नैतिक-अनैतिक, समान-असमान सम्वन्ध दोनोके वीच दिखाअी दे, तो भी जब तक पुरुष और स्त्री दोनो अेक ही योनिके प्राणी है और अपने नर-नारीके भेद टाल नही सकते, तव तक सौमे से निन्यानवे पुरुष स्त्रीजातिके और सौमे से निन्यानवे स्त्रिया पुरुषजातिके सहवासमे आये बिना रह नही सकती, कभी वे अेक-दूसरेके सहवासमे अिच्छासे आयेगे, कभी वलात्कारसे, कभी फसकर, कभी दूसरोकी कोशिश या सलाहसे, तो कभी दूसरोकी सलाहकी अुपेक्षा करके भी।

श्री नरसिंहभाअीके विवेचनके अनुसार पुरुषने स्त्रीजातिके खिलाफ जो प्रपच रचा है, अुसमे महत्त्वका साधन अुसका वाहुवल है और खास प्रेरणा देनेवाला हेतु अुसकी कामलोलुपता है। अपनी निरकुश कामवासनाको विना किसी रुकावटके तृप्त करनेके लिअे ही अुसने लग्नके नाम पर अनेक युक्तिया रची है।

वाहुवलके वारेमे मैने अपनी राय अूपर बता दी है। पुरुष और स्त्रीकी कामलोलुपताका परस्पर क्या अनुपात होता है, यह निश्चित करना मुझे तो असभव मालूम होता है। पुरुषमें कामविकारका वेग कितना जोरदार होता है, अिसकी कुछ कल्पना मै अपने अनुभव परसे और दूसरे पुरुषो द्वारा किये हुअे अिकरारो परसे कर सकता हू। परन्तु सामान्यत. स्त्रियोमे कामविकार कितने जोरोसे अुठता है और कितने समय तक टिकता है, अिसकी कल्पना करनेमे मै अपनेको असमर्थ समझता हू। स्त्रियोने अिस विषयमे कुछ लिखा हो, तो वह मेरे पढनेमे नही आया। स्त्रियोके अिकरारके रूपमें महाभारतमे कुछ वाते दी गअी है, लेकिन वे वास्तवमे किन्ही स्त्रियोके अिकरारो परसे लिखी गअी है या स्त्रीजातिके वारेमे कविका जो मत था अुस परसे अुसने अुनकी कल्पना कर ली है, यह हम नही जानते। वे सच्चे अिकरारके आधार पर नही होगी, अैसा माननेके कअी कारण है।

सारी पुरुपजाति या स्त्रीजातिके वारेमें व्यापक सूत्रोके रूपमे पेश की जानेवाली मान्यताओको मै सामान्यत अश्रद्धाकी दृष्टिसे

देखता हू। फिर भी यदि अैसी व्यापक बात कहनेकी मै छूट लू तो मुझे अैसा लगता है :—स्त्री-पुरुष दोनोमे कामविकार अुत्पन्न होता है; और यही कुदरतका नियम हो सकता है। वर्ना प्रजाततु कायम ही नही रहेगा। परन्तु साधारण तौर पर जब पुरुषमे वह पैदा होता है, तब अुसका वेग अदम्य होना चाहिये। तब पागलकी तरह पुरुष जोरोसे बढता जाता है और अुन्मत्त दशामे मर्यादा छोडकर आचरण कर डालता है तथा अनर्थोको जन्म देता है। परन्तु अुतनी ही जल्दी अुसके कामविकारका वेग अुतर भी जाता है, और बादमें सूख भी जाता है। और अिस कारणसे वह वैराग्यवृत्तिका भी अनुभव करता है। स्त्रीका वेग निरन्तर बहनेवाली बडी नदीके जैसा हो सकता है। अुसमे रोज थोडे-बहुत चढाव-अुतार आते है, बीच बीचमे पूर भी आ सकते है। लेकिन बहुधा वह धीरे-धीरे चढता है और धीरे-धीरे अुतरता है, यथासभव कभी सूखता नही। यथासभव वह मर्यादा नही छोडता, फिर भी स्वाधीन ही होता है, और बिलकुल मर्यादामें ही रहता है, अैसा भी नही है। दो जातियोके विषयमें यह कल्पना कितनी सच्ची है, यह मै नही जानता।

सच कहू तो दोनोके विकारोकी मात्रा खोजना मुझे आवश्यक नही लगता। दोनोमें से कोअी अेक निर्विकारी ही रहता है, अैसा तो किसी हालतमे नही कहा जा सकता। और अितना हमारे लिअे काफी है।

तब हम अितना मान ले मामूली दुनियवी स्त्री-पुरुषोका काम अेक-दूसरेके बिना चल ही नही सकता। दोनोमें कम-ज्यादा कामविकार तो रहता ही है। यह विकार चाहे जितनी बार अुठता हो, फिर भी अिसमें कोअी शक नही कि अिसका अेकमात्र हेतु वशवर्धन ही है। अैसी स्थितिमे हमें यह प्रश्न हल करना है कि कैसे आदर्शसे प्रेरित होकर और मानव-जातिकी मौजूदा परिस्थितिको जाचकर समाजकी विवाह-व्यवस्था, कुटुम्ब-व्यवस्था, जायदाद-व्यवस्था आदि करनी चाहिये, जिससे मानव-जातिका ज्यादासे ज्यादा कल्याण होनेके लिअे अनुकूल परिस्थिति पैदा हो।

३

गलत सूत्र

लेकिन मानव-जातिका कल्याण किस बातमे है और कैसे होगा, यह खोजनेके लिअे पहले अेक प्राथमिक शर्तको स्पष्ट कर देना चाहिये। वह यह कि गलत या अर्धसत्य धारणा बनाकर कल्याणका मार्ग नही खोजा जा सकता। सच्ची बातका पता चले अुससे पहले ही गलत मान्यता छोड़ देनी चाहिये और अर्धसत्य बातोका अधूरापन ध्यानमें रखना चाहिये। सच्ची चीज मिल जाने पर गलत चीज छोड़ दूगा, अिस तरह सोचनेसे कभी सच्चा मार्ग हाथ नही लगेगा। पुरुषोने स्त्रियोके बारेमे या स्त्रियोने पुरुषोके बारेमें व्यापक रूपमे जो मान्यताअें बना रखी हैं, अुनमे से ज्यादातर अर्धसत्य अनुभवो पर बनी हुअी होती हैं। लेकिन अुनका प्रचार अिस तरह बार-बार किया जाता है कि बहुतसे स्त्री-पुरुषोंके मन पर अुनका अेक दृढ सस्कार ही जम जाता है, और अुनकी सचाअीके बारेमे शका अुठानेकी कभी कल्पना भी नही होती। दो और दो चारकी तरह अुन्हे निर्विवाद सत्यके रूपमे मान लिया जाता है। अैसे अर्धसत्य या गलत सूत्रोके थोडे अुदाहरण यहा देता हूं .

पुरुष श्रेष्ठ प्राणी है, स्त्री घटिया है; या अिससे अुलटा, पुरुष पामर प्राणी है, स्त्री देवी है।

पुरुष शिकारी है, स्त्री हरिणी है; या अुलटा, पुरुष नरमत्स्य है, स्त्री मछली है।

पुरुष बुद्धिप्रधान है, स्त्री भावनाप्रधान है।

पुरुप बहिर्मुख है, स्त्री अन्तर्मुख है।

पुरुप कठोर है, स्त्री कोमल है, या अुलटा, पुरुप दयालु है, स्त्री निर्दय है।

पुरुप दीर्घ दृष्टिवाला है, स्त्री अल्प दृष्टिवाली है।

पुरुष अुदार है, स्त्री सकुचित है।

पुरुष गति — या आक्रमण — शील है, स्त्री स्थिति — या रक्षण — शील है।

पुरुष अधिक विकसित है, स्त्री कम विकसित है, या अिससे अुलटा।

पुरुष आधार है, स्त्री आश्रित है।

पुरुष बलवान है, स्त्री कमजोर है।

पुरुषका स्त्रीके विना चल सकता है, स्त्रीका पुरुषके विना नही चल सकता।

पुरुष अुत्पादक है, स्त्री व्यवस्थापक और सरक्षक है।

पुरुषको घूमना पसद है, स्त्रीको घर।

पुरुषका कार्यक्षेत्र घरके बाहर है, स्त्रीका घरके भीतर।

स्त्री पुरुषकी वामागिनी या अर्धांगिनी है।

पुरुषके पेटमे बात रहती है, स्त्रीके पेटमे नही रहती। या अुलटा, पुरुष निखालिस है, स्त्री कपटी।

लडका पिता जैसा निकलता है, लडकी मा जैसी।

स्त्रियोको गहने प्यारे लगते है, अुन्हे झगडा पसन्द होता है, आसू ही अुनके हथियार है।

वर्तमान सस्कृति पुरुषकृत है, आदि आदि।

अैसे-अैसे व्यापक सूत्रोसे पोषण पाये हुअे सस्कार दोनोका हित खोजनेमे रुकावट डालते है। विचार करनेसे मालूम होगा कि पुरुषकी निन्दा या स्त्रीकी निन्दा अथवा पुरुषकी प्रशसा या स्त्रीकी प्रशसाके बध चुके खयालोके पीछे गलत कल्पनाये, अर्धसत्य अनुभव या बहुत थोडे अनुभव ही होते है। सच पूछा जाय तो अूपरके सूत्रोमे से बहुतेरे काल्पनिक है, और निरपवाद तो अुनमें से अेक भी नही है। हरअेकके बारेमे अुलटे अुदाहरण मिल सकते है।

वास्तवमे मुझे तो अैसा लगता है कि स्त्री और पुरुषके बीच बहुत ज्यादा फर्क हो ही नही सकता। क्योकि, जैसे पुरुष स्त्रीके पेटसे

जन्म लेता है, वैसे स्त्री भी पिताके बिना पैदा नही होती। अर्थात् हर पुरुषमे स्त्री अदृश्य रूपमे रहती है और हर स्त्रीमे पुरुष अदृश्य रूपमें रहता है। गहराअीसे जाचे तो मालूम होगा कि अेक भी पुरुष अैसा नही मिलेगा, जिसमें अुसकी माताके गुण या रूप बिलकुल न हो; और कोअी स्त्री भी अैसी नही मिलेगी, जिसमे अुसके पिताके गुणो या रूपकी छाया न हो। कोअी पुरुष अैसा न होगा जिसमे स्त्रीजातिमे आरोपित भाव न होगे; और कोअी स्त्री भी अैसी न होगी, जिसमे पुरुषोमे आरोपित भाव न होगे। यह तो सब कोअी जानते है कि अधिक महापुरुषोके बारेमे यह बताया जाता है कि बड़प्पनकी विरासत अुन्हे अुनकी मातासे मिली होती है। कुछ स्त्री-पुरुष मैने अैसे देखे है, जो सूख जाने पर तो पिता जैसे दीखते है और शरीर भर जाने पर माता जैसे दीखते है। मै मानता हूं कि रूप और स्वभावमे माके जैसे लडके और पिताके जैसी लडकिया काफी मिल जायगी।

यह सब बताता है कि अूपरके सूत्रोको मानने जैसा कुछ मालूम होता हो, तो अुसका कारण स्त्री-पुरुषोके कुदरती भेद नही, बल्कि परिस्थितिया है।

परिस्थितिके कारण — अर्थात् गलत विचारोकी वजहसे बने हुअे सस्कारो या मानी हुअी रूढियोंके कारण — कअी विशेष दोष या विशेषताये पैदा हुअी है, अैसा स्त्रीजातिके बारेमे, पुरुषजातिके बारेमे और कुल मिलाकर सारी मानव-जातिके बारेमे भी कहा जा सकता है। यहा अिसका अेक ही अुदाहरण देता हू। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि मानव-जातिमे अपनी जातिके खिलाफ जितनी शत्रुता देखी जाती है, अुतनी दूसरी किसी योनिमें नही पाअी जाती। और अुसमे भी जितनी स्त्रीजातिमे होती है, अुतनी शायद पुरुपजातिमे नही होती। श्री नरसिंहभाअी पुस्तकके मगलाचरणमें कहते है कि वे २५ वर्षके हुअे तब तक "नारी-जातिके बारेमे कोअी अूची भावना (मुझमे) नही थी। आज रूढियोसे जड बने हुअे समस्त समाजमे स्त्रियोके लिअे जैसी हीन भावना फैली हुअी है, वैसी ही हीन भावना

मुझमे भी भरी थी।" मेरी अपनी भी यही हालत थी। अिसका अेक कारण हमारे वैराग्य-साहित्यमे की हुअी स्त्रीनिन्दा जरूर थी। लेकिन यह वैराग्य-साहित्य तो हमने बादमे सुना या पढा। अुसने यह संस्कार मुझ पर डाले अैसा कहनेकी अपेक्षा वे पहले दूसरी जगहसे मिले और बादमे वैराग्य-साहित्यने अुनका पोषण किया अैसा — मुझे लगता है — साधारण तौर पर मालूम होगा। और यह भी मालूम होगा कि अैसे संस्कार डालनेमे पुरुषके बजाय स्त्रीजातिके व्यवहार और सीखका ज्यादा हाथ होता है। अर्थात् गहराअीमें जानेसे पता चल सकता है कि स्त्रीजातिको तिरस्कार और अनादरकी दृष्टिसे देखना पुरुषोंके बजाय स्त्रिया ही ज्यादा सिखाती आअी है। सब जानते है कि कितनी ही स्त्रियो पर अुनके पति सास या ननदके सिखानेसे ही जुल्म ढाते है। अपने विरुद्ध जानेवाली पत्नीको सजा देकर सीधी न करनेवाले पतिको दूसरी स्त्रिया निकम्मा आदमी समझती है, और तटस्थ स्त्रिया भी अैसे मामलेमे दडनीतिका अुपयोग करनेकी सलाह देती पाअी जाती हैं। फिर भी मै यह नही मानता कि अपनी जातिसे शत्रुता रखना स्त्रीजातिका प्रकृतिगत गुण है। यह तो परिस्थितिका, गलत रूढियोका, गलत सामाजिक व्यवस्थाका और अुसकी जडमें रही गलत श्रद्धाओका नतीजा है। क्योकि अिनमे परिवर्तन होते ही स्वभावमें परिवर्तन होता है।

अत स्त्री-पुरुषका भेद दिखानेवाले ये गलत खयाल हमे छोड देने चाहिये। नर और नारीके बीच निश्चित भेद तो अेक ही मालूम होता है। वह है लगभग दस महीने तक सन्तानको अपने पेटमे आश्रय देनेकी और पैदा होनेके बाद लगभग अुतने ही समय तक अपने दूधसे अुसका पोषण करनेकी स्त्रीकी शक्तिका। यह भेद भी सारे प्राणियोमे नही पाया जाता। और जिन बडे प्राणियोमें यह भेद है, अुनमे भी — नरजातिमें पाये जानेवाले स्तनचिन्हो परसे — अैसा अनुमान हो सकता है कि यह भेद भी बादमे अुत्पन्न हुआ होगा। मूल स्थिति चाहे जो रही हो, परतु अिस विषयमे दो मत नही हो सकते कि आज स्तन्य प्राणियोमे नर-नारीके बीच यह निरपवाद भेद है।

परतु अिस भेदके कारण अेक दूसरी कल्पना या रूपक पैदा हुआ है, जो मेरे विचारसे गलत या अर्धसत्य है और जिसे छोड देना चाहिये। वह कल्पना पुरुषको क्षेत्रपति या बीजका स्वामी और स्त्रीको क्षेत्र माननेकी है। स्त्रीके पेटमे गर्भका पोषण होता है यह बात सच है, लेकिन अिससे यह कहना सर्वथा सही नही कि वह नरका क्षेत्र है। सच बात यह है कि नरकी जीवनशक्ति और नारीकी जीवन-शक्ति दोनो मिलकर सतति — अुस योनिके जीव — का रूप लेती है। नरकी जीवनशक्ति नारीकी जीवनशक्तिके बिना 'जीव' नही बनती, सिर्फ अेक तरहका जीवनकोष ही रहती है। अुसी तरह नारीकी जीवन-शक्ति नरकी जीवनशक्तिके बिना 'जीव' नही बनती। अेक योनिका जीव बननेके लिअे अुन दोनो शक्तियोको कही न कही किसी तरह मिल जाना पडता है। दोनोके मिलते ही 'जीव' बन जाता है। लेकिन अिस जीवको जीनेके लिअे सुविधा चाहिये। अुसकी अिस अत्यत निर्बल और सूक्ष्म अवस्थामे अुसे अुचित आश्रय और अुचित भोजन वगैरा मिलना चाहिये। मेंढक जैसे प्राणियोमे, जिनमे नर-मादाके शरीरसे बाहर जीव बनता है, पहलेसे ही माता-पितासे स्वतत्र रहकर अपना पोषण कर लेने और बढनेकी शक्ति होती है। अुनमे मादा गर्भ धारण नही करती। स्तन्य प्राणियोमे यह शक्ति नही होती। अुन्हें जीवित रखनेके लिअे ज्यादा सुविधाओकी जरूरत है। अूपर कहे अनुसार यह सुविधा कर देनेकी शक्ति नारीमे है। अिस तरह मनुष्य-जातिमे माता दस महीने तक सतानको अपने पेटमे पालती है, अिस कारणसे यह भले कहा जाय कि जीव बीज है और मा अुसका क्षेत्र है, परतु यह नही कहा जा सकता कि स्त्री पुरुषका या पुरुषके लिअे क्षेत्र है। खेतमे बीजको पोषण देनेकी शक्ति है; लेकिन अैसा नही है कि खेतकी जीवनशक्ति और बीजकी जीवनशक्ति मिलकर अेक वनस्पति-जीव बनता है। खेतके बिना भी बीज अुग सकता है और कुछ दिन तक जी सकता है; बादमे खुराकके बिना सूखकर मर जाय यह दूसरी बात है। पुरुषकी जीवनशक्ति अिस प्रकारकी नही है; वह स्त्रीकी जीवन-शक्तिके बिना जीव ही नही, बीज ही नही कही जा सकती।

फिर भी, स्त्रीको क्षेत्र और पुरुषको क्षेत्रपति माननेकी प्रथा पड गयी है, और बादमें अुस रूपकके आधार पर अनेक तरहके समाज-व्यवस्थाके नियम बने है। खेतके मालिक, खेत और फसलके बारेमे समाजके जो कुछ नियम होते है, वैसे ही नियम पिता, माता और सन्तानको लागू करनेकी कोशिशें हुअी है। यह गलत रूपक छोड दिया जाय तो अुसके आधार पर बने हुअे नियम और सस्कार अपने-आप निराधार बन जायेगे। अिस बारेमे यदि कोअी रूपक बनाया जा सके तो वह अैसा हो सकता है· माता-पिता सन्तानरूपी चिद्रत्नके ट्रस्टी है। अुनमे माता ट्रेजरर — सरक्षक — है और पिता व्यवस्थापक — मैनेजिग ट्रस्टी — है। केवल मानव-जातिमे ही नही, बल्कि दूसरे प्राणियोमे भी गर्भकालमे और जन्मके बाद कुछ समय तक पिता अिस तरह व्यवस्थापक ट्रस्टीका काम करके सरक्षक ट्रस्टीकी मदद करता है। वह रत्न किसका है यह पूछा जाय तो मै कहूगा कि अुसके पैदा करनेवाले और पोषण करनेवाले माता-पिता है, अिसलिअे माता-पिताको अुससे कुछ सुख, लाभ और मेहनताना पानेका अधिकार हो सकता है, लेकिन वह रत्न तो प्राणीसमाजका ही है। और अिससे भी आगे बढकर जिब्रानकी भाषामे कहू तो·

"तुम्हारे बालक तुम्हारे बालक नही है।

"लेकिन जगत्-जीवनकी अपने ही लिअे की गअी कामनाकी वे सन्तान है।

"वे तुम्हारे द्वारा आते है, लेकिन तुममे से नही आते,
और वे तुम्हारी बगलमे रहते है, फिर भी तुम्हारे नही है।"

तब यह क्षेत्र और क्षेत्रपतिकी कल्पना तो छोड ही देनी चाहिये। अब हम फिर मूल बात पर आते है।

हम नही जानते कि नर-जातिने अपने शरीर द्वारा सन्तानके धारण-पोषणकी शक्ति खो दी, या नारी-जातिने अुसे प्राप्त किया और अभ्याससे बढाया, अथवा (जू वगैरा जीवोकी तरह) सन्तानने अपनी कोशिशसे अेकके शरीरमे अपना घर जमा दिया और समय पाकर

अुसमे से आनुवशिक नर-नारीके भेद पैदा हुअे। अिस शक्तिभेदके कारण स्त्री और पुरुषकी शरीर-रचनामे भेद पैदा हुअे है यह हम जानते है। लेकिन स्त्रीकी गर्भधारणकी विशेष शक्तिकी तुलना कर सकनेवाली कौनसी विशेष शक्ति पुरुषजातिमें प्रगट हुअी है और अुसके बारेमे प्राणीशास्त्रियोकी क्या मान्यता है, यह मै नही जानता। वैसे तो अेक ही शक्ति पाअी जाती है। वह यह कि मा बालकको पेटमें आश्रय देकर वैठी हो या स्तनपान द्वारा अुसका पोषण करती हो, अुतने समय तक साधारण तौर पर अुसमे नये जीवन-कोषो (रज) का अुत्पादन वन्द रहता है। नर-जातिमे सन्तानके धारण-पोषणकी शक्ति ही न होनेसे अुसमे जीवन-कोषो (वीर्य)का अुत्पादन स्वभावत बन्द नही होता, वल्कि निरतर चालू रहता है।

आम तौर पर यह कहा जाता है कि दूसरे प्राणी अेक खास ऋतुमे ही विकारी होते हैं। स्थूल रूपमे यह भले ही कहा जा सके। परतु सूक्ष्म रूपमें यह भी अधूरा सत्य है। अनुकूलता मिलने पर पशु-पक्षियोंके नर भी सारी ऋतुओमे विकारी होते है। अर्थात् अिसमें अेक वात अनुकूल परिस्थितिकी भी है। मानव-जातिमे, खासकर सभ्य मानी जानेवाली जातियोमे और अुनमे भी अूचे और मध्यम वर्गोमें अैसी अनुकूलता बहुत मिलती है, और अिस स्थितिमे से पुरुष-जातिके कामविकारकी समस्या खडी होती है।

मानव-जातिकी आज यह स्थिति है। अुसमे से हमे कल्याणका रास्ता खोजना है। अिस प्रश्न पर अब हम विचार करें।

४

मनुष्य-पशु

आज विद्वानोमे विकासशास्त्रके वादोको कम-ज्यादा रूपमें मान्य रखकर मानव-समाजमे पैदा होनेवाली समस्याओ पर विचार करनेका लगभग सर्वसमत रिवाज हो गया है। सृष्टिके आरभसे ही अनेक योनियां है या अेक ही मूल योनिमे से आजकी अनेक योनिया अुत्पन्न हुअी है अिस वारेमे चाहे जो तर्क हो, लेकिन अिसमे कोअी शक नही कि सव योनियोंके कुछ समान स्वभाव है। यह वात हमारे देशके प्राचीन विचारकोंके ध्यानमे भी आ गअी थी। आहार, निद्रा, भय और मैथुन प्राणीमात्रमें समान है, अैसा कहनेवालेने यह अवलोकन कमसे कम स्थूल रूपमे तो किया ही था। विकासगास्त्रियोने अिस दिशामे वहुत सूक्ष्म निरीक्षण करके अिस अवलोकनको ज्यादा पूर्ण वनाया है।

लेकिन अैसी शका होती है कि अिस अवलोकन परसे विकास-वादियोकी विचारधारा अुलटे रास्ते चढ गअी है। मनुष्य पशुसे अूचे प्रकारका प्राणी है यह दावा गलत है, वह पशु ही है, और चाहे जितनी कोशिश करे तो भी अुसका पशु-स्वभाव कभी छूटनेवाला नही है। अैसा विचारनेवाला अेक वर्ग अिस निर्णय पर पहुचा मालूम होता है कि अिस कारणसे मनुष्यको अपने जीवनधर्म पशुके जीवनसे सीखने और निश्चित करने चाहियें। मनुष्यने धर्मके, नीतिके, रूढिके और अिसी तरहके दूसरे वधन खडे करके कअी तरहकी कृत्रिमताअें और झझटें पैदा कर ली है। अिनके फलस्वरूप मनुष्य-जातिने कोअी खास अुन्नति की हो अैसा लगता नही। अुलटे, अुसने व्यवहारकी स्वतत्रता खो वैठनेकी हानि ही अुठायी है। मानव-समाजका अधिकाश भाग जैसा दस हजार या वीस हजार वर्ष पहले कुत्तेकी तरह लडाकू, स्वार्थी, कामी, दगावाज और क्रूर या कुत्तेकी तरह ही भावुक, प्रेमल, वफादार और दयालु था, वैसेका वैसा ही आज तक रहा है। जो व्यक्ति अिससे विलकुल

निराले ढंगके विशेष अुच्च स्वभावके दिखाअी देते है, अुनकी सख्यामें वृद्धि हो रही हो अैसे कोअी चिन्ह दिखाअी नही देते। धर्म आदिके बन्धन बिलकुल न होते, तो भी अितने अपवादरूप व्यक्तियोका निर्माण होता ही रहता। अैसे लोगोंके स्वभावका झुकाव जन्मसे ही अिस प्रकारका होता होगा। धर्म आदिके सस्कारोके कारण वह अैसा हुआ होगा, यह माननेके लिअे कोअी प्रमाण नही है। अिस तरह धर्म, नीति आदिके वधनोके खिलाफ विद्रोह करनेका विचार पैदा हुआ है।

अूपरकी विचारधारासे अुलटे प्रकारकी लेकिन विकासवादके विचारसे ही पैदा हुअी अेक दूसरी विचारधाराका भी अैसा ही नतीजा आया है।

वह विचारधारा अैसी है: यह सच है कि मनुष्य भी पशु ही है, लेकिन बुद्धिका विशेष विकास होनेसे वह पशु-समाजसे बिलकुल अलग पड गया है। दूसरे प्राणी अपने जीवन-व्यवहारमे स्वतत्र नही है। प्रकृति जिस समय अुन्हे जैसी प्रेरणा करती है, अुस समय वे वैसा काम कर डालते है। वे पूरी तरह प्रकृतिके वशमे है। मनुष्य भी अन्त प्रकृतिके वशमे है। परतु बाह्य प्रकृतिका वह कुछ हद तक स्वामी बन गया है और अधिकाधिक बनता जाता है। अिसलिअे अुसके भोग सिर्फ प्रकृतिके वशमे रहनेवाले प्राणियोके जैसे और जितने ही नही है। अुसके भोगोकी सख्या, मात्रा, परपरा, सस्कारिता (तथा विकृति) — सब कुछ पशुओसे भिन्न और अधिक है। सिर्फ पेट भरने जितने ही अुसके खानपान नही है, सिर्फ सन्तान पैदा करनेके लिअे ही अुसका विषयभोग नही होता, सिर्फ शरीर या बच्चोकी रक्षाके लिअे ही अुसके कपडे-लत्ते और मकान नही होते। परन्तु खानपान, विषयभोग, घरबार आदिमे स्वतत्र रूपसे अुसे आनन्द आता है। अिसी कारणसे अिन सबके लिअे अुसकी दौडधूप और प्रवृत्ति बढी हुअी है।

लेकिन अैसा करते हुअे अुसके रास्तेमे मुश्किले भी बहुत आती है। अुसकी प्रवृत्तिया अुसे कअी तरहकी बीमारियो, झगडो और दुःखोमें फसा देती है। अिन बुराअियोसे बचनेके लिअे अुसे फिर नये अुपाय

खोजने पडते है — खोजने चाहिये। अुसका अब केवल ‘प्राकृत’ — कुदरती — प्राणी बना रहना असभव है। अुसकी अिस दशाको आप चाहे ‘कृत्रिम’ कहे, चाहे ‘सस्कृत’ अथवा ‘सभ्य’ कहें, लेकिन अुसके लिअे अव यह दशा बनाये रखनेके सिवा कोअी चारा ही नही है। ‘कृत्रिम’ कहकर नाराज होनेसे काम नही चलेगा। अिसलिअे अुसमे ‘सस्कृति’ या ‘सभ्यता’ मानकर अिस सस्कृति या सभ्यताको अधिकाधिक शुद्ध बनानेका ही प्रयत्न करते रहना चाहिये। क्योकि मनुष्य पशु हो तो भी वह वुद्धिमान पशु है। जिस तरह अूटकी गरदन और हाथीकी नाक खूब बढ गअी है, और अब अुनके छोटे होनेकी बहुत ज्यादा या निकट भविष्यमे कोअी आशा नही, अुसी तरह मनुष्यकी वुद्धि दूसरे अगोके मुकाबले बहुत बढ गअी है और अुसके घटनेकी आशा अूपर बताये हुअे प्राणियोसे भी कम है। क्योकि अुसे बढानेमे ही वह अपना कल्याण देखता है। अिसलिअे अुसका पुरुषार्थ अिसीमे है कि वह अिस बुद्धिका पूरा-पूरा अुपयोग करके अपने सुखोपभोग पशुसे ज्यादा बढावे और अुसके बुरे नतीजोसे बचनेके अुपाय खोजता रहे।

अिस तरह दो भिन्न दृष्टियोसे विचार करने पर भी दोनो विचारक अन्तमे अेक ही निर्णय पर पहुचते है। वह यह कि — मनुष्य अेक पशु है और पशु ही रहनेवाला है। अुसमे रही भोग आदिकी वृत्तिया कुदरतके नियमोंके अनुसार है, अिसलिअे अुन्हें धर्म आदिके वधनोसे रोकनेका प्रयत्न वेकार है। लेकिन मानव-पशु दूसरे पशुओसे बहुत ज्यादा आगे बढा हुआ प्राणी है, अिसलिअे अुसके जीवनके व्यवहार बहुत अटपटे और विविध प्रकारके बन गये है। अिससे बहुतसे विघ्न और समस्याअे खडी हुअी है। अिन विघ्नो और समस्याओका हल मिले और भोग सिद्ध हो, अिसके लिअे वुद्धिसे खोजे जा सकनेवाले सारे अुपाय काममे लेने चाहिये।

आधुनिक युरोपके विद्वान जीवनसे सबध रखनेवाले अनेक विषयोकी अिन मतोके आधार पर खोज कर रहे है। विवाह अिनमे से अेक है।

५

विवाहका पहला प्रयोजन

विकासवादी विचारकोंकी अैसी पुस्तकोको अूपर-अूपरसे पढ़ने पर अुनमे भूल नही खोजी जा सकती, और अुनमे अैसी दलीले देखनेमे आती है जिनसे अुनकी बातें हमारे गले अुतर जायं। यह कहना अन्याय होगा कि ये लेखक किसी दुष्ट हेतुसे प्रेरित होकर अैसी पुस्तके लिखते है। अिनमे से कुछ लेखक तो अिन विचारोंको सत्य मानकर और सत्यका प्रचार करना हमारा धर्म है अैसा समझकर ही ये विचार प्रगट करते है।

लेकिन मुझे अैसा लगता है कि अिन सब विचारोमे असल चीजको ही भुला दिया गया है। अिसलिअे पहले अुसका विचार कर लेना जरूरी है।

विकासशास्त्रमे मनुष्य-शरीर और पशु-शरीर तथा अिन दोनोकी जनन, मरण, क्षय, वृद्धि आदिसे सबध रखनेवाली क्रियाओके बीच तुलना करनेका अच्छा प्रयत्न किया गया है। अिन शारीरिक क्रियाओके होनेमे जो बुद्धितत्र — मस्तिष्ककी ज्ञानततु-व्यवस्था — स्थूल रूपसे काम करती है, और जो प्रेरणाओका अनुभव कराती है, अुसका भी अच्छा अध्ययन किया गया है। लेकिन मेरे खयालसे जिस महत्त्वकी वस्तु पर विकासशास्त्रमे विचार नही किया गया है, वह अिन दोनोसे परे और अधिक सूक्ष्म है। वह है विवेक और गुणोत्कर्पके रूपमे प्राणियोमे प्रगट होनेवाली भावना, जो मनुष्यके बुद्धिविकासके साथ अुसमे विशेष रूपसे प्रगट हुअी है। यह बात जरा स्पष्टतासे समझा दू।

सारे प्राणी ज्ञानवान है। वे जितना जानते है अुसका अुन्हे भान होता है। सब प्राणियोको अपने ज्ञानका अन्दाज होता है। वे कामवश होते है, तब कामको जानते है; क्रोधके वश होते है, तब क्रोधको जानते है; लोभके वश होते है, तब लोभको जानते है, भूखे-प्यासे

होते है, तब भूख-प्यासको जानते है। अिस बारेमें मनुष्य और अन्य प्राणियोके बीच बहुत भेद नही है। अिस तरह कहा जा सकता है कि सभी प्राणी ज्ञानी है। ज्ञानी होना मनुष्यकी ही विशेषता नही है।

लेकिन मनुष्यकी विशेषता यह है कि वह सिर्फ ज्ञानी ही नही, बल्कि अज्ञानी भी है। अर्थात् वह केवल अपने ज्ञानका ही साक्षी — जानकार — नही, बल्कि अपने अज्ञानका भी साक्षी होता है। दूसरा प्राणी जो कुछ जानता है, अुसका भान तो अुसे होता है; लेकिन जो वह नही जानता, अुसके बारेमे अैसा जानता मालूम नही होता कि 'मै यह नही जानता'। अुदाहरणके लिअे, वह पानीको देखता है, जानता है और पीता है। लेकिन पानी क्या पदार्थ है, यह जानता नहीं मालूम होता। अितना ही नही, अैसा भी नही लगता कि पानीके विषयमे अपने अिस अज्ञानका अुसे भान हो। अुसी तरह वह पानीको जानता है, परतु शराबको नही जानता, और वह शराबको नही जानता अैसा भी अुसे मालूम नही है। शराब जैसी किसी चीजका अुसके लिअे अस्तित्व ही नही है। यही बात अुसके दूसरे अज्ञानोंके बारेमे है।

मनुष्यमे यह शक्ति विशेष है। वह अपने अज्ञानको जानता है, अितना ही नही बल्कि ज्यो-ज्यो अुसका ज्ञान बढता है, त्यो-त्यो अुसे अपने अज्ञानका माप भी अधिक स्पष्ट होता जाता है। साक्रेटीज़के कहे अनुसार ज्ञानी होनेका अर्थ अज्ञानका स्पष्ट माप पा लेना है। ज्ञानी होनेका अर्थ अज्ञान-सागरकी अेक बूद कम करनेसे अधिक कुछ नही है।

अिसी तरह जब प्राणी काम, क्रोध या लोभके वश होता है, तब अपनी अिस स्थितिको वह जानता है और अुसके अनुसार काम कर डालता है। लेकिन जब वह कामवश नही होता, तब अैसा नही मालूम होता कि अुसे अिस बातका ज्ञान हो कि वह निष्काम है और अुसकी यह स्थिति किस प्रकारकी है। अिसी तरह अक्रोध, निर्लोभ, आदि स्थितिमें रहना क्या होता है, अिसका भी अुसे ज्ञान नही होता। योगसूत्रोकी परिभाषामे कहे तो वह केवल 'वृत्तिकी सारूप्य अवस्था' को ही जानता है।

मनुष्यका अैसा नही है। वह जिस तरह अपनी विकारी स्थितिको जानता है, अुसी प्रकार अुसे अपनी निर्विकार स्थितिका भी खयाल होता है — वह निदान कर सकता है। दोनो स्थितियोके सुख-दु ख, प्रसाद-विषादको वह जानता है। अिस कारण यद्यपि दूसरे प्राणियोकी तरह ही अुसका भी विकारवश होनेका स्वभाव है, फिर भी वह केवल अुसके अनुसार काम करके और अुस समयके सुख-दु.खको भोगकर मुक्त नही हो जाता — नही हो सकता। अुसे अुसके बादकी और अुसके अभावकी स्थितिके प्रसाद और विषादका स्मरण रहता है।

चित्तका यह विशिष्ट प्रकारका विकास है। अिसीको विवेक कहते है। अैसा विवेक अन्य प्राणियोमे भी कुछ हद तक होगा, किन्तु यह माननेमें कोअी हर्ज नही कि मनुष्य जितना नही होगा।

अिस तरह अपने अज्ञान, अकाम (कामविकार-रहित स्थिति), अक्रोध आदिका ज्ञान होनेके कारण मानवचित्तका स्वभाव ही अैसा वना होता है कि वह अज्ञानसे ज्ञानकी ओर, रागसे विरागकी ओर और विवशतासे अीश्वरता (प्रभुता) की ओर जानेका प्रयत्न किया करता है।

अैसा वह केवल धर्म या नीतिके किसी सस्कारके कारण ही नही करता। परतु जिस तरह प्रकाशकी तरफ झुकना वनस्पतिकी प्रकृति ही है, सहज स्वभाव है, अुसी तरह यह मनुष्यकी प्रकृति ही है। अैसा किये विना वह रही नही सकता।

यह स्वभाव ही धर्मकी अुत्पत्तिका मूल कारण है। सारे प्रचलित धर्मशास्त्रो और नीतिशास्त्रोको जला डाले और सारे वालकोका किसी भी तरहके धार्मिक सस्कारोके विना पालन-पोषण करनेकी व्यवस्था करे, तो भी धीरे-धीरे अुनमे धर्म और अधर्मके, नीति और अनीतिके नियम पैदा होगे ही। अिसी कारणसे साख्यशास्त्री कहते है कि अधर्मसे धर्ममे जानेका गुण चित्तके मूल स्वभावमें ही विद्यमान है। यह स्वभाव छूट नही सकता।

विवाह-धर्मकी जड चित्तके अिस स्वभावमे है। अिस दृष्टिसे मैं विवाहकी अेक व्याख्या यह सुझाता हू : कामवश होनेकी स्थितिसे

निष्काम स्थितिमे या कामसे स्वाधीन रहनेकी स्थितिमें कैसे जाया जाय, अिस विचारसे पैदा हुअी स्त्री-पुरुष-भोगकी व्यवस्था ही विवाह है। जो विवाह-प्रथा अिस परिणामको ध्यानमे रखकर कायम की गअी है वह शुद्ध है; दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है। अिस अुद्देश्यसे विवाहकी प्रथामे जो सुधार हो वे शुद्ध है, दूसरे अशुद्ध या कम शुद्ध है।

विवाहके पीछे रहा यह अेक विचार हुआ।

६

विवाहका दूसरा प्रयोजन

अब अेक दूसरी दृष्टिसे विवाहके बारेमे सोचे। काम, क्रोध, लोभ आदिको हम विकार कहते है। वे विकार कहे जाते है क्योकि वे प्राणीको परवश जैसा कर डालते है। अिनसे प्रेरित होनेवाला प्राणी पागलकी तरह काम करता है। वह स्वय विकृत — बेढगा बनता है, या अुसकी क्रिया विकृत — बेढगी बनती है। लेकिन अिस विकृत दशामे प्रगट होनेवाले रूप ही चित्तके अलग-अलग रूप नही है। वे तो अुसकी अव्यवस्थित निकृष्ट दशाको बतानेवाले है। अिस अव्यवस्था और निकृष्ट दशासे चित्त व्यवस्था और अुत्कृष्ट दशाकी तरफ जाता है। काम अहैतुकी भक्ति (=प्रेम) में, क्रोध तेजमें और लोभ सर्वोदयके लिअे किये जानेवाले प्रयत्नमें बदल जाता है।

काम, क्रोध आदि विकारोका अिस तरहका अुत्कर्ष कुछ हद तक अन्य प्राणियोमें भी देखा जाता है। मनुष्यमे यह अुत्कर्ष ज्यादा शुद्ध मात्रामे हो सकता है, और बार-बार हुआ है।

अिस तरहसे हम काम, क्रोध, लोभ आदिका विचार करें, तो मालूम होगा कि हरअेक गुणमे दो दो धर्म होते है। हमे विवाहके सबधमें कामका ही विचार करना है, अिसलिअे यहा कामके ही अिन दो धर्मोकी जाच करेंगे।

प्राणीमे संयोगकी अिच्छा और क्रिया अुत्पन्न करनेवाला बल कामका अेक धर्म है। और प्रेमकी भावना या गुणके रूपमे बदलना कामका दूसरा धर्म है। कामवश होनेकी स्थितिसे निष्काम स्थिति या कामसे स्वाधीन रहनेकी स्थितिमे जाना — अिस तरहकी निर्विकारिता सिद्ध होना — चित्तके अुत्कर्षका अेक पहलू है, और कामवश प्रेमसे अहैतुकी भक्तिमे चित्तकी भावनाका बदलना चित्तके अुत्कर्षका दूसरा पहलू है।

अिस दूसरी दृष्टिसे देखे तो विवाह प्रेमके अुत्कर्षके अनेक साधनोमे से अेक है। लेकिन यह अेक ही साधन है, अैसा नही कहा जा सकता। माता-पिता, बालक, कुटुम्बी-जन, मित्र, गुरु, देव और पशु भी अिस भावनाका अुत्कर्ष करनेमे साधन बनते है। लेकिन युवावस्थामे आनेके बाद बहुतसे लोगोंके लिअे विवाह और विवाहके फलस्वरूप होनेवाली कुटुम्बवृद्धिके द्वारा ही अिस भावनाका अुत्कर्ष हो सकता है, या अुसके बिना अिसका अुत्कर्ष नही हो सकता। अिससे विवाह अुनके लिअे अेक अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है। विवाहके अिस साधनकी आवश्यकता होने पर भी जो किसी कारणसे अिसके — यानी अिसकी शुद्ध प्रथाके — अनुसार स्त्री-पुरुष-संबंध नही कायम कर सकते, अुनमे प्रेमभावनाका अुत्कर्ष नही होता; अितना ही नही वह विकृत रूप धारण कर लेती है और कअी तरहकी शारीरिक और मानसिक दुर्दशाका कारण बनती है।

अिस परसे विवाहकी दूसरी व्याख्या यह की जा सकती है: कामके पीछे रही अव्यवस्थित और निकृष्ट प्रेमभावनाको सुव्यवस्थित और अुत्कृष्ट अहैतुकी भक्तिमे बदलनेके विचारसे पैदा हुअी पति-पत्नी-व्यवस्था और व्यवहार ही विवाह है। जिस लग्नप्रथाका आयोजन अिस परिणामको ध्यानमे रखकर किया गया हो वह शुद्ध है; दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है। अिस ध्येयसे लग्नकी प्रथामे जो सुधार हों वे शुद्ध है, दूसरे अशुद्ध या कम शुद्ध है।

७

विवाहका तीसरा प्रयोजन

अब अेक तीसरी दृष्टिसे विवाहका विचार करें।

मैंने अूपर कहा है कि चित्तकी अशुद्ध प्रेमभावनाका अहैतुकी भक्तिमे बदलना अुसके अुत्कर्षका अेक अग है।

पति-पत्नी, मातापिता-बालक, भाअी-बहन, भाअी-भाअी, मित्र-मित्र, गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक, देव-भक्त, मालिक-पशु आदि जोडोमें कोअी भी स्वार्थ या आशा न रही हो, तो भी अहैतुकी भक्ति हो सकती है। और अैसे अुत्कृष्ट प्रेमके अुदाहरण बार-बार देखनेको मिल जाते है। प्राणियोमे भी अिस तरहका चित्तका अुत्कर्ष हुआ पाया जाता है। परन्तु बार-बार देखनेमें आने पर भी यह नही कहा जा सकता कि ये अुदाहरण बहुत साधारण है। अिसलिअे, जब-जब अैसे अुत्कृष्ट प्रेमके अुदाहरण देखनेमे आते है, तब जो लोग स्वय अैसी स्थितिका अनुभव नही कर सकते अुन्हे भी अैसे जोडोका सबध आदर्श लगता है, और अिनके लिअे वे आदर दिखाये बिना नही रह सकते। अिस परसे यह मालूम होता है कि चित्तका स्वभाव कहा पहुचनेका है।

परतु यह अुत्कर्षकी चरम सीमा है, अैसा नही कहा जा सकता। यदि अिस अहैतुकी भक्तिका क्षेत्र अपने जोडीदार तक ही फैलकर रह जाय और ये दोनो, दो ढालवाले झोपडेकी तरह, केवल अेक-दूसरेको ही सहारा देनेवाले और अेक-दूसरेके ही सहारे जीनेवाले बनकर रहें, तो यह स्थिति आदरणीय होते हुअे भी दयनीय बन सकती है, और कही-कही अनिष्ट भी मानी जा सकती है। जयदेव-पद्मावतीकी कथा काव्यमें शोभा पा सकती है। अुसे आदर्श नही मानना चाहिये।

आत्मा आलम्बनरहित और व्यापक है। वह सबका आधार है, पर स्वय किसीके आधार पर टिकी हुअी नही है। वह सकुचित घेरेमें बन्द नही, बल्कि सब जगह समान भावसे बसी हुअी है।

चित्तका मनोरथ अिस स्थितिको पहुचनेका है। अिसलिअे यह महत्त्वकी चीज है कि जो अहैतुकी भक्ति-वह अेक जगह सिद्ध करे वही सब जगह व्याप्त हो, और मनुष्य अपने साथीके विनाशी स्वभावको पहचानकर स्थूल रूपमे अुस पर आधार रखकर न जीये। स्थूल रूपमे साथीसे विछुडनेकी सभावना सदा बनी ही रहती है। 'बहुत ज्यादा भक्ति होने पर भी साथीके स्थूल वियोगको सहनेकी अुसमे शक्ति होनी या आनी चाहिये।

अिसलिअे, विवाह मनुष्यको अुसकी प्रेमकी भावनाको सकुचित क्षेत्रसे व्यापक क्षेत्रमें फैलानेकी शिक्षा देनेवाला होना चाहिये। अल्पसे महानकी ओर ले जानेवाले साधनके रूपमे अुसका विचार होना चाहिये। लग्नकी जिस प्रथामे अैसा करनेकी शक्ति हो वह शुद्ध है, दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है।

८

विवाहका चौथा प्रयोजन

और भी अेक दूसरी दृष्टिसे विवाहका विचार करें।

स्त्री और पुरुषके सयोगका कुदरती परिणाम प्रजावृद्धि है।

सयोग होते हुअे भी प्रजावृद्धि न हो, तो अिसमे कुदरतके नियमकी निष्फलता है। क्योकि सयोगका जो परिणाम आना चाहिये, वह नही आया। धरतीमे वीज वोने पर भी वह न अुगे, तो कहा जायगा कि कुदरत असफल रही।

यह निष्फलता चाहे जिस कारणसे हो, लेकिन जैसे निष्फल गया हुआ वीज सुझाता है कि कही तो भी दोष है, अुसी तरह यह निष्फलता भी सुझाती है कि कही न कही दोप जरूर है। सयोगकी अिच्छा होते हुअे भी प्रजाकी अनिच्छा—यह वीज वोनेकी अिच्छा होते हुअे भी अुसके न अुगनेकी अिच्छा करने जैसा है।

लेकिन अिस प्रजावृद्धिका अर्थ क्या? कुदरतकी दृष्टिसे देखें तो यह अुसकी विकासकी साधना है। विकासवादी जिस अुत्क्रांतिका नियम ससारमें देखते है, अुस नियमकी सिद्धिके लिअे सारे प्राणियोमे प्रजाकी वृद्धि होना अनिवार्य है। जो प्राणी निर्वंश होकर मर गये, अुनका विकास हुआ या ह्रास, यह कुदरतकी दृष्टिसे कहना सभव ही नही। जिनका वश चलता है, अुन्हीके द्वारा कुदरतकी प्राप्त की हुअी विकास-वृद्धि प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। यह विकासकी शृखला हजारो कडियोकी बनी होती है, और अेक-अेक कडीकी रचना प्रजाकी सैकडो पीढियो द्वारा की जाती है। अितनी धीमी यह प्रगति है। प्रकृतिवादीकी रायमें तो अिसमें प्रकृति अपनी अितनी ज्यादा शक्ति खर्च करती है कि अेक प्राणी पैदा हो और पूर्णावस्थाको पहुचकर मरे, यह करोडो प्राणियोंके जगतमें होते हुअे भी प्रकृतिके लिअे अनोखे सौभाग्यकी बात ही मानी जा सकती है। क्योकि जितने प्राणी पूर्णावस्थाको पहुचते है, अुनसे हजारो गुने प्राणी मानो बेकार ही पैदा हुअे हो अिस तरह निष्फल चले जाते हैं।

अिस बारेमें 'अूधअीनु जीवन' (दीमकका जीवन) नामक गुजराती पुस्तकमे मैंने कुछ विचार पेश किये हैं। अुन विचारोमे कोअी परिवर्तन करने जैसा आज भी मुझे नही लगता। अुसमे से कुछ हिस्से मनुष्य-जातिके सबधमें थोडे वाक्य जोडकर यहा देता हू:

"... क्या यह प्रकृतिकी जडता होगी? क्या अैसा होगा कि वश-वृद्धिके लिअे जिस प्रकारकी शक्तिकी आवश्यकता है, वह शक्ति पैदा होते होते मूल हेतु सिद्ध होनेके लिअे जितनी आवश्यक हो (या मनुष्य-जातिमें अुसके लिअे सुविधारूप हो) अुससे अनेक गुनी अधिक मात्रामे शक्ति पैदा हो जाती है, और बादमें व्यर्थ बरबाद हो जाती है या नष्ट हो जाती है (या असुविधारूप बन जाती है)? या अिसके पीछे कोअी दूसरा हेतु रहा होगा? क्या अैसा नही हो सकता कि अिस शक्तिका मुख्य कार्य दूसरा ही हो और वशवृद्धि अिसका अेक अतिरिक्त, गौण और अनायास पैदा होनेवाला परिणाम ही हो?

"मुझे अैसा ही सभव लगता है। जीवमात्रमे रही वंश वढानेकी शक्ति — जिसके फलस्वरूप नर-मादाके भेद और कामादि विकारोका निर्माण होता है — अिस शक्तिका मुख्य कार्य नही, वल्कि गौण अतिरिक्त परिणाम ही होगा अैसा मुझे लगता है।

"जिस तरह वहुत वडे विस्तारमे फैली हुअी भाप अुचित साधनो द्वारा गाढी वन जाती है और अजलीभर पानीमे वदल जाती है, जिस तरह चारो ओर फैल जानेका स्वभाव रखनेवाली विजलीकी गक्ति मशीनो और तारोंके जरिये अिकट्ठी होकर अेक छोटेसे दियेको जलानेवाली वन जाती है; अुसी तरह मुझे लगता है कि व्यक्त या दृश्य ससार अपनेसे करोडो गुने अधिक विस्तारमे फैली हुअी अनत प्रकाशकी अव्यक्त या अदृश्य गक्तियोका अेक ठोस रूप है। .. (फिर) जिस तरह घर पर चढाया हुआ तार वादलमे रही विजलीको खीच लेनेका साधन वनता है . अुसी तरह अलग-अलग जातिके जीव (विश्वमे फैली हुअी अनेक) शक्तियोको खीचकर अुन्हे अिकट्ठी करने, अुनमे कुछ परिवर्तन करने और अुन्हे प्रगट करनेके यत्र, साधन या निमित्त है। और वे यत्र स्वय भी . . अनेक तरहकी अव्यक्त गक्तियोका सुविधापूर्ण, ठोस, व्यक्त रूप ही है।

"फिर . (विश्वके अनेक तत्त्वोकी) विविध प्रमाणमे और विविध प्रकारकी रचना होनेके लिअे वनस्पति और प्राणियोके गरीरमे अद्‌भुत सामग्री होती है। . . अैसा कहे तो भी चल सकता है कि (तत्त्वोकी नअी) नअी रचना करनेके लिअे जीव अलग-अलग रासायनिक कारखाने है।

"संसारके जीव अदृश्य शक्तियोंके दृश्य रूप है, अलग-अलग शक्तियोका अनेक तरहसे समन्वय करके नये प्रकारकी शक्तिया — 'माल' — तैयार करनेके कारखाने भी हैं। और अिस नये मालके भंडार भी हैं। अिस तरह जीवका तीन प्रकारका स्वरूप होनेके कारण यह हो सकता है कि अेक जीवरूपी

भंडारमे वना हुआ और अिकट्ठा हुआ माल जव दूसरी तरहका माल पैदा करनेके लिअे अुपयोगमे आवे, तब वह कारखाना और भंडार — अथवा सारा शरीर — नष्ट हो जाय। फिर, ये कारखाने और भंडार घिसाअी, टूट-फूट या कअी तरहकी दुर्घटनाओसे भी नष्ट हो जाते है। अैसा होते रहनेके कारण कुदरतने अैसे कारखानोकी परम्परा जारी रखनेकी योजना जीवोमे ही वना रखी है। माल पैदा करनेके लिअे और कारखाने तथा भंडारके अच्छी स्थितिमें जारी रहनेके लिअे जो मुख्य शक्ति जीवोंके शरीरमे काम करती है, अुसे हम अुन जीवोकी प्राण-शक्ति, वीर्यशक्ति या जीवनशक्ति कहेगे। अिस जीवनशक्तिमें ही अपने जैसे दूसरे कारखाने पैदा करनेकी शक्ति भी रखी गअी मालूम होती है।

"यह तो मानो हमने केवल स्थूल दृष्टिसे ही जीवोका विचार किया। लेकिन अव्यक्त ब्रह्माडमे कअी वासनाये, गुण, विचार, कल्पनाये आदि भी रहते मालूम होते है। हमारे हृदयमे जो विचार, तरगे, अिच्छाये आदि अुठते है, सभव है वे हमारे ही हृदयमें पैदा न होते हो, वल्कि वातावरणमे अदृश्य रूपमे विद्यमान रहते हो और हमारी मस्तिष्करूपी मशीनके जरिये (रेडियोके जरिये पकडी जानेवाली आवाजकी तरगोकी तरह) पकडे जाकर अुसमे आते हो, शायद पकडे जानेके बाद अुनका कोअी रूपान्तर भी होता हो और वे क्रियावान वनते हो, और हमे अुनका केवल दर्शन या भान ही होता हो। अिस तरह जीव अिस प्रकारकी अव्यक्त शक्तियोको भी प्रगट करनेके साधन बनते मालूम होते है। क्या अैसा नही हो सकता कि जीवकी वीर्यशक्ति या जीवनशक्तिका मुख्य अुद्देश्य शरीरको अिस कार्यके लिअे तेजस्वी बनाये रखना हो और गौण अुद्देश्य अैसे दूसरे जीव निर्माण करना हो?

"यदि ये विचार ठीक हो, तो जीवकी जीवनशक्तिका मुख्य अुद्देश्य किसी प्रकारकी भौतिक या आध्यात्मिक अव्यक्त शक्तिको

व्यक्त करनेका, किसी तरहका नया भौतिक या आध्यात्मिक माल तैयार करनेका, अुसका भडार बननेका और अन्तमें भंडारके रूपमे कोअी दूसरी तरहका माल तैयार करनेमे कच्चे माल या आधे तैयार मालकी तरह खप जानेका है। अितना होनेमें ही अिस जीवको अुत्पन्न करनेका या अुत्पन्न होने देनेका प्रकृतिका अुद्देश्य पूरा हो जाता है। लेकिन अिसके साथ ही अिस कार्यको हमेशा जारी रखनेके लिअे प्रकृति अिस शक्तिका वशवृद्धिके लिअे भी अुपयोग करती मालूम होती है।"

अिस दृष्टिसे देखे तो जीवोको अुत्पन्न करनेमे प्रकृतिका हेतु अपनेमे अव्यक्त रूपसे रही हुअी अनेक तरहकी भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियोको प्रगट करना, अुनके जरिये नये प्रकारके भौतिक और आध्यात्मिक रूप सिद्ध करना (अर्थात् क्रमश अपना विकास करना), अिन विविध रूपोके भडारकी तरह अुनका अुपयोग करना, फिर कोअी दूसरी तरहके रूप निर्माण करनेमे अिन भडारोंका कच्चे माल या आधे तैयार मालकी तरह अुपयोग कर डालना और अन्तमे अिस कार्यको सदा जारी रखनेके लिअे वशपरम्परा द्वारा अुन जीवोकी परम्परा जारी रखना मालूम होता है। जो विवाह-प्रथा प्रकृतिके अिस हेतुको अुत्तम प्रकारसे सफल बनानेवाली हो वह शुद्ध है; दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है।

९

विवाहका पांचवां प्रयोजन

फिर भी अिस विचार पर आनेमे हमने केवल जड प्रकृतिवादीकी ही दृष्टि अपने सामने रखी है। अिससे आगे बढकर हम अब चैतन्य-दृष्टिसे अिस प्रश्नका विचार करे।

कामविकार जैसा अनुभव किसलिअे होता होगा? वंशवृद्धिकी प्रेरणा, अभिलाषा भी क्यो होती है? अिस विकार पर विजय पानेमे कठिनाअी क्यो होती है? प्रकृतिवादीने तो कह दिया कि यह प्रकृतिका अपना विकास करनेके लिअे अपनाया हुआ मार्ग है। लेकिन जड प्रकृतिको विकासकी अिच्छा भला कैसे हो सकती है? अुसकी सिद्धि भी किसलिअे?

अिसका विचार करने पर मुझे अैसा मालूम हुआ है

प्राणियोके भीतर रहे काम (= वासना, अिच्छा, कुछ जानने, पाने या सिद्ध करनेकी अभिलाषा) और अुनके भीतर रहा काम (विकार) दो अलग-अलग नही है। जब तक किसी प्राणीमें कोअी भी काम यानी वासना है, तब तक अुसमे कामविकारका बीज रहेगा ही। प्राणी जीवनमे अपनी अनेक तरहकी कामनायें पूरी करनेका प्रयत्न करते है। लेकिन सारी कामनाये तो जीवनमे पूरी नही कर सकते। अैसा नही होता कि जिन्हे वे पूरा नही कर पाते, अुन्हे छोड देते है या वे छूट जाती है। जिन्हे वे स्वय तत्काल पूरा नही कर सकते और पूरी न हो तब तक मनमे भी पचाकर नही रख सकते, अुन कामनाओका प्राणियोंके शरीर पर होनेवाला अेक परिणाम कामविकार है। तब कामविकारका अर्थ है पूरी न हुअी वासनाओसे अुत्पन्न होनेवाली अुत्तेजना। अिसमें से और अिसीलिअे सन्तानकी अभिलाषा पैदा होती है। प्राणियोमे सन्तानकी अभिलाषा विना कारण ही पैदा नही होती। बल्कि जिन वासनाओको वे स्वय पूरा नही कर सकते, अुन्हे सतानके द्वारा पूरा करनेकी अभिलाषा रखते है। माता-पिताकी अिस अिच्छाको कौन नही जानता कि जो काम वे स्वय पूरा न कर

सके, अुसे अुनकी सतान पूरा करे ? जान या अनजानमे माता-पिताके मनमे यह वात रहती है कि हमारी सन्तान हमारी वासनाओकी जीती-जागती अमानत है, अुनका बीज या वृक्ष है। अुसके जरिये माता-पिता स्थूल रूपमे नही तो वासनारूपमे तो जीते ही है।

अिस तरह, जब तक किसी जीवको अपने विषयमे कोअी न कोअी अपूर्णता मालूम होती है, कुछ न कुछ जानना या पाना रहता है और अिस अर्थमे जब तक वह सकाम है, तब तक अुसे कामविकारका अनुभव होनेकी सभावना रहती है। हो सकता है कि अिस विकारको वह दवा दे, अुस पर अितना काबू पा ले कि अुसके शरीर या मन पर अुसका जोर न चले, अुसे भीतर ही भीतर पचा दे और अिस तरह सन्तान द्वारा नही बल्कि अपने जीवनकालमे ही, अथवा (सभव हो तो) मरनेके बाद भी अपनी जानने-पानेकी अिच्छा पूरी करनेकी शक्ति बढावे और अुसका सग्रह करे। लेकिन जब तक जीवनके बारेमे दूसरी अपूर्णता है, तब तक कामविकारकी सभावना भी रहने ही वाली है।

अिस तरह कामविकारको थोडे-बहुत अश तक अन्दर ही अन्दर पचा सकनेवाले कुछ मनुष्य होते है, जो सन्तानके बदले शिष्योमे अपनी वासनाओका आरोपण करते भी देखे जाते है। विकारके जरिये स्थूल शरीरका निर्माण करनेमे काम आनेवाली शक्ति, अुसका अच्छी तरह निरोध होनेके फलस्वरूप, दूसरोकी संतानको अपनी वासनाओंके आरोपणके लिअे अपनी सन्तान बना लेनेकी कम-ज्यादा शक्ति प्राप्त कर लेती है। यह शक्ति भी पीढियो तक चलती देखी जाती है, और कअी बार पेटकी सन्तान पर आरोपित शक्तिसे अधिक बलवान भी होती है। अिस तरह वासनायुक्त मनुष्योके लिअे कामविकारकी विजय भी दूसरे प्रकारसे वीर्यवान बनती है, ताकि अुनकी वासनायें अुनके जीवनकालमे नही तो भविष्यमें अिस जगतमे पूरी हो।

मनुष्य यदि अिस दृष्टिसे अपने कामविकारको देखे, तो वह केवल युवावस्थाका अेक वेग, रोग, अुत्तेजना या विजातिके प्रति होनेवाला आकर्षण समझकर अथवा स्वतंत्र रूपसे अुसका विचार नही करेगा।

वल्कि अपने जीवनकी सारी वासनाओ और अभिलाषाओंके बिखर जानेकी सभावनाका चिह्न मानकर अुसका विचार करेगा। जिन वासनाओको सिद्ध करनेका मनुष्य प्रयत्न करता है, परन्तु अभी तक सिद्ध नही कर सका और जिन्हे सिद्ध करनेकी अिच्छा अुसमे खूब खलबली मचा रही है, अुनकी सिद्धिके लिअे मचनेवाली खलबलीका अेक चिह्न अुसमे दिखाअी देनेवाला कामविकार है। अपनी अनेक प्रकारकी भावनाओको पूरा करनेके लिअे मचनेवाली अिस खलबलीको यदि मनुष्य धीरजसे वशमे न रख सके, धीरे-धीरे अुन्हे सिद्ध करनेके पुरुषार्थमे लगे रहनेके सिवा दूसरी तरह दिमाग खो न बैठना चाहिये — अैसा सोचकर यदि वह अपनी वासनाओको पचाकर न रख सके, तो सभव है वह अपने कामविकारको भी वशमे नही रख सकेगा। कामविकारको वशमे न रखा जा सके, तो या तो वह सन्तति अुत्पन्न करनेमें अुपयोगी हो सकता है, या दूसरी तरह नष्ट हो सकता है। दोनोका तात्कालिक परिणाम तो यही होगा कि मनुष्यका अपनी अिच्छाओको स्वय पूरा करनेका पुरुषार्थ और सकल्प थोडा — अुस समयके लिअे — कमजोर पड जायगा। यदि अुसका कामविकार अुचित तरीकेसे सन्तान अुत्पन्न करनेमे अुपयोगी हो, तो अितना फर्क पडेगा कि अुसका बीज — अुसकी आशा — सुरक्षित रह सकती है।

लेकिन मनुष्यकी वासनाये भी कअी तरहकी होती हे। कुछ क्षणिक और बिलकुल व्यक्तिगत लाभसे सम्बन्ध रखनेवाली, कुछ दीर्घकालिक और सामाजिक। व्यक्तिगत लाभसे सम्बन्ध रखनेवाली वासनायें भी दीर्घकालिक हो सकती हे; और सामाजिक वासनाये भी क्षणिक हो सकती हे। खाने-पीनेकी वासनायें क्षणिक व्यक्तिगत वासनाये कही जा सकती हे। धन, विद्या, कीर्ति आदिकी वासनायें दीर्घकालिक व्यक्तिगत वासनाये कही जा सकती हे। अेकाध नजदीकके सामाजिक कार्यक्रमको सिद्ध करनेकी अिच्छा (अुदाहरणके लिअे, चुनावमें अपने पक्षके अुम्मीदवारको यश दिलानेकी अिच्छा) सामाजिक क्षणिक वासनाका अुदाहरण माना जा सकता है। किसी खास तरहकी

समाज-रचना करनेकी अभिलाषा दीर्घकालिक सामाजिक वासना कही जा सकती है। कुछ वासनाओमे व्यक्तिगत और सामाजिक भावोंका मिश्रण भी होता है। कोअी क्षणिक और व्यक्तिगत होते हुअे भी पवित्र हो सकती है; कोअी दीर्घकालिक और सामाजिक होते हुअे भी क्षुद्र या तुच्छ हो सकती है।

जब मनुष्य यह सोचता है कि अुसकी अमुक वासनाये अैसी दीर्घकालिक है कि अुसके अपने जीवनमे खुदके ही पुरुषार्थसे पूरी तरह सिद्ध नही की जा सकती, बल्कि पीढी दर पीढी तक चलनेवाली है और चलनी चाहियें; अुसी तरह जब मनुष्य यह सोचता है कि अुसने अपने कामविकारको लम्बे समय तक वशमें रखकर अपनी अमुक वासनाओको सिद्ध करनेका काफी प्रयत्न किया लेकिन वे अभी तक सिद्ध नही हुअी है, और अब खुद अुसके हाथो अुनके सिद्ध होनेकी आशा कम होती जाती है, अथवा अिसके साथ ही जब अुसे सन्तानके मारफत अिन वासनाओको जगतमे छोड़ जानेकी भी प्रेरणा होती है या अैसा करना कर्तव्यरूप मालूम होता है, तब धार्मिक मार्गसे सन्तान पैदा करनेका काम अेक शुद्ध और पवित्र कर्म (और यज्ञकर्म भी) हो सकता है। जो लग्नप्रथा अिस दृष्टिसे विचारी गअी हो, वह शुद्ध है, दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है।

अिन सारी दृष्टियोको फिरसे अेक साथ यहा रख दू।

जो लग्नप्रथा नीचेकी बातें पूरी करनेकी अनुकूलता पैदा करे, वह शुद्ध है; दूसरी सब अशुद्ध या कम शुद्ध है ·

कामवशतामे से निष्कामता या कामस्वाधीनताकी तरफ ले जाना;

कामके पीछे रही अव्यवस्थित और निकृष्ट प्रेम-भावनाका सुव्यवस्थित और अुत्कृष्ट अहैतुकी भक्तिमें रूपान्तर करना;

मनुष्यकी प्रेमकी भावनाको सकुचित क्षेत्रसे व्यापक क्षेत्रमें फैलानेकी शिक्षा देना, अुसे अल्पमे से महानके प्रति ले जाना;

प्रकृतिका हेतु सिद्ध करना : वह हेतु है अपनेमे (प्रकृतिमें) रही अलग-अलग तरहकी भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियोको प्रकट करनेका, अुन शक्तियो द्वारा नये प्रकारके भौतिक और आध्यात्मिक

रूप सिद्ध करनेका (अर्थात् अपना क्रमशः विकास करनेका), अिन विविध रूपोके भडारके रूपमे अुनका अुपयोग करनेका, फिर कोअी दूसरी तरहके रूपोका निर्माण करनेमे अुन भडारोका कच्चे या आधे तैयार मालकी तरह अुपयोग कर डालनेका, और अन्तमे अिस कार्यको सतत जारी रखनेके लिअे वशपरपरा द्वारा अुन जीवोकी परम्परा चालू रखनेका;

और अन्तमे, मनुष्यको अपनेमे रही योग्य और दीर्घकालिक वासनाओको जगतमे स्थापित कर जानेकी कर्तव्यरूप लगनेवाली प्रेरणाका धर्ममार्ग — यज्ञकर्मका मार्ग — बताना।

१०

लग्नप्रथा

अब हम अिस बातका विचार करे कि किस प्रकारकी लग्न-प्रथा यह सब सिद्ध करने लायक मानी जायगी।

यहा अेक बात पहलेसे कह देना जरूरी है। जब कोअी वस्तु प्रथाका रूप ले लेती हैं, तब अुसके केवल निर्जीव बन जानेकी और अुसकी आडमे अशुद्ध व्यवहारोके चलनेकी भी सभावना हमारी अिस अपूर्ण दुनियामे हमेशा बनी रहती है। अुसका अिलाज यही है कि बार-बार अुस प्रथाको शुद्ध किया जाय या अशुद्ध व्यवहारोका निषेध किया जाय। किसी प्रथाके गुण-दोषोका विचार करनेमे यदि अितना कहा जा सके तो बस है कि शुद्ध व्यवहारके लिअे अुसीमे अधिकसे अधिक अनुकूलता है। अितना स्पष्टीकरण ध्यानमें रखकर अब अिस प्रश्नका विचार करे।

सबसे पहले स्त्री-पुरुषकी परस्पर आवश्यकताके बारेमे: श्री नरसिहभाअी दोनोको अधे-लगड़ेकी जोडीकी अुपमा देते है। मुझे यह अुपमा ठीक नही लगती। यद्यपि अिससे व्यवहारमे बहुत ज्यादा फर्क नही पडता, फिर भी हीन रूपकका सस्कार बुद्धिमे हीनग्रह (अिन्फि-रियॉरिटी कॉम्प्लेक्स) पैदा करता है, और वह लम्बे समयके बाद

कोअी न कोअी दोष पैदा किये विना नही रहता। अिसलिअे अिसे सुधारनेकी जरूरत मालूम होती है।

मेरे विचारसे स्त्री-पुरुषकी जोडी अंधे-लगडेकी, या दो ढालवाले मकान जैसी, या अेक-दूसरेके अर्धांग जैसी भी नही है, और न होनी चाहिये। जहां अैसी स्थिति है, वहा मैं अुसे ठीक नही मानता। दोनों व्यक्तिके रूपमे अेक-दूसरेसे स्वतत्र रहकर भी जीवनकी शोभा बढा सकते है, और अैसा करना अुन्हे आना चाहिये। जैसे अेक मदिरकी कमानके दो स्तंभ अलग-अलग स्वतत्र रूपसे खडे रहते हैं, अुसी तरह स्त्री-पुरुष दोनों स्वतत्र रूपसे खड़े रह सकते है — अुन्हे खडे रह सकना चाहिये।

परंतु अैसे दो स्वतत्र और समान शक्तिवाले स्तंभोका मदिरकी अेक ही भूमिका पर समन्वय हो जाय, तो सभव है वे दोनों मिलकर अपने अूपर जो बोझ अुठा सकें, वह दोनोकी अलग-अलग शक्तिसे कअी गुना ज्यादा हो। परतु दोनोकी स्थितिमें बहुत फर्क हो, या दोनो समान भूमिका पर नही बल्कि अलग-अलग भूमिका पर हो और दोनोका समन्वय नही बल्कि व्यन्वय (विपरीत सबध) हो जाय, तो दोनोकी शक्ति बढनेके बजाय अुसका ह्रास होगा और दोनो मिलकर स्वतत्र रूपसे अुठा सकने लायक बोझसे भी कम बोझ अुठायेंगे और शायद अेक-दूसरेका नाश भी कर डालेंगे। मदिरमें अेक ओर पत्थरका और दूसरी ओर पतले बांसका स्तभ रखें, या दोनों अथवा अेककी नींव जमीनसे बाहर जाय, या दोनों छोटे-बड़े हों तो क्या नतीजा होगा?

वैज्ञानिक दृष्टिसे भी अंग-संगठन रूपक अुचित नहीं मालूम होता। पुरुष और स्त्री दोनोंकी जीवनशक्ति दो स्वतत्र जीवनधारा है। अेक खास मर्यादामें और परिस्थितिमें दोनों स्वतत्र रूपसे वृद्धि-शक्तिशील — यानी जीवनधर्मवाले — हैं, और दोनोंकी अलग-अलग शरीररक्षा निभाने रखनेमें स्वतत्र अुपयोगिता है। लेकिन जिन दोनोंका अुचित प्रकार समन्वय होने पर दोनोंमें से दोनोंसे भिन्न विलक्षण और नवी नयी शक्तिवाला 'तीसरा' बनता है। जिसमें ये दो शक्तियां मानो अैसी

हो कि पत्थर और बासके स्तभोकी तरह अेक-दूसरेके साथ मिल ही न सके, तो अेक या दूसरेका अथवा दोनोका नाश भी कर सकती है। यही सबध अिन जीवनशक्तियोको धारण करनेवाले स्त्री-पुरुषके बीच भी समझना चाहिये। दोनो अेक खास मर्यादामे स्वतत्र है और स्वतत्र रूपसे अुपयोगी भी हो सकते है। लेकिन अगर दोनोका अुचित रूपमें समन्वय हो जाय, तो जैसे मन्दिरके समान स्तभ अपने सिर पर विशाल अिमारतका बोझ अुठा सकते है, अुसी तरह स्त्री-पुरुष मिलकर अपनी अलग-अलग शक्तिसे कअी गुनी ज्यादा शक्ति पैदा कर सकते है। यदि दोनोका समन्वय न हो तो अेकका या दोनोका ह्रास या नाश भी हो सकता है।

अिसलिअे सुखद दपती-सवध कायम करनेके लिअे तीन शर्तें जरूरी है दोनोमे स्वतत्र रूपसे अपने-अपने जीवनको अुपयोगी बनानेकी लगभग अेकसी शक्ति होनी चाहिये। अिन दो शक्तियोका समान भूमिका पर योग होना चाहिये। और यह योग समन्वयात्मक होना चाहिये, व्यन्वयात्मक (विपरीत सवधवाला) नही। जिस हद तक अिन तीन शर्तोमे कमी रहेगी, अुसी हद तक दपती-सवध दोषवाला होगा।

यह निश्चय करना बहुत सरल नही है कि दोनोकी भूमिका कब समान और कब असमान कही जाय। बाहरी रूप, रग, देश, जाति, कुल, स्वभाव, शिक्षा, आयु आदि हरअेकका अिसमे भाग होता है। लेकिन अिन सबमे स्थूल दृष्टिसे बहुत फर्क होने पर भी समान भूमिका हो सकती है, और ये दोनो देखनेमे अेकसे हो तो भी दोनोकी भूमिका बिलकुल अलग हो सकती है। पहले काममे लिये हुअे शब्दोका फिरसे अुपयोग करके कहू, तो जीवनके मुख्य ध्येय और व्यवसायके लिअे तथा अेक-दूसरेके प्रति वफादार रहने और अनुकूल होनेके लिअे दोनोकी धृति और प्रीति अेकसी हो, तो दूसरे बहुतसे भेदोंके रहते हुअे भी दोनोकी भूमिका समान हो सकती है। दोनोकी अेक-दूसरेके प्रति वफादार रहने और अनुकूल बननेकी अिच्छा और शक्तिका विवाहको सफल बनानेमें महत्त्वका हाथ होता है। ये दो

अिच्छायें हों तो दूसरे भेदोंका महत्त्व कम हो जाता है। जिस विवाहके पीछे ये दो अिच्छायें नहीं होती, वह छोटे छेदोंको बड़ा बनानेवाले बन्दरकी गरज पूरी करता है।

अिसका काव्यमय होते हुअे भी बहुत अूंचा अुदाहरण पाच पाण्डवों और द्रौपदीका है। वह अनेक-पति-लग्न होते हुअे भी स्त्री-पुरुषके अुचित समन्वयकी शर्तें सुन्दर ढंगसे पेश करता है। पाचों पाण्डवोंके स्वभावमें अेक-दूसरेसे विलक्षण भेद है, और द्रौपदी भी अेक 'मानिनी' स्त्री है। लेकिन छहोंमें धृति और प्रीति अेकसी होनेसे छहोंका संसार अनेक तरहके सुख-दुःखोंके बीच अुत्तम ढंगसे चलता है।

विवाहको दुःखदायी बनानेवाली अेक बात है, वह है घमण्ड और दूसरेके प्रति अनादर। जहां दोनोंमें से अेकको भी अपनी किसी सच्ची या कल्पित विशेषताका घमण्ड रहता हो या दूसरेके किसी दोषके लिअे मनमें तिरस्कार पैदा होता रहता हो, वहां दोनों चाहे जितने गुणवान हों, अुनका मेल नहीं बैठ सकता। घमण्ड और अनादर धृति और प्रीतिके विरोधी हैं।

अेक दूसरे विचारमें भी थोड़ा सुधार करना जरूरी मालूम होता है। बच्चा बनानेकी प्रेरणाके बिना विवाह नहीं करना चाहिये, यह सूत्र ठीक है। लेकिन अिसके विपरीत कोअी ये सूत्र बनाये कि बच्चा बनानेकी प्रेरणा हो तो विवाह करना ही चाहिये, अथवा बच्चा बनाना ही विवाहका एकमात्र अुद्देश्य है तो ये दोनों गलत हैं। बच्चा बनानेकी प्रेरणाके बिना स्त्री-पुरुषका संयोग नहीं होना चाहिये; और [illegible] होना ही ऐसा संयोग होना चाहिये। लेकिन [illegible] ऐसा [illegible] कि मनुष्यको हमेशा [illegible] प्रेरणाके वश होना चाहिये [illegible] विपरीत अर्थ है। [illegible] यह मानता है कि विवाहसे केवल बच्चा बनानेका ही अुद्देश पूरा करना है, तो भी भूल करता है। [illegible] विवाहका [illegible] मानना ठीक है, लेकिन विवाह द्वारा समाजका और पति-पत्नीका [illegible]
[illegible]
[illegible]

भी साथ ही साथ कर लेना चाहिये। केवल दोनोकी वंशवर्धनकी अिच्छा और योग्यता ही विवाह-सवध तय करनेका निर्णायिक कारण नही मानी जानी चाहिये। दूसरे कारण अितने महत्त्वके लगने चाहिये और अुनका खयाल अितना स्पष्ट होना चाहिये कि अुनके सामने वशवर्धनकी प्रेरणाका अनुभव आवश्यक होते हुअे भी अतिम निमित्त कारण कहा जा सके।

अिस दृष्टिसे विवाह करना चाहनेवाले स्त्री-पुरुषमे किस तरहकी योग्यता होनी चाहिये, अिसका सार निकाले

दोनोमे अपने जीवनको स्वतत्र रूपसे सफल और अुज्ज्वल बनानेकी शक्ति होनी चाहिये,

दोनोके सामने जीवनमें आहार, विहार, निद्रा, मैथुन आदि व्यक्तिगत वासनाओ और वृत्तियोसे परे कोअी स्वतत्र ध्येय या वासना होनी चाहिये,

अिस ध्येय या वासनाके बारेमें दोनोकी भूमिकाका समन्वय हो सकना चाहिये। समन्वय कअी तरहसे हो सकता है। अुदाहरणके लिअे, अधे-लगडेकी जोडीकी तरह वे अेक-दूसरेकी कमी पूरी करे, या साथ मिलकर बोझ खीचनेवाले दो बैलोकी तरह आपसमें सहकार करे, या चक्कीकी कील-मकडीकी तरह अेक-दूसरेके साथ अपना मेल बैठाये, या दूध-पानीकी तरह दोनोंमे से अेक व्यक्ति दूसरेके साथ अेकरूप हो जाय, या दूध-शक्करकी तरह अेक व्यक्ति दूसरेमे घुलमिलकर दूसरेके गुणको बढावे, या दो अर्धवृत्तोकी तरह अेक-दूसरेके योगसे पूर्ण बननेवाले हो, या जमीन और बरसातकी तरह दोनो मिलकर ससारको प्राणवान बनानेवाले ('सहवीर्यं कर्तारौ') हो, या तानेबानेकी तरह दोनो अेक-दूसरेमें ओतप्रोत हो जाय; या व्यजनमें मिले हुअे स्वरकी तरह अेक व्यक्ति दूसरेको पूर्ण बनावे — आदि-आदि कअी तरहसे दोनोकी भूमिकाका समन्वय हो सकता है। अिन सारे समन्वयोमें मुख्य और आवश्यक चीज है दोनोकी धृति — अेक-दूसरेके प्रति वफादार रहनेकी और अनुकूल बननेकी अिच्छा और शक्ति — तथा आपसकी प्रीति; और अन्तमे सन्तान द्वारा दोनोकी अपनी

कामनाओंको दुनियामे स्थापित कर जानेकी अिच्छा, और अुसके लिअे शरीर और मनकी योग्यता।

वशवृद्धिकी प्रेरणासे ही लग्न करना चाहिये — अिसका अर्थ येह नही करना चाहिये कि जिन विवाह करनेवालोंके मनमे सिर्फ अितना ही विचार है कि वश बढे तो भले बढे, अुनमे वशवृद्धिकी प्रेरणा पैदा हुअी है। हमें सन्तानका सुख चाहिये, या हमे अपना वश चालू रखना है, अैसी स्पष्ट अिच्छाको ही वशवृद्धिकी प्रेरणा माना जाय। परतु अिसका अर्थ अैसा भी नही समझना चाहिये कि यह अिच्छा है अिसलिअे विवाह करके सन्तान पैदा करना ही सबसे पहला कर्तव्य है, और वही विवाहित जीवनका आदि और अन्त माना जाय। बल्कि विवाहित जीवनके कअी अुद्देश्योमे से यह भी अेक अुद्देश्य हो सकता है और अुचित समय पर कर्तव्य या सत्कर्मकी भावनासे अिसे सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जा सकता है। लेकिन अैसा भी हो सकता है कि कर्तव्यरूप न मालूम होनेसे या अिससे अधिक महत्त्वके कर्तव्योमे दोनोके लगे रहनेसे यह अिच्छा लुप्त ही हो जाय, और अन्तमे यदि किसी कारणसे वशवृद्धिका अुद्देश्य पूरा न हो तो विवाह असफल, रद्द करने जैसा या क्लेशमय न लगे, अिस हद तक अिस अुद्देश्यका महत्त्व धीरे-धीरे मनमे घटता जाय। क्योकि, जैसा मै पहले कह चुका हू, सयमी स्त्री-पुरुष अपने भीतर पैदा होनेवाले कामविकारको सामान्यत अपनी असिद्ध वासनाओके फलस्वरूप पैदा होनेवाली अुत्तेजना समझते है, कामरत होनेसे अुन वासनाओको अपने ही जीवनमे सिद्ध करनेकी अुनकी शक्तिको मन्द करनेवाला मानते है और अिसलिअे अुस विकारके शरीरमे वेगवान बननेसे पहले ही अुसे पचा डालनेका प्रयत्न करते है। जब अैसा न कर सके, और साथ ही अपनी कामनाओको सन्तान द्वारा जगतमे स्थापित कर जानेकी अिच्छा भी बलवान मालूम हो, तभी वे सन्तान पैदा करते है। गीतामे कहा है:

> शक्नोतीहैव य सोढु प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
> कामक्रोधोद्भव वेग स युक्त स सुखी नर.॥ ५-२३॥

—शरीरसे बाहर निकले अुसके पहले ही जो काम-क्रोधके वेगको शरीरमें ही सहन करनेकी शक्ति रखता है, वह पुरुष योगी है, और वही सुखी होता है।

विवाहके पहले और बादमे भी सयमी स्त्री-पुरुषोका यही आदर्श होना चाहिये।

अिसमें से लग्नके बारेमे दूसरे नियम भी निकलते हैं। वे ये हैं :

अुचित रीतिसे पल-पुसकर बडे हुअे स्त्री-पुरुषोको २५ से ३० वर्षकी अुम्र तक सन्तान द्वारा अपनी वासनाओको दुनियामें स्थापित कर जानेकी या सन्ततिसुख भोगनेकी तीव्र अिच्छा होनी ही नही चाहिये। अुनके मनमे अपने ध्येयोको जीवनकालमें ही सिद्ध करनेकी आशा और शक्ति मालूम होनी चाहिये। यदि अिससे छोटी अुम्रमे अैसी अभिलाषा जोर करे, तो मानना चाहिये कि अुनके पालन-पोषणमे कोअी दोष रह गया है या वे अपवादरूप व्यक्ति हैं, अथवा वे अपने कामविकारके साथ अिस वृत्तिको मिला देनेवाले होने चाहिये कि सन्तति हो तो भले हो। २५–३० वर्षकी अुम्रके बाद यह अभि-लाषा मनमें पैदा हो, तो भी ३५ से ४० वर्षकी अुम्र तक अिस अिच्छा पर सयम रखना ही अच्छा होगा।

२५ वर्षके पहले यदि कामविकारका वेग अुठे, विजातीय व्यक्तिके सहवासके लिअे रुचि पैदा हो या जीवनका साथी पानेकी अुत्कट अिच्छा हो, तो अुसे वशवृद्धिकी प्रेरणा नही समझना चाहिये, बल्कि दूसरी वासनाओकी अुत्तेजना ही समझना चाहिये। २५ वर्ष तक अिस अुत्तेजनाको महत्त्व न देनेका प्रयत्न करना चाहिये, अर्थात् कामविकारके वेगको मनमे ही दबा देनेका अभ्यास करना चाहिये। विजातीय व्यक्तिका सहवास मर्यादामे, निर्दोष भावसे और सामाजिक तथा कौटुम्बिक जीवनमे अनायास जितना मिल जाय अुतनेको ही अुचित मानना चाहिये। २० वर्षकी अुम्र तक तो अिस सहवासमे से जीवनका साथी खोजनेकी वृत्तिको मनमे स्थान ही नही देना चाहिये। २० वर्ष बाद अगर जीवनका साथी प्राप्त करनेकी अुत्कट अिच्छा बढती जाय, तो अुसके

वादके पाचसे दस वर्ष तक सयमपूर्वक साथीकी खोज की जाय या कराअी जाय। अिस खोजमे श्री नरसिंहभाअीके कहे मुताबिक:

> "अधिकसे अधिक सावधानी रखनी चाहिये। स्त्री-पुरुषको प्रेमान्ध बनकर नही, बल्कि बहुत सोच-विचारकर विवाह करना चाहिये। अपना अिष्ट ध्येय साधनेके लिअे अुसके अनुकूल जीवन-साथी खोज लेना चाहिये। प्रेमके नाम पर बिना सोचे-विचारे विवाह करनेवालेको बादमें पछताना पड़ता है। तब यदि विरुद्ध स्वभाववाले स्त्री-पुरुष प्रेमके नाम पर मोहसे धोखा खाकर विवाह करे, तो अुसका नतीजा बुरा ही होगा। अिसीलिअे विवाह करते समय अिष्ट स्वजनोकी सलाह भी लेनी चाहिये।" (लग्नप्रपच, नवनीत छठा, पृ० ४६६)

साथीकी अिस खोजमे स्वय ढूढनेवालेको या सलाह देनेवाले स्वजनोको दोनोकी केवल प्रजोत्पत्तिमे शामिल होनेकी योग्यताका ही नही, वल्कि दूसरी बातोमे भी दोनोकी अेक-दूसरेके साथी बननेकी योग्यताका विचार करना चाहिये। अिन दूसरी बातोका महत्त्व पहलीसे जरा भी कम नही समझना चाहिये। अिस योग्यतामें दोनोकी धृति महत्त्वका काम करती है। अपने बारेमे बहुत ज्यादा घमड रखनेवाले और साथियोके लिअे अनादरकी भावना रखनेवाले स्त्री-पुरुष सुखी विवाहके लिअे अयोग्य समझे जाय। अुसी तरह जिन स्त्री-पुरुषोकी धृति और प्रीति चेतनकी अपेक्षा जड (जैसे, पैसा, गहने, खान-पानकी सुविधा, धर्म या रूढिके जड नियमोका पालन, विलास आदि) से अधिक अनुराग रखनेवाली और अुसे अधिक आदर देनेवाली हो, अुन्हे सुखी विवाहके लिअे अयोग्य समझना चाहिये।

लग्न करनेवालेके मनमे प्रयोग करनेका विचार नही होना चाहिये। साथीके साथ निभ सकनेमें जब तक थोडी भी शका हो, तब तक लग्न किया ही नही जा सकता। दोनोके अेकसाथ न निभ सकनेकी परिस्थिति किसी अनसोचे ढगसे पैदा हुअी होनी चाहिये। बहुत सोच-

समझकर लग्न करनेके बाद भी दोनोके बीच व्यन्वय (विपरीत सम्बन्ध) पैदा करनेवाले अैसे किसी स्वभावभेद या आदर्शभेदके मालूम होनेकी सभावना रह सकती है, जो साथी खोजनेवालेकी या स्वजनोकी कल्पनामे न आया हो। अिस स्थितिमे "यदि लग्नका हेतु सफल होनेकी सारी आशायें टूटती मालूम हो, तो अैसे स्त्री-पुरुष दोनो अपनी अिच्छासे या दोमे से अेककी अिच्छासे भी अिस लग्न-सम्बन्धको तोड सकते है।" (नवनीत सातवा, पृ० ४७१) अिसीमें अुन दोनोका और समाजका कल्याण है। अर्थात् यह भी विवाहित जीवनमे पैदा हुअी जवाबदारियोका और तलाकसे पैदा होनेवाले नतीजोका विचार करके ही किया जा सकता है।

फिर, विवाह करनेवाले और सलाह देनेवाले दोनोको जिन्नानकी अूपर बताअी सीख याद रखनी चाहिये। वह यह है कि स्त्री और पुरुष जो सन्तान पैदा करते है, वह अुनके द्वारा अिस दुनियामे आती है अितना ही समझना चाहिये। लेकिन वह अुनकी नही है, बल्कि भगवानकी अर्थात् मनुष्य-जातिकी सम्पत्ति है। वह सन्तान कीमती रत्न जैसी निकले, अिसकी सबको चिन्ता रखनी चाहिये।

सब सामाजिक सद्‌गुणोका मूलस्थान कुटुम्ब है। अिसलिअे लग्नके द्वारा कुटुम्ब-जीवन पैदा होना चाहिये। पति-पत्नी गृहस्थ (घर-बार बसाकर रहनेवाले) होने चाहियें, और घर तथा कुटुम्बमे गृहस्थ-भाव — स्वभावकी सज्जनता — का पोषण होना चाहिये; यह बात घर-गृहस्थीमें दोनोंके अेकसा रस लेनेसे और जो व्यक्ति अिस कार्यके अधिक अनुकूल हो अुसके लिअे दूसरे व्यक्ति द्वारा सुविधाअे जुटा देनेसे सिद्ध हो सकती है।

अिस परसे लग्न निश्चित करते समय समझने लायक अेक दूसरी बात याद आती है। कुछ स्त्री-पुरुष सकोचशील (रिसेस्सिव) स्वभावके होते है और कुछ प्रभावशील (डॉमिनन्ट) स्वभावके होते है। जहा स्त्री और पुरुष दोनो अेकसे प्रभावशील स्वभावके होते है, वहा यदि दोनोके बीच धृति और प्रीति भी अुतनी ही बलवान हो तो अच्छे परिणाम आनेकी सभावना रहती है। अगर दोनोमे धृति-प्रीतिके गुण

न हो, तो दोनोका मेल बैठना कठिन है। लेकिन सभव है अैसे लोग वहुधा अपना रास्ता निकाल भी लें। दोनोमें से अेक प्रभावशील और अेक सकोचशील हो, और अगर प्रभावशील व्यक्तिमे धृति तथा प्रीति हो तो दोनो निभ सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि सामान्यत· ८० फीसदी लोगोके मामलेमे अैसा ही होता है। अगर प्रभावशील व्यक्तिमे धृति और प्रीतिकी कमी हो, तो दूसरे व्यक्तिकी (फिर वह पति हो या पत्नी) शामत आअी समझिये। अगर दोनों सकोचशील स्वभावके हो और धृति-प्रीतिवाले हो, तो अुनका ससार अच्छी तरह चलता मालूम होता है; लेकिन शायद वह मूल्यहीन अच्छा (good-for-nothing) भी हो सकता है। अगर धृति और प्रीति न हो तो दोनो जिन्दगी भर लडते-झगडते रहेगे, न तो वे सम्वन्ध जोडकर रह सकेंगे, न तोड सकेंगे।

स्वभावकी अिस प्रभावशीलता या सकोचशीलताको बुद्धिकी तेजस्विता या जडताके साथ नही मिला देना चाहिये। सकोचशील स्वभावके साथ तेजस्वी बुद्धि और प्रभावशील स्वभावके साथ जड वुद्धि हो सकती है। अुसी तरह विद्वत्ता और वुद्धिको भी अेक न समझना चाहिये। प्रखर विद्वत्ताके साथ भी जड बुद्धि हो सकती है और निरक्षरताके साथ भी तेजस्वी वुद्धि हो सकती है। मेल बैठानेमे विद्वत्ता और वुद्धिकी तेजस्विताकी अपेक्षा स्वभावकी प्रभावशीलता और सकोचशीलता तथा धृति और प्रीतिका अधिक महत्त्व होता है। अिसी कारणसे अूपर कहे अनुसार यह निश्चय करना बहुत सरल नही है कि स्त्री-पुरुषकी भूमिका समान और मेल खानेवाली है या नही। और अिसी कारणसे सभव है विचारपूर्वक किये गये विवाह भी आधे ही सफल हो। कालिदास कहते हैं, अुस तरह कभी यह भी लग सकता है कि विलकुल अेकसे जोडे मिलानेमे जड विधाताको वहुत यश नही मिला।

अिस कारणसे भी, अगर स्त्री-पुरुष विवाह-सम्वन्धमे वधनेसे पहले सौके वजाय हजार वार भी सोचे-विचारे तो लाभ ही होगा। जितने लम्वे समय तक पवित्र सयमपूर्ण जीवन विताया जा सके विताना

चाहिये; और अन्तमें बिना साथीके रहना असभव-सा हो जाय, तथा वश बढानेकी अिच्छा प्रबल हो जाय तो ही विवाह करना चाहिये। विवाहके बिना अैसा सम्बन्ध किया ही नही जा सकता।

अिन सब विचारो परसे अितना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि विवाहके पहले और विवाहके बाद सयमसे रहनेवाले स्त्री-पुरुष सामान्यत. अेक ही लग्नसे तृप्त रहेगे। २५-३० वर्षकी या अुससे भी थोडी बडी अुम्रमें जिसने विवाह किया हो और जिसकी यह भावना न हो कि विवाह भोग-विलास, खाने-पीनेकी सुविधाओ या पैसे कमानेमे भागीदार प्राप्त करनेका ही साधन है, वह अपने साथीके मरने पर दुःखी होगा परन्तु दूसरा साथी पानेके लिअे अधीर नही होगा। लेकिन यह भावना यदि बहुत अुत्कट नही हुअी, तो सभव है कुछ समय बाद मृत साथीकी याद धुधली हो जाय और अुसीके जैसा दूसरा साथी पानेकी अिच्छा पैदा हो जाय। कभी मृत साथीको भुला देनेवाले किसी व्यक्तिके मिल जानेके कारण भी यह अिच्छा पैदा हो सकती है। यदि सतानका हेतु पूरा न हुआ हो, तो भी यह अिच्छा पैदा हो सकती है। अैसी स्थितिमे अिसी पद्धतिसे पुनर्विवाह करनेका मार्ग खुला रखे बिना कोअी चारा नही। अैसा मार्ग आदर्श मार्ग नही, यह कहकर स्त्री या पुरुष किसीके लिअे भी अुसे बन्द करनेसे कोअी लाभ न होगा।

सन्तान पैदा करनेके लिअे ही विवाह और सयोग हो, तो ही सन्तानकी सख्याकी मर्यादा रह सकती है। कर्तव्यकी भावनासे ही वंशवृद्धिके लिअे प्रेरित होनेवालोको अेक सन्तानसे सतोष हो सकता है। अिसके साथ सन्तान-सुखकी अिच्छा रखनेवालोको शायद दो-तीन बालकोकी चाह रहे। किन्तु अितने बालकोके बाद भी कोअी यह कहे कि अुन्हे ज्यादा बालकोकी अिच्छा है और अिसके पीछे कोअी खास कारण न हो, तो या तो वह अुनकी जडता हो सकती है या दभ, या वह जोडा अपवादरूप होना चाहिये। किसी खास कारणसे समाज या कुटुम्बके हितके लिअे अधिक बालकोकी जरूरत हो सकती है; सभव है अैसी स्थितिमे सन्तान बढानेकी अिच्छा कर्तव्यरूप मालूम हो।

अिस तरह 'अेक बार विवाह हुआ सो हुआ' वाली वृत्ति, विवाहित जीवनमे भी यथासभव पूर्ण सयम, परन्तु सतानकी तीव्र अिच्छा रहने या अुसके कर्तव्यरूप लगने पर सयोग और दो-तीन बालकोसे तृप्ति — यही आदर्श स्थिति मानी जायगी। लेकिन अिसमे पुनर्विवाहकी और विशेष स्थितिमे अधिक बालकोकी अिच्छा पर रोक नही लगाअी जा सकती। अुसी तरह विशेष परिस्थितिमे तलाकका रास्ता भी बन्द नही किया जा सकता।

११

सन्तति-नियमनका प्रश्न

अिस सारी चर्चासे अेक ही चीज निश्चित रूपसे समझमे आती है। केवल निरीश्वर, निश्चैतन्य प्रकृतिवादीकी दृष्टिसे विचारे या शुद्ध चैतन्यवादीकी दृष्टिसे विचारे, या केवल सामाजिक या पारिवारिक जीवनकी पूर्णताकी दृष्टिसे विचारे, अितना तो निश्चित है कि स्त्री और पुरुषकी जीवनशक्तिका अुपयोग अुचित रीतिसे दो ही बातोके लिअे हो सकता है अपने शरीर-यत्रको अुचित दशामे रखनेके लिअे या दूसरे शरीरका निर्माण करनेके लिअे।

बिलकुल सीधी दृष्टिसे देखे, तो अैसा लगे बिना नही रहेगा कि अूपरकी बातमे किसीको कोअी शका ही कैसे हो सकती है। हो सकता है कोअी किसान अपने अधिक बीज सग्रह करके रख दे, अपने कुटुम्बके पोषणमे खर्च कर डाले, संग्रह न कर सके तो सड़ने दे, जला डाले या खेतके सिवा किसी दूसरी जगह अिस तरह फेंक दे कि वे अुग न सकें। लेकिन पहले बीजके अकुरित होनेवाले भागको ब्यानसे तोडकर, खेतको साबुनके पानी या दूसरे किसी रासायनिक पदार्थसे बिगाडकर या अुस पर गरम-गरम राख डालकर बादमे मानो बुवाअी करना चाहता हो अिस तरह बीज बोने नही जायगा। अिसी तरह अपनी जीवनशक्तिको सग्रह करके न रख सकनेवाले स्त्री-

पुरुष अिस शक्तिको नष्ट होने दे तो दुःखद होते हुअे भी यह चीज समझी जा सकती है। लेकिन अुसे जानबूझकर निरकुर बनाकर या गर्भाशयको निःसत्त्व करके या अुसका नाश करके अिस तरह वरतें मानो जीव निर्माण करना चाहते हो, तो यह समझमें न आनेवाली मूर्खता या असह्य दुष्टता कही जायगी।

फिर भी आज बहुतसे सयाने और विचारशील मनुष्य, कुशल डॉक्टर और वैद्य तथा स्वय स्त्रिया भी अैसे विश्वाससे ब्रह्मचर्यके सिवा दूसरे रास्तेसे सतति-निरोधके विचारो और अुपायोका प्रचार करनेमे लगे हुअे है मानो अिस युगकी वह नूतनसे नूतन शोध हो और मानवजातिके कल्याणकी अचूक जडीबूटी हाथ लग गअी हो।

सच पूछा जाय तो ये विचार और अुपाय मुझे नये नही मालूम होते। मेरी धारणा है कि बहुत प्राचीन समयसे अैसे अुपायोकी खोज होती रही है। और कभी न सुधरनेवाली व्यभिचारी स्त्रिया परम्परासे अिनका कुछ न कुछ ज्ञान रखती आअी है। अैसा लगता है कि अिन अुपायोकी शोधकी जडमे व्यभिचारको निर्विघ्न बनानेका ही हेतु रहा है। आजके डॉक्टरी विज्ञानने अिन अुपायोको अधिक सुरक्षित बनाया होगा, अितना ही कहा जा सकता है। लेकिन अब यह सलाह दी जाती है कि जो साधन मूल व्यभिचारी स्त्रियोने अपने लिअे काममे लिये, अुन्हे साध्वी स्त्रियोको भी काममे लेना चाहिये। यह अितना ही बताता है कि स्त्री और पुरुष दोनो बहुत बडी मात्रामे कामलोलुप ही है। व्यभिचारी और अव्यभिचारीमे अितना ही फर्क है कि अव्यभिचारी स्त्री-पुरुषकी कामलोलुपता दोके बीच ही चलती है। जो स्त्री-पुरुष व्यभिचारी नही है, वे अव्यभिचारी है, लेकिन अैसा नही कहा जा सकता कि वे साध्वी-साधु है। यह तो तभी कहा जायगा जब वे आपसमे सयोगके समय अेक पवित्र कर्म करनेका सात्त्विक भाव अनुभव करते हो और अुसकी सफलताके लिअे अुत्सुक हो, जब अुनके मनसे मानो अैसी प्रार्थना निकलती हो कि अिस सयोगके फलस्वरूप अीश्वरके अुद्देश्यको सफल बनानेवाली और हमारी अच्छी वृत्तियोको मूर्तिमंत करनेवाली सन्तान पैदा हो।

अैसी पवित्र भावना न हो तो अव्यभिचारी और व्यभिचारी स्त्री-पुरुषके वीचका भेद सिर्फ अेक पति-पत्नी और अनेक पति-पत्नी प्रथाके भेद जैसा माना जायगा। अिसलिअे अव्यभिचारी स्त्री-पुरुषोको व्यभिचारी स्त्री-पुरुषोके अुपाय और साधन स्वीकारने जैसे लगे तो अिसमे कोअी ताज्जुव नही। क्योकि जहा दोनो अेक ही — कामविह्वलता के — रोगके शिकार हो, वहा दोनो अेक ही तरहके अुपाय काममे लेगे। अिसलिअे मूल आवश्यकता कामविह्वलताके नियमनका अुपाय खोजनेकी है।

यह समस्या स्त्रीजातिकी अपेक्षा पुरुषजातिके लिअे ज्यादा मुश्किल होती है। क्योकि, जैसा मैने पहले कहा है, गर्भधारण करनेकी शक्ति न होनेसे नरजातिमे जीवनकोषोकी अुत्पत्ति बन्द होनेकी अवधिया वीच-वीचमे नही आती।

तो अिस विषयमे थोडा विचार करे।

१२

ब्रह्मचर्य-विचार

किसीको यह लग सकता है कि यह सारी केवल तात्त्विक चर्चा ही है। आदर्शके नाते यह सव वडा सुन्दर है। सभी लोग अैसा आचरण कर सकें तो सोनेमें सुगन्ध हो जाय। लेकिन हम जिस तरहके सस्कारोमे पल-पुसकर वडे हुअे है, अुनको ध्यानमे रखते हुअे अिस चर्चासे हमे अपने वर्तमान जीवनके लिअे कोअी व्यावहारिक हल नही मिलता। वे कहेगे हम जानते है कि हमें कामविह्वल नही होना चाहिये, वल्कि अच्छी सन्तानके लिअे ही और अुसे पैदा करना कर्तव्यरूप मालूम हो तथा अैसा करनेकी सव शर्तें मौजूद हो, तभी सयोगकी अिच्छा करनी चाहिये। लेकिन अिस कामविह्वलताको रोकनेका अुपाय हम नही जानते। यदि आप अपने जीवनके अनुभवो परसे यह अुपाय वता सकें तो वताअिये। केवल आदर्श प्रस्तुत करके सन्तोष मत मानिये। क्योकि आदर्शका ज्ञान अुलटी परेशानी पैदा कर देता

है। आदर्श समझमे आ जाता है, अिससे यह नही कहा जा सकता कि वह गलत है। परन्तु अुस आदर्श पर जीवनमे अमल करना लगभग असभव मालूम होता है। अिसलिअे न तो हम आदर्श-पालनका सन्तोष प्राप्त कर सकते है और न जिसे आप हमारा 'पामर' जीवन कहेगे अुसीका स्थूल सतोष पा सकते है। और सयमके सारे प्रयत्न आत्म-पीडन —'सप्रेशन'—का ही रूप ले लेते है। अगर आप सचमुच हम पर कोअी अुपकार करना चाहते हो, तो हमे कामविकारको रोकनेके कोअी व्यावहारिक नियम बताअिये।

मुझे स्वीकार करना चाहिये कि यह शिकायत सच है।

अेक तरफ, जो लोग सहजानन्द स्वामी या रामकृष्ण परमहस जैसे सौगध खाकर यह कह सकें कि जन्मसे लेकर जीवनमे किसी भी दिन हमारे समक्ष जाग्रत अवस्था, स्वप्न या सुषुप्तिमे स्त्रीसम्बन्धी (या स्त्रीके लिअे पुरुषसम्बन्धी) विकार अुत्पन्न करनेवाला प्रसग आया ही नही, अुनसे हमें अिस विषयमे अधिक मार्गदर्शन नही मिलता। क्योकि अुनकी यह स्थिति बहुधा जन्मसिद्ध ही होती है। अुन्होने अैसा शायद ही कभी कहा है कि यह स्थिति अुन्हे किसी विशेष साधना या साधनसे प्राप्त हुअी है। जिन लोगोकी अैसी स्थिति नही है वे अुसे कैसे प्राप्त करे, अिस विषयमे अुनमे से कोअी अीश्वर-कृपाके सिवा दूसरा कोअी अचूक साधन नही बताता। सादे जीवन, अच्छी सगति वगैरा पर जरूर जोर दिया जाता है। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि ये साधन अचूक है। अितना जरूर है कि कामविकारको शात करनेवाली दवाओकी तरह ये साधन थोडी-बहुत शाति पहुचाते है। अुलटे, वैराग्य-साहित्यमें तो अैसा भी गाया गया है.

"भूमि शयन तन वसन करी, फल भक्षत आराम,
निशदिन रहत अरण्यमें, तेहु सतावत काम।
काम नही यह काल है, काम अपर्बल वीर (?);
जब अुगमत है देहमें, ज्ञानिन करत अधीर।"

और यह सच बात है। जो खूब खा-पीकर शरीरको तगडा बनाते है और विलासी जीवन बिताते है, वे ही कामविह्वल होते है अैसी बात नही। हमेशा फटेहाल, अधभूखे रहनेवाले स्त्री-पुरुष भी गन्दा जीवन बिताते देखे जाते है।

तो सहजानन्द स्वामी या रामकृष्ण परमहस जैसे जन्मसिद्ध निष्कामी पुरुषोकी तरफसे कामवश होनेवाले, त्यागी न बने हुअे, ससारी लोगोको अैसा कोअी क्रमिक अुपाय नही मिलता, जिसे वे स्वय अमलमे लाकर कामको जीत सके।

दूसरी तरफ, जिन्हे कामविकारका अनुभव हो चुका है, अुनमे से भी आज तक कोअी अैसे मार्गदर्शक देखनेमे नही आये, जो यह कहे कि अिस तरीकेसे यह विकार अुत्पन्न नही होता या अुत्पन्न होते ही शात हो जाता है। अुलटे, सयमका आदर्श सामने रखते हुअे भी पहले तो वे अपने अनुभव परसे यह बताते है कि कामविकार कितना बलवान है और आज भी अुनके जीवन पर अुसका कैसे जोर चल सकता है, बादमे वे कामविकारके अनेक तरहके दोष बताकर अुसके वश न होनेका अुपदेश देते है। कामविकारको वशमे करनेके अुपायके रूपमे अुनके पास भी सादा जीवन, सत्सग आदिके सिवा दूसरे कोअी अचूक अुपाय नही होते। लेकिन अिन सबके होते हुअे भी काम किस तरह सता सकता है, अुसका वर्णन अूपर आ गया है।

अिस तरह विवाहके पवित्र आदर्शोमें विश्वास रखनेवाले कुछ सद्वृत्तिवाले लोग भी अिस बारेमें परेशान रहते है। अुनकी परेशानियो पर सहानुभूतिसे विचार करना चाहिये। सतति-निरोधके हिमायतियोमे अच्छे अच्छे लोग भी है, अुसका कारण अिन परेशानियोके लिअे अुनकी सहानुभूति भी है।

लेकिन परेशानीके लिअे सहानुभूति होते हुअे भी सुझाये जानेवाले अुपाय जडसे ही गलत आधार पर सोचे गये हो, तो न केवल अुनसे अिष्ट हेतु सिद्ध नही होगा, बल्कि वे अनेक अनर्थोको भी जन्म देंगे। सन्तति-निरोधके कृत्रिम अुपायोका दोष यह है कि

अुनका मूल आधार ही गलत है। अुनमें कामविकारको कम करनेका कोअी खयाल ही नही है, केवल अुस विकारके अनिवार्य परिणामोको हटानेका प्रयत्न है। अिसलिअे वे कामदिकारको अुत्तेजन देनेका ही काम कर सकते है। अुनके साथ या वादमे पौष्टिक दवाअियोकी आवश्यकता पैदा होगी; और जो लोग ये दवायें न ले या न ले सके, वे — अुनकी मानसिक दुर्वलताकी वात जाने दे तो भी — अल्पायुपी और रोगके शिकार होगे। हो सकता है कि कुछ खुशहाल लोग तरह-तरहकी दवाअियोकी मददसे अिस मार्ग पर चलकर भी दीर्घायुपी और वलवान दिखाअी दें। लेकिन आम जनताका तो नाश ही होगा।

तव अिस परेशानीका सहानुभूतिसे विचार करके भी तत्काल फल देते मालूम होनेवाले परन्तु अुलटे मार्ग वतानेमे कोअी लाभ नही। जो भी अुपाय हो वे विकारको शान्त करनेवाले होने चाहिये, सिर्फ अुसके नतीजोको ही रोकनेवाले नही होने चाहिये। ये अुपाय ज्यादासे ज्यादा वैसे ही कहे जा सकते है, जैसे किसी गोदाममे आग पकडनेवाले पदार्थ पडे हो और अुनके मालिक द्वारा आग न लगनेके अुपाय पूछने पर कोअी अुसे वीमा करानेकी सलाह दे। वीमा करानेसे आग लगने पर शायद मालिकको आर्थिक नुकसान न हो, पर वह गोदाममे रखे हुअे पदार्थोकी रक्षाका अुपाय नही कहा जा सकता। और आगकी दुर्घटनासे होनेवाले आर्थिक तथा दूसरे सकटो, चिन्ताओ, अव्यवस्था आदिका वीमेसे क्या वदला मिल सकता है?

लेकिन अिस वारेमें मुझे लगता है कि शरीर, मन तथा अिन्द्रियो और अुनके भोगोंके प्रति देखनेके हमारे तरीकेमें भी अेक भारी दोप है। भोगपरायण तथा सयमपरायण दोनो तरहके लोगोंके विचारका मूल स्थान अिस विषयमे अेकसा ही है। दोनोकी वुद्धिमें यह चीज समान रूपसे वैठी हुअी मालूम होती है कि प्रकृतिके नियमके अनुसार सारे प्राणियोंके मन और अिन्द्रियोकी स्वाभाविक प्रवृत्ति स्वसुखरत और भोगकी अभिलापा रखनेवाली ही होती है। और प्रकृति पर वलात्कार करके ही अुन्हे अिस प्रवृत्तिमे रोका जा सकता है। लेकिन भोगी और

सयमीमे अितना ही भेद है कि भोगी प्रकृति पर अैसा बलात्कार करनेमे नही, बल्कि अुसे तृप्त करनेमें विश्वास रखता है, जब कि सयमी अिस बलात्कारको आवश्यक, अुचित और अुन्नतिकारक समझता है। अिसी कारणसे मन और अिन्द्रियोको वशमे करनेके अभ्यासके लिअे 'दमन', 'निग्रह', 'वश', 'विजय' आदि बलात्कार,—शत्रुता तथा युद्ध-सूचक शब्द काममे लाये गये है; और शरीर, मन तथा अिन्द्रियोको आत्माकी अुन्नतिके मार्गमे खडे शत्रु, चोर, डाकू वगैरा माननेके सस्कारको दुनियाके सारे धर्मोमे अेकसा पोषण मिला है। 'मुकुन्दमाला' के कवि प्रार्थना करते है:

अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य
चौरै प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयै.।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम्॥*

अुसी तरह, निष्कुलानन्द स्वामी कहते है कि योगी तो 'अिन्द्रिय मननी अुपरे रहे शत्रु सदाये जी'—योगी हमेशा अिन्द्रियो और मनका शत्रु रहता है। और ब्रह्मानन्द स्वामी कहते है:

"मन घोड़ा मस्तान महाबल, वश करि ताहि फिराअू री;
भूले हि रच करे मस्ताअी, तो चाबुक चोट लगाअू री।
काया कोट करूं मै कबजे, नामनिशान चडाअू री,
काम-क्रोध मारू कफराना, हरिका हुकम बजाअू री।
पाचु चोर पकड वश करके, साहब सनमुख लाअू री;
ब्रह्मानद श्यामके पासे मोज चरनरति पाअू री।"

सभी धर्मोंके साहित्यमे से अैसे अुद्‌गार निकाले जा सकते है। अुनमे रहे प्रयत्नका निषेध करनेके लिअे ये अुद्धरण मै यहा नही दे रहा

---

* हे प्रभु, अिन्द्रिय नामके बलवान चोरोने मुझ अंधेका विवेकरूपी महाधन लूटकर मुझे मोहके अधकूपमे फेक दिया है। हे देवेश, मुझ दीनको तुम्हारे हाथका सहारा दो।

हूं। बल्कि शरीर, मन और अिन्द्रियोको जीवके शत्रु माननेका जो संस्कार पोषित हुआ है, अुसके प्रमाणके तौर पर ये वचन यहा मैंने अुद्धृत किये है। अिसका मतलव यह हुआ कि मन और अिन्द्रियोका स्वभाव मोक्ष यानी आत्माके अुत्कर्षका विरोधी है। हमे जबरन् अुन्हे अैसा करनेसे रोकना है। अगर यही सच्ची स्थिति हो, तो मुझे लगता है कि मन और अिन्द्रियोको वशमें रखनेके सारे प्रयत्न अन्तमे व्यर्थ ही सिद्ध होगे, शायद वे नुकसान भी पहुचावे। लेकिन मेरे विचारसे यह दृष्टि ही गलत है। यह अनुभवकी कसौटी पर खरी नही अुतरती, अुलटी हमारे प्रयत्नोको कमजोर बनाकर गलत रास्ते ले जाती है। देहदडके, अिन्द्रिय-निग्रहके और मनको मारनेके अनेक कृत्रिम, प्रसन्नता-नाशक और आत्माको पीडा पहुचानेवाले व्रतो और साधनाओका बीज शरीर, मन और अिन्द्रियोको शत्रुभावसे देखनेकी अिस दृष्टिमे निहित है। बेशक, प्रकृतिके नियमके अनुसार आख देखेगी ही, कान सुनेगे ही, जीभ स्वाद लेगी ही, मन विचार-कल्पना आदि करेगा और भावनाओका अनुभव करेगा ही। लेकिन प्रकृतिका अैसा कोअी नियम नही है कि आख, कान, जीभ, मन आदि कब, कैसे और किन विषयोको देखने, सुनने आदिका काम करें— अिसकी विवेकयुक्त शिक्षा देकर अुन्हे सस्कारी न बनाया जा सके और वे प्राणीके शत्रु जैसे ही बरते।

मै तो चाहता हू कि अिन्द्रियोका 'सयम', 'निग्रह' आदि बलात्कार सूचक शब्दोके बदले हम अिन्द्रियोका 'सयोजन' कहे। अर्थात् हमारा ध्येय मन और अिन्द्रियोकी अुचित योजनाका ज्ञान प्राप्त करना है। अुनके प्रति हमें अिस दृष्टिसे नही देखना चाहिये कि वे हमारे शत्रु है और अुन्हें हराकर हमें दड देना — मारना है। बल्कि हमे अिस दृष्टिसे अुनके विषयमे सोचना है कि वे हमारे कल्याणके साधन है और अुन्हे नीरोग, व्यवस्थित, स्वाधीन और सस्कारी बनाकर अपनेमे रही अनेक तरहकी शक्तियोको प्रगट करनेमे हमे अुनका अुप-योग करना है। यदि कोअी ड्राअिवर अेंजिनको अपना शत्रु समझे और अुसके अलग-अलग द्वारो (वाल्व) को अुसे सभालनेमें विघ्नरूप माने, तो अुन द्वारोको कभी खोलने और कभी बन्द करनेका काम, कभी

भाप छोडने और कभी रोकनेका काम तथा अेजिनके अलग-अलग चक्रो पर निगाह रखनेका काम अुसके लिअे अेक भारी झंझट हो जायगा और अत्यन्त नीरस तथा प्रसन्नताका नाश करनेवाला सिद्ध होगा। अिसके विपरीत यदि वह अपने अेंजिनको अेक बड़ा खिलौना माने, अुसके अलग-अलग द्वारोको अपने मनोरजनका साधन समझे और अिसलिअे केवल खिलवाडके खातिर ही मनमें आवे तब अुन्हे खोले या बन्द करे और भापको छोडे या रोके, तो अुसका यह काम भयकर दुर्घटनाका ही कार्यक्रम बन जायगा। परतु यदि वह अैसा समझे कि अुसका अेजिन अुसके काबूमे आअी हुअी अेक बलवान शक्ति है, और अुसके अलग-अलग वाल्व और चक्र अुसका अच्छेसे अच्छा अुपयोग हो सकनेके लिअे जानबूझकर रखे हुअे साधन है, तो अुन द्वारोंके नियमन और संभालका काम, अुसकी व्यवस्थाकी हरअेक क्रिया ध्यानपूर्वक की जानेवाली होने पर भी अुसे दु:खदायी और प्रसन्नतानाशक झझट मालूम नही होगी, बल्कि अपनी विद्याको आजमानेका और अुस यंत्रका आवश्यकतानुसार अुपयोग करनेका मौका देनेवाली ही लगेगी। और अुसके मनमें अैसा विचार कभी नही आयेगा कि मै अिस अेजिनके साथ खिलवाड करू। अिसी तरह, अगर हमारे मनमे यह बात बैठ गअी हो कि पूर्वजन्मके अिकट्ठे हुअे पापकर्मोके फलस्वरूप यह शरीर है और मन तथा अिन्द्रिया पापो द्वारा अपना व्यापार जमानेके लिअे खोली हुअी दुकाने है, तो अुनके नियंत्रणकी हरअेक क्रिया हमे अप्रसंन्न बनानेवाला कठोर कार्यक्रम लगेगी तथा अैसे विचारसे बनाये हुअे सारे साधन और अभ्यास दड-दमन-पीडनकी ही पद्धतिया मालूम होगे। हमारे व्रत, तप और सयमका विचार अधिकतर अिसी दृष्टिकोणसे किया गया है।

मुझे लगता है कि मन और अिन्द्रियोंके प्रति अिस दृष्टिकोणसे देखना हमें छोड देना चाहिये। शरीर हमारे नसीबमे लिखी बेगार नही है, न वह हमे मिला हुआ अेक खिलौना ही है; बल्कि वह अेक अैसा पवित्र यत्र है, जिसके भीतर अनेक तरहकी शक्तियां भरी है। और मन तथा अिद्रियोकी शिक्षा शरीरको पीडा पहुचानेके लिअे

नही, बल्कि अुसकी व्यवस्थाके लिअे — अुस यत्रकी शक्तियोका अुत्तम और अधिकतम अुपयोग करनेके लिअे — जानबूझकर रखे गये द्वार है। अिस दृष्टिकोणसे विचार करके शरीर, मन और अिन्द्रियोको स्वाधीन बनानेका विवेकपूर्ण मार्ग खोजनेकी जरूरत है। जिस प्रकार अकुशल मनुष्यका अपनेको सौंपे हुअे अेजिनके द्वार खोलना या बन्द करना भी भारी सकटका कारण हो सकता है, अुसी प्रकार बिना विवेकसे किया हुआ भोग और दमन दोनो सकट और अप्रसन्नताके कारण बनते है। क्या ब्रह्मचर्य और क्या दूसरे व्रत, सबकी तरफ हमे कठोर तपश्चर्या — जबरन् की जानेवाली बेगार — की दृष्टिसे नही, बल्कि अपनेमे भरी हुअी अनेक प्रकारकी शक्तियोको सगठित, व्यवस्थित, प्रसन्नतावर्धक और बलवान रूपोमे प्रगट करनेवाली विद्याओंके रूपमे देखना चाहिये।

अेक तरफ मनुष्य ससारमे प्रजाततुको कायम रखनेके लिअे निर्माण हुअी प्रेरणाका बार-बार अनुभव करे और दूसरी तरफ यह सस्कार मनमे जमा ले कि यह प्रेरणा पापरूप है और लज्जास्पद है, तब तो ब्रह्मचर्य मनको दुःखी बनानेवाला, प्रसन्नताका और कभी-कभी आरोग्यका नाश करनेवाला — 'सप्रेशन' का — प्रयत्न बन जाता है। लेकिन यदि मनुष्य अिस प्रेरणाके प्रति दोषकी दृष्टिसे देखनेकी अपेक्षा अुसे ससारचक्रको गतिमान रखनेके लिअे चैतन्यके सकल्पसे बनी हुअी अेक आवश्यक और पवित्र योजना समझे, और अैसा सस्कार दृढ करनेका प्रयत्न करे कि सर्वोदयकी दृष्टिसे सोचे हुअे धर्ममार्गसे वशकी वृद्धिके लिअे अिस पवित्र शक्तिका अुपयोग करना अेक यज्ञकर्म बन सकता है तथा वैसे प्रयोजनके बिना किया हुआ अुसका अुपयोग शरीर-यत्रका मूर्खतापूर्ण और नाशकारी अुपयोग है, तो वह ब्रह्मचर्य और अुसकी रक्षाके साधनोको शुष्क और कठोर तपकी दृष्टिमे नही, बल्कि अेक प्राप्त करने जैसी विद्या और विभूतिके अनुष्ठानकी दृष्टिसे देखेगा और अुसके प्रयत्नमें मानसिक क्लेश अनुभव करनेके बजाय सतोष और प्रसन्नताका अनुभव करेगा। जैसे किसी डॉक्टरको अपने औजारोंको भापमे शुद्ध करनेकी और अपने हाथोको जन्तुनाशक पदार्थोंमे धोनेकी

क्रियाये बडे डॉक्टरो द्वारा पैदा की हुअी झझटे नही लगती, बल्कि सावधानी और लगनसे अुन नियमोका पालन करनेमे श्रद्धा, अुत्साह और कर्तव्यबुद्धि मालूम होती है और अुसमे वह अपने धधेका गौरव और अपनी तथा अपने रोगीकी रक्षा मानता है, अुसी तरह जब अिस दृष्टिसे हम अिन्द्रियोके नियमनका विचार करेगे और अुसके योग्य तरीके खोजेगे, तब अुसके अभ्यास और प्रयोग हमें नीरस और अूबानेवाले नही लगेगे, बल्कि अुत्साहवर्धक और कर्तव्यरूप मालूम होगे।

अिस दृष्टिसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतोका विचार नही किया गया या बहुत कम किया गया है। अिस कारणसे ससारी वृत्तिवाले साधारण लोगोको नियमका पालन जीवनको सुखहीन और दु खमय बनानेके लिअे तैयार की हुअी बेडियोके जैसा लगता है। अुसे वे त्यागियोका धर्म समझते है, ससारियोका नही। यदि हमे साधारण लोगोके मनमे सयमके लिअे रुचि और प्रयत्नकी अिच्छा पैदा करनी हो, तो सयमपरायण लोगोको भी अूपरकी दृष्टिसे विचार करके सयमी जीवनके नियम और क्रम बताने चाहिये।

मै अनुभवियोसे विनती करता हू कि वे अिस दृष्टिसे विचार करके सयमके रास्ते खोजे।

१३

कामविकारका हेतु

मुझे लगता है कि कामविकारकी परीक्षाके हमारे तरीकेमे भी थोडा सुधार करना आवश्यक है। प्रचलित रिवाज अुसे वशवृद्धिकी प्रेरणाके रूपमें देखने और जाचनेका है। अर्थात् अैसा कहा जाता है कि ससारमें प्राणियोका वश चालू रहे, अिसलिअे अुनमें कामविकार पैदा होता है।

यह वाक्य है तो ठीक, लेकिन अिसका मतलव समझ लेना जरूरी है । अिसका यह मतलव नही कि प्राणी पहले अपना वश वढानेकी स्पष्ट अिच्छा अनुभव करते है, और अुसके परिणामस्वरूप कामसे प्रेरित होते हैं । मनुष्यको छोडकर दूसरे प्राणी अैसी स्पष्ट अिच्छा किस हद तक अनुभव करते है, यह जाननेका हमारे पास कोअी साधन नही है। कुछ प्राणियोके बारेमें अितना ही कहा जा सकता है कि वे कामविकारका अनुभव करते है, अुसके फलस्वरूप सभोग करते हैं और अिस सभोगके फलस्वरूप वशवृद्धिका अनुभव करते तथा अुससे प्रसन्न होते हैं। मतलव यह कि कामविकार पैदा होनेके साथ वशवृद्धिकी स्पष्ट अिच्छा या ज्ञान हो भी सकता है और न भी हो सकता है। अैसा मालूम होता है कि कच्ची अुम्रमें जिन युवक-युवतियोका विवाह हो जाता है, अुनकी भी मनोदशा यही होती है । और अुस परसे प्राणियोकी मनोदशाका भी अनुमान हो मकता है । अिस विकारका अतिम परिणाम वशवृद्धि होता है । यह अिच्छा प्राणियोमें अनजानमें भी रहती जरूर है। अिसमे चैतन्यकी सकल्प-सिद्धि या प्रकृतिकी विकास-सिद्धि है, अिसलिअे यह कहनेमें दोप नही कि अिस अतिम हेतुके लिअे प्राणियोमे यह विकार रखा गया है। लेकिन अिसका यह मतलव नही कि जव-जव कामविकार पैदा होता है, तव-तव वह वशवृद्धिकी अिच्छाके कारण ही पैदा होता है। वल्कि वह अपने-आप अुठता है और अपनी शक्तिसे वशवृद्धि करता है।

अिसलिअे अिस बातका स्वतत्र रूपसे विचार करना चाहिये कि काम-विकार पैदा क्यो होता है।

मै पहले कह चुका हू कि मेरी कल्पनाके अनुसार काम और कामना अलग वस्तु नही है। मनुष्यके हृदयमे रही कामनाओकी अधीरता ही कामविकारका रूप लेती है। वह क्रोध, लोभ आदि विकारोका रूप भी ले सकती है। लेकिन अुसके अलावा, कामविकारका रूप भी लेती है।

यही चीज मै दूसरे शब्दोमे समझाता हू।

मुझे लगता है कि कामविकारके रूपमे मनुष्यको अस्वस्थ बना देनेवाला और शात न किया जा सके तो अन्तमे जीवनशक्ति पर असर करनेवाला तथा सयोगकी अिच्छा पैदा करनेवाला अनुभव — ज्ञानततुओमें पैदा होनेवाला अेक तनाव है। कअी कारणोसे प्राणियोंके ज्ञानततुओमे तरह तरहका तनाव पैदा होता है। क्रोध, लोभ, भय आदिकी तरह कामविकारका तनाव भी कभी बाहरी कारणोसे और कभी भीतरी कारणोसे हमारे ज्ञानततुओको अस्वस्थ कर देता है। यह जानी हुअी बात है कि कअी जातियोके प्राणियोमे बदलती हुअी ऋतुसे होनेवाले शारीरिक परिवर्तन यह अस्वस्थता पैदा करते है। वसत, शरद् जैसी ऋतुओके बदलनेके सधिकालमे जिस तरह मलेरिया आदि रोग सब जगह फैलते है, अुसी प्रकार यह अस्वस्थता भी लगभग सब प्राणियोमे पैदा होती है। मनुष्य पर भी अिन ऋतुओका असर होता है। लेकिन मनुष्यके विषयमें ऋतुओसे भी ज्यादा अुसके जीवनमें ही पैदा होनेवाले कारण अुसके ज्ञानततुओको बार-बार अस्वस्थ बना देते है। अेक ही वस्तुका बार-बार चिन्तन, काफी मानसिक परिश्रम, ज्ञानततुओको नाजुक व कमजोर बना डालनेवाले नशे, मनको अुत्तेजित करनेवाले आनन्द और अुत्साहके प्रसग तथा कार्यक्रम, कभी-कभी शोकके भी अैसे प्रसग — अिन सब और अैसी ही दूसरी बातोंके कारण मनुष्यके ज्ञानततु काफी तने हुअे रहते है। वे तने हुअे रहते है अिसलिअे वह कुछ अस्वस्थताका अनुभव किया करता है। मेरे अनुमानसे अिसका मतलब यह है कि मनुष्यके ज्ञानततुओकी व्यवस्थामें

कुछ बिगाड करनेवाले द्रव्य (टॉक्सिन जैसे) पैदा होते है और अुन्हे बाहर फेंक देना जरूरी होता है। लेकिन वे आसानीसे वाहर नही निकलते। परिणाम यह होता है कि जिस तरह आतोमें अिकट्ठा होनेवाला बिगाड मनुष्यको अस्वस्थ बना देता है, अुसी तरह ज्ञानततुओमे भरा हुआ विगाड भी अुसे अस्वस्थ कर देता है। ज्ञानततुव्यवस्था सारे शरीरमे फैली हुअी है, अिसलिअे अुस विगाडका असर मनुष्य सारे शरीर पर अनुभव करता है। और कामविकार अुठने पर मनुष्यमे जो दूसरेसे लिपटने-चिपटने वगैराकी स्पर्शेच्छा तीव्र हो जाती है, वह अिसीका परिणाम मालूम होती है।

जिस तरह व्यवस्थित शहरोमे पानी कही अिकट्ठा नही होता, बल्कि गटरोंके जरिये तुरन्त वह जाता है, या जैसे अूचे मकान पर लगाया हुआ तार आसमानमे पैदा होनेवाली विजलीको शातिसे वह जानेका रास्ता दे देता है और मकानकी रक्षा करता है, अुसी प्रकार यदि विविध कार्यक्रमोंके कारण ज्ञानततुओमे पैदा होनेवाले विगाडके तुरन्त ही बाहर निकल जानेका शरीरमें व्यवस्थित प्रवध हो, तो वह शरीरको शात रखे और अुसमे विकार पैदा न होने दे। लेकिन यदि अैसा प्रवध न हो और ज्ञानततुओका तनाव लगातार चालू ही रहे, तो अुस बिगाड़ और तनावका वादमे शरीरकी ग्रन्थियो और स्नायुओ पर भी असर हो तो कोअी आश्चर्य नही। जब यह स्थिति हो जाती है, तब कामविकारका स्पष्ट अनुभव होने लगता है। मुझे लगता है कि कामकी शारीरिक अुत्पत्ति अिसी तरह होती है। वह पहले तो ज्ञान-ततुओकी थकान और अव्यवस्थाके रूपमे होता है। यदि अैसे कोअी अुपाय हाथ लग जाय, जिनसे ज्ञानततुओका विगाड शरीरसे तुरन्त वाहर निकल जाय और अुनकी थकान अुतर जाय, तो मेरे खयालसे अिस विकारकी ही खास अिच्छा किये विना यह अपने-आप नही पैदा होगा।

ज्ञानततुओकी थकान मिटाकर अुन्हे शात बना देनेका कोअी स्वाधीन अुपाय न जानने या न आनेके कारण कच्ची अुम्रके नौजवान अस्वस्थ हो जाते है और सो नही सकते। कही कही वे दूसरेसे लिपटने

या आलिंगन करनेकी प्रेरणामे पडते है और अुसमे से अेकाध बुरी पुस्तक, दृश्य या मित्र आदि अुसकी विषयेद्रियको अिस तनावका अनुभव करना और अुसके वश होना सिखाते है। मुझे लगता है कि आरभमे तो तरुणोको अिसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष रूपमे तनाव अुतर जानेके बाद आराम और नीदके सिवा कुछ पल्ले नही पडता। अुन्हे अिसमें जो आनन्द अनुभव होता है, वह सिर्फ आरामका ही होता है, और शायद कुतूहलका। लेकिन अुसके बाद, जिस तरह ज्ञानततुओको शराब, बीडी वगैरा नशोकी अुत्कट अिच्छा रहने लगती है और अुन्हे बार-बार प्राप्त किये बिना बेचैनी बनी रहती है, अुसी तरह अिन्द्रियोको थोडे भी तनावसे जाग्रत हो जानेकी और जीवनशक्तिको नष्ट करके आराम पानेकी अुत्कट अिच्छा हुआ करती है। अिसके पहले ही किसी नौजवानका विवाह हो चुका हो, तो अुस अिच्छाको पूरी करनेकी अुसे अनुकूलता मिल जाती है, विवाह न हुआ हो तो वह विवाह करनेकी — और बुरी सगतिमे पडा हो तो व्यभिचारकी — अिच्छा करता है। जवाबदारीका भान न होनेसे अुसके मनमे यह विचार शायद ही अुठता होगा कि अिसके फलस्वरूप यदि सन्तान पैदा हो गअी तो क्या होगा। अिसलिअे यह कहना सच नही होगा कि अिसके पीछे वशवृद्धिकी प्रेरणा रहती है। यह सिर्फ ज्ञानततुओके अुत्तेजनको शात करनेकी ही प्रेरणा है। और वशवृद्धि अिसके फलस्वरूप हो जाती है, अैसा कहना ज्यादा ठीक होगा। वशवृद्धिकी अिच्छा तो ज्यादा बडी अुम्रमे — पच्चीस तीस वर्ष बाद — पैदा होना सभव है।

तो पच्चीस-तीस वर्षकी अुम्र तक तो कामविकारके दर्शनको वशवृद्धिकी, यानी विवाहकी, अिच्छा मानना ही नही चाहिये। वह कअी कारणोसे ज्ञानततुओमे अुत्पन्न होनेवाली अुत्तेजनामात्र है। सतति-निरोधके अुपायोवाला या अुनसे रहित स्त्री-पुरुष-सबध अिसका अिलाज नही है, स्वजाति-सबध आदि भी नही, जड या चेतन किसी वस्तुका आलिंगन करना भी अिसका अिलाज नही है। अिसके लिअे तो ज्ञानततुओको शात करनेका निश्चित अुपाय ढूढना चाहिये। जिस तरह अच्छी मशीनोके पुरजे कभी गरम होते ही नही, गरमी पैदा

होते ही अुसे मिटानेके अुनमें साधन होते है, जिस तरह विजलीके कारखानोमे जिस जगह पर विजली पैदा होती है, वहासे पैदा होते ही तार द्वारा वह आगे बढ जाती है, अुसी तरह प्रतिदिनकी अनेक सत्प्रवृत्तियो या अदुष्ट प्रवृत्तियोमें लगे हुअे ज्ञानततुओमें अुत्पन्न होनेवाले बिगाडको, अुत्तेजना पैदा हुअे विना, वाहर निकालनेके कोअी न कोअी अचूक तरीके जरूर होगे। तुरन्त शात करनेवाले और तुरन्त न हो सके तो वेचैन किये विना शात करनेवाले, कामका वेग पैदा हो अुसके पहले ही अुसे पचा देनेवाले तरीके होने ही चाहियें। मुझे लगता है कि अिन्द्रियोकी शिक्षा, नियत्रण, सयम और सयोजनका शास्त्रीय मार्ग अिस दिशामे शोध करनेसे मिलेगा। परन्तु दुर्भाग्यसे शरीरशास्त्रका अध्ययन करनेवाले डॉक्टरो या वैद्योने अिस दिशामें मनुष्य-जातिकी मदद करनेका विचार ही नही किया है। वे तो भोगोकी तृप्तिके और अुनके अनिवार्य परिणामोसे वचनेके साधन ही खोजते और वताते है और मनुष्य-जातिको मानसिक निर्वलता और शारीरिक विनाशके मार्ग पर खीच ले जाते है। सभव है मत्रविद्या और योगविद्यामें अिस दृष्टिसे कुछ विचार किया गया हो, लेकिन अुसके सरल मार्ग या तो है नही, या कोअी वताता नही। भक्ति भी अेक साधन है, लेकिन भक्तिमार्गमे रसिकता, अुन्माद, अतिहर्ष, अतिशोक आदि ज्ञानततुओको अुत्तेजित करनेवाले कार्यक्रम होते है। अुनका परिणाम कामविकार पर शायद ही अच्छा होता है। पागल वननेके लिअे दुनियामें वहुतेरे रास्ते है। राजकीय कार्यक्रम, वडे सामाजिक और पारिवारिक प्रसग, वसत-शरद् आदि ऋतुओके अुत्सव, गीत-नृत्य-जलसे, नाटक-सिनेमा आदि कअी वाते भावनाओको अुत्तेजित करनेके लिअे दुनियामें मौजूद है। तव भक्तिके नाम पर ये ही तरीके अपनानेसे कल्याण नही हो सकता। जिस तरह ग्रीष्म कालकी गरमीसे झुलसता हुआ मनुष्य खसकी टट्टीसे ठडे किये हुअे कमरेमे या खूब अूची पहाडीकी ठडी हवामे ठडक अनुभव करता है, अुसी तरह भक्तिका मार्ग और अुसका परिणाम अैसा होना चाहिये जो मनुष्यके अुत्तेजित ज्ञानततुओको शांत कर दे, अुसे यह पता भी न चले कि अुनके

ज्ञानततुओका विगाड और अुत्तेजना कब और कैसे शात हो गअी, और अुसे स्वाभाविक प्रसन्नता और आराम दे। सत्सग और भक्तिमे वहुत बार अैसा परिणाम आता है, अिसीलिअे अुनकी महिमा है। परतु यदि सत्सगके नाम पर शास्त्रीय और तार्किक वाद-विवाद ही चले, या कथाके नाम पर भी नव रसोका ही वर्णन हो, तो अुससे बहुत लाभ नही होगा।

अिस विषय पर मै अिस दृष्टिसे विचार करता हू और अिसके साधन तथा अुपाय खोजता हू। सज्जनोकी सगति, स्वामी निष्कुलानन्दकी सारसिद्धि, भक्तिनिधि, हरिबल गीता जैसी कुछ अच्छी पुस्तको, भक्तचिन्तामणिके कुछ अध्यायो, गाधीजीके आश्रमवासियोके नाम लिखे पत्रो, मगलप्रभात, आत्मकथा, स्माअिल्सका चरित्र, प्रभुमय जीवन, रक्तशुद्धिके लिअे किये जानेवाले आसन-प्राणायाम, आज्ञाचक्र (तत्रशास्त्रमें बताये हुअे छ चक्रोमे से अेक) पर धारणा आदिका अभ्यास, नामस्मरण, मिताहार आदिका अिसमें अवश्य बडा हाथ है। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि अिनमें से अेकका भी आज तक सागोपाग और सपूर्ण प्रयोग हुआ है।

यदि अनुभवी वृद्धजन, डॉक्टर, योगाभ्यासी आदि अिस दिशामें खोज करके कोअी अुपाय बतावे, तो अुनसे ब्रह्मचर्य या सयमकी महिमाके बजाय अथवा बुरी आदतो और कामलोलुपताके सूक्ष्म वर्णनके बजाय सयमके आदर्शमे श्रद्धा रखनेवाले किन्तु अिस प्रयत्नमे असफल रहनेवाले विवाहित स्त्री-पुरुषो और अविवाहित युवक-युवतियोका अधिक अुपकार होगा।

लेकिन अेक वात तो निश्चित है। अेक अिन्द्रियको स्वच्छन्द बनने देकर दूसरी अिन्द्रियोको सही मार्ग पर नही रखा जा सकता। श्रृगारी, अुत्तेजक, स्तुतिके भावसे या निन्दाके भावसे तथा भक्तिके नाम पर या दूसरी तरह कामविकारसे ही सबध रखनेवाले विषयो पर आकर टिकनेवाले साहित्य, सगीत, ललित कला, खान-पान, कपड़े, गध, वातचीत आदिमे अिच्छापूर्वक रत रहते हुअे ज्ञानततुओको शात

रखनेका कोअी अचूक अुपाय भी सफल नही हो सकता। यह तो कुपथ्य और दवा दोनोका साथ-साथ प्रयोग करने जैसा है। अैसा कोअी अुपाय हो तो भी वह दूसरी निर्दोष प्रवृत्तियोसे पैदा होनेवाली ज्ञानततुओकी थकावटको ही दूर कर सकता है।

बिल्ली-बाघ, बन्दर-मनुष्य आदि समान प्राणियोको देखनेसे दोनोके बीचके विकासभेदमे अेक महत्त्वका कारण मालूम होगा। जिन प्राणियोका तरुणावस्थामे प्रवेश करनेका समय जल्दी शुरू हो जाता है तथा जो शीघ्र गतिसे तरुण बन जाते है, अुन प्राणियोकी आयु, शक्ति, तेज आदि थोडे होते है। जिनका बाल्यकाल लम्बे समय तक टिका रहता है, किशोरावस्था धीरे-धीरे बढती है और जो किशोरावस्थामे निर्विकार रहते है, अुनकी आयु, शक्ति, तेज आदि अधिक होते है। किशोरावस्था और कच्ची तरुणावस्थामे जीवनशक्तिकी रक्षा ही सर्वांगीण विकासका सबसे बडा साधन माना जा सकता है।

अिसलिअे, यौवनमे प्रवेश करनेके समय लडके-लडकियोकी शिक्षा, भोग, बातचीत, कार्यक्रम आदि शुद्ध रखने और बनानेके लिअे जितनी भी कोशिश की जाय थोडी ही है। मेरे विचारसे जो दसमे लगभग तीस वर्षकी अुम्र तक ज्ञानततुओको अपने अधीन रखनेमे सफल हो जाय, अुसे बादमे अपनी अिन्द्रियोको वशमे रखना कठिन नही मालूम होगा। तीसकी अुम्रके भीतर जो अिन्द्रियोके वश होना सीखेगा, अुसके लिअे जीवनभर अुन्हे वशमें रखना असभव या कठिन ही होगा।

यह परीक्षण यदि ठीक हो, तो कामविकार और वशवृद्धिकी प्रेरणा दो अलग चीजे हो जाती है। अूचेसे गिरने और कूदनेमे जो फर्क है, वही फर्क अिन दोनोमे है। दोनोमे अूपरसे नीचे आनेका परिणाम अुत्पन्न होता है, लेकिन अेकमें विवशता है, जबकि दूसरी स्वाधीन क्रिया है। अुसी तरह ज्ञानततुओकी अुत्तेजनाके कारण कामवृद्धि होनेमे विवशता है, और वशकी अिच्छासे विचारपूर्वक सन्तान पैदा करनेमे स्वाधीनता है। जहा विवशता है वहा चाहे जितने छलकपट, गुप्तता, प्रपच, बलात्कार आदिसे काम लिया जाय,

फिर भी अुसमे स्वाधीनता नही होती। वह अिन्द्रियो और मनकी मस्ती ही है। महाभारत आदि ग्रथोमें सन्तान पैदा करनेकी अिच्छासे स्वाधीन कामवृत्तिके कुछ अुदाहरण दिये गये है। मुझे नही लगता कि वे असभव कोटिके है। वे सभव हो तो ही नीचेका कथन अक्षरश सत्य हो सकता है -

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।

— रागद्वेषरहित, आत्मवश वनी हुअी अिन्द्रियोसे विषयोका अुपभोग करनेवाला निष्ठावान् पुरुष प्रसन्नताको प्राप्त करता है।

भगवान करे अिस भावना और विद्याकी खोज तथा सशोधन हो।

अिति।

स्त्री-पुरुष-मर्यादा

तीसरा भाग

अन्तिम लेख

१

संस्थाओंका अनुशासन *

प्रश्न

क्या आप यह मानते है कि कन्याविद्यालयोके अनुशासन, शिष्टाचार और वरताव वगैराके वारेमे साधारण ढगके कुछ खास नियम वनाये जाने चाहिये ? यदि हा, तो अुदाहरणके तौर पर वे किन-किन वातोमे और कैसे होने चाहिये ?

शिक्षण-सस्थामे, और खास करके स्त्री-शिक्षणकी सस्थामे, स्त्री-पुरुप-सवधके वारेमे किसी खास शिष्टाचार और सुरुचिके नियम वनाये जाने चाहिये ? यदि हा, तो अुनमें कौनसी वातोका समावेश करना चाहिये ?

गृहशालाके ढगकी सस्थामे छात्रालय, शिक्षक-निवास आदि होगे। अुसके लिअे आने-जाने, मिलने-जुलने, स्पर्शास्पर्शके वारेमें क्या अैसे शिष्टाचारके नियम वनाये जाने चाहिये, जो छात्राओ, शिक्षक-शिक्षिकाओ और जनता सवका मार्गदर्शन कर सके ? यदि हा, तो अैसे नियम वनानेके लिअे आप किन्हे योग्य मानते है ? यदि नही, तो अिन आवश्यक वातोमे नियत्रण और व्यवस्था रखनेके लिअे आप दूसरे कौनसे तरीके सुझायेंगे ? अैसे नियम वनाये जाय तो सस्थाकी तरफसे अुनके पालनकी योग्यतापूर्वक देखरेख रखनेकी जिम्मेदारी किसके सिर पर होनी चाहिये ?

यह वात तो सभी मानेगे कि व्यक्तिकी नाअी सस्थाको भी शिष्टाचार और शील-प्रतिष्ठाके वारेमे अैसी स्थिति प्राप्त करनी चाहिये, जो शका और लोकनिन्दासे परे हो। यह स्थिति प्राप्त करनेके लिअे अूपरकी वातोके सिवा दूसरा कुछ विचार करने जैसा लगे तो कृपया वताअिये।

अुत्तर

दुनियामे अैसा अेक भी समाज नही होगा, जिसमे स्त्री-पुरुप-सवधके वारेमें शिष्टाचार और सुरुचिके कोअी नियम न हो। सभव है

---

* यह लेख मैंने और श्री नरहरिभाअी परीखने मिलकर अेक सस्थाकी तरफसे पूछे गये प्रश्नोके अुत्तरमें लिखा है।

कोअी लिखित नियम न हो। लेकिन क्या अुचित और क्या अनुचित है, अिस बारेमे किसी न किसी प्रकारका लोकमत तो होता ही है। और सामान्यतः सभ्य स्त्री-पुरुष अुस लोकमतके अनुसार ही समाजमें व्यवहार करते है। यदि लोकमत बलवान होता है—अर्थात् अुसके विरुद्ध बरताव करनेवाला मनुष्य चाहे जितना बडा हो, फिर भी अुसके खिलाफ समाजके प्रतिष्ठित लोग संकोच रखे विना किसी भी रूपमे अपनी नाराजी प्रकट करते है—तो समाजकी मर्यादाओका आग्रहपूर्वक पालन होता है। यदि लोकमत कमजोर होता है—अर्थात् समाजके प्रतिष्ठित लोग मर्यादाभगके खिलाफ नि सकोच भावसे मुह पर बात नही करते, दड नही देते, या आवाज नही अुठाते, बल्कि अुस विषयको केवल निन्दाका विषय बनाकर छिपी टीका या चर्चा किया करते है—तो अिन नियमोका पालन नही होता।

नियमोको भाषाबद्ध करनेके बजाय लोकमतको बलवान और निःसकोच प्रगट होनेवाला बनानेका अधिक महत्त्व है। हमारे देशमें आज जो विभिन्न प्रकारके अनर्थ चल रहे है (जैसे कालाबाजार, रिश्वत-खोरी या स्त्री-पुरुषका शिथिल व्यवहार), अुनका कारण अुचित-अनुचितके बारेमे स्पष्ट मतका अभाव नही, बल्कि अनुचितका आग्रहपूर्वक निषेध करनेवाले लोकमतका अभाव है। अपने पक्ष या दलके लिअे अभिमान हो, तो प्रतिष्ठित माने जानेवाले लोग बड़े-बड़े दोषोको भी ढाक देते है; प्रतिपक्षी हो तो किसीकी निर्दोष या तुच्छसी बातको भी बडा और विकृत रूप दे देते है। दोनोमें से अेकको भी सत्य या नैतिकताकी बहुत परवाह नही होती; हरअेक अपने पक्षको बलवान बनाने जितना ही अुनका अुपयोग करता है। यह दभ है, निरा ढोग है।

शिक्षित मध्यमवर्गके समाजमे पिछले २५–३० वर्षसे स्त्री-पुरुष-मर्यादासे सबध रखनेवाले आचार-विचारमे बहुत फर्क हो गया है। पुराना समाज कुछ बातोमें सकुचित विचारवाला था, और आजकी बदली हुअी स्थितिमें अुस समयके नियमोका अक्षरशः पालन करनेमें मुश्किलें आती है। संकुचित विचारोकी प्रतिक्रिया (रिअेक्शन)के रूपमें और नअी परिस्थितिके जोशके कारण पुराने नियमोंके विरुद्ध आग्रह-

पूर्वक जानेकी वृत्ति कुछ हद तक समाजमें पैदा हो गअी है। अिस प्रतिक्रियाका असर अभी पूरा नही हुआ है और समाजके विचारोमें अभी तक स्थिरता नही आअी है। अिस कारणसे कुछ दोष पैदा होते रहते है।

अैसी स्थितिमें आज अधिक निश्चित नियम बनाना कठिन मालूम होता है। दो-चार नैतिक सूत्रोको सब माने और व्यवस्थापक-समिति अपने अनुभवसे नियम बनाती जाय तो काफी होगा। फिर भी आज तो अैसा मालूम होता है कि कोअी व्यवस्थापक-समिति निश्चित नियम नही बना सकती। शुद्धिकी रक्षा आखिरमें तो आसपासके वातावरण पर, कार्यकर्ताओकी समझ और जिम्मेदारी पर तथा शुद्धिकी लगन पर ही आधार रखती है।

स्त्री-पुरुष-सबधमें अेकात, शरीर-स्पर्श (सजातीय या विजातीय नौजवानो या किशोरोका अेक-दूसरेसे लिपटना, अेक-दूसरे पर गिरना या दूसरी तरहसे लाडभरे नखरे करना), कामको भडकानेवाले दृश्यो, नाटको, पुस्तको, सगीत आदिमें साथ-साथ भाग लेना, भाअी-बहन-मा-बाप जैसे कौटुम्बिक सबध न होने पर भी वैसे सबध कायम करनेकी बात मनको समझाकर सगे भाअी-बहन और मा-बापके साथ भी न किये हो, अैसे लाड या घनिष्ठता (intimacy) की छूट लेना — आदिको मलिनता या खतरेके स्थान माना जा सकता है। यदि अैसा आग्रह न रहे कि सगे भाअी-बहन-मा-बापसे भी या अुनके साथके व्यवहारमें भी अमुक स्वतत्रता तो कभी ली ही नहीं जा सकती, अपना शरीर अेक पवित्र तीर्थ (गगाजल या मन्त्रपूत जल) या पवित्र भूमि है और आपद्धर्मके सिवा जैसे पवित्र तीर्थ या क्षेत्रको थूक, मल-मूत्र या पावके स्पर्शसे अपवित्र नहीं किया जा सकता या पवित्र बनकर ही स्पर्श किया जा सकता है, वैसे ही अपने शरीरको भी — जिसके साथ विवाह किया हो अैसे पति या पत्नीके सिवाय — पवित्र रखनेका आग्रह न हो, और विषय-भोगकी तीव्र अिच्छा होते हुअे भी किसी कारणसे विवाह करनेका साहस न होता हो, तो कभी न कभी, युवावस्था बीत जाने पर भी, मन मलिन होनेका डर बना रहता है।

दूसरी तरफ यह ध्यानमे रखना जरूरी है कि हमारा सारा समाज ही गन्दे व्यवहारोसे काफी विगडा हुआ है। जो लोग अ-नैतिकताकी बहुत ज्यादा चर्चा करते है, अुनका बडा भाग चरित्रवान और पवित्र ही होता है, अैसा नही कहा जा सकता। गावोमे भी व्यभिचारसे होनेवाले रोगो (venereal diseases) का प्रमाण बहुत बडा है। 'कुअेमे होगा अुतना ही पानी तो हौजमे आयगा न?' जब तक सारी जनता, सारे समाजका चरित्र अुचा न हो, तब तक सस्थाओका —नौजवान होते हुअे भी कुवारे रहनेवाले स्त्री-पुरुषोकी सस्थाओका —हर हालतमे नीतिशुद्ध रहना सभव नही है।

सस्कारी परिवार और समाजमे बालक मातृभाषाकी तरह शिष्टाचार, सुरुचि और मर्यादाके नियम भी आसानीसे सीख लेते है। जिस तरह व्याकरणके नियम न जानने-सुनने पर भी थोडा बडा बच्चा अपनी मातृभाषाके व्याकरणके अनुसार ही भाषा बोलने लगता है, अुसी तरह अैसे नियमोंके बारेमे भी होता है। व्याकरणके नियमोकी तरह अच्छे और सभ्य व्यवहारके नियम बनाने हो तो भले बनाये जाय। लेकिन जिन्हे ये नियम पालने है, जिन्हे पलवाने है और जिस समाजके बीच रहकर काम करना है, अुन तीनोके प्रतिनिधि मिलकर ये नियम बनावे, और अुनमे कोअी शका या विचार-भेद पैदा हो जाय, तो अिस बारेमे वे तीनो किसी अैसे व्यक्तिके निर्णयको मानकर काम करनेके लिअे बध जाय, जिसके मतके लिअे अुन्हे आदर हो। यदि अिससे भिन्न प्रकारसे नियम बनानेकी कोशिश की जायगी, तो वे कागज पर ही लिखे रह जायगे।

जो नियम सुझाये जाय, वे अैसे होने चाहिये जिन्हे पालनेके लिअे सारे समाजसे सिफारिश की जा सके। वे किसी सस्थाके भीतरी व्यवहारके लिअे ही न बनाये जाय। अिसके साथ अुन नियमोका भी विचार कर लेना चाहिये, जो 'सहशिक्षा' नामक लेखमे सुझाये गये है।

सेवाग्राम, १४-१-'४५

२

‘धर्मके भाओी-बहन’

जिनके वीच कोओी नाता-रिश्ता न हो, अैसे स्त्री-पुरुषोके वीच कभी-कभी अेक-दूसरेके ‘धर्मके भाओी-वहन’ का सवध वाधनेका रिवाज पुराने समयसे चला आया है। कभी-कभी दो पुरुष या दो स्त्रिया भी अेक-दूसरेको भाओी या वहन माननेकी प्रतिज्ञा लेती है। युरोपमें अेक समय अैसी प्रतिज्ञासे सवध जोडनेवाले ओीसाओी सैनिकोका अेक सघ था। अुसमे तो प्रतिज्ञाके साथ अेक-दूसरेके खूनका अिन्जेक्शन लेनेकी या अैसी ही कोओी विधि भी की जाती थी। सिवनी जेलमे अेक आदिवासी कैदीके मुहसे अैसे अेक रिवाजकी वात मैंने सुनी थी। अुसने अपने अेक ‘धर्मके भाओी’ की वात कही थी। अुसका अर्थ पूछने पर अुसने वताया कि जो दो आदमी अेक-दूसरेको घनिष्ठ मित्र मानते हो, वे यदि अेक-दूसरेकी वफादारीकी सौगध खा ले तो धर्मके भाओी कहे जायेंगे। यह विधि यज्ञोपवीत या विवाहकी विधिकी तरह धूमधामसे की जाती है। अुसके वाद दोनो अेक-दूसरे पर पूरा विश्वास रखते हैं, अुनके वीच कोओी दुराव-छिपाव या गुप्तता नही रहती, अच्छे-वुरे प्रसगो पर सगे भाओीके साथ जैसे भेट-सौगात, मुलाकात वगैराका व्यवहार रखा जाता है, वैसा ही सारा व्यवहार अिस भाओीके साथ भी रखा जाता है। थोडेमे वे दोनो दुनियाको वताते है कि भिन्न माता-पिताकी सन्तान होते हुअे भी अुन्हे सव सगे भाओी ही समझें। अिस प्रतिज्ञाका दृढ निष्ठासे पालन करनेमे वे अपनी कुलीनता मानते है।

किसी समय अैसा नाता दो स्त्री-पुरुषके वीच भी वधता है। अपनी किसी कठिनाओी या मुसीवतके समय मदद करनेवाली या अपनी मुसीवतके कारण शरणमे आनेवाली किसी स्त्रीको पुरुष अपनी धर्मकी वहन घोषित करता है। फिर कोओी प्रेमी भाओी अपनी सगी वहनके साथ जैसा सवध निभाता है, वैसा वे अेक-दूसरेके साथ निभाते है। वह वहन अिस भाओीको राखी भेजना या नजदीक हो तो भाओीदूजके

दिन जीमने बुलाना कभी भूलती नही। और भाओी अच्छे-बुरे मौकों पर अुसको और अुसके बच्चोको याद करता ही है।

अैसे नाते पवित्र बुद्धिसे जोड़े जाते है और कुलीनताके खयालसे अन्त तक निभाये जाते हैं। अिनमे स्त्री-पुरुष-मर्यादाके नियमोंको शिथिल करनेका जरा भी अिरादा नही होता। हो भी नही सकता; क्योकि मर्यादाके जो नियम बताये गये है, वे वही है जिन्हें सगे भाओी-बहन, मा-बेटे या बाप-बेटीके बीच भी पालना जरूरी होता है।

परतु कभी कभी अैसा देखा जाता है कि मर्यादाके पालनमे पैदा हुअी शिथिलताका बचाव करनेके लिअे भी अैसा सबध बताया जाता है। दो अेकसी अुम्रवाले स्त्री-पुरुषके बीच मैत्री होती है। और अुसमें से वे खूब छूटसे अेक-दूसरेके साथ हिलने-मिलने लगते है। यह छूट समाजको खटकती है, या खटकनेका अुन्हे डर लगता है। यह छूट अुचित नही होती, फिर भी दोनो अुसे छोडना नही चाहते। अैसे मौके पर धर्मके भाओी-बहनकी दलील दी जाती है।

सच पूछा जाय तो अैसी स्थितिमे यह दलील केवल बहाना ही होती है। क्योकि वे अपने सगे भाओी या बहनके साथ या सगे लड़के-लडकीके साथ जैसा छूटका व्यवहार नही रखते, वैसा व्यवहार अिन माने हुअे भाओी-बहन, मा-बेटे या बाप-बेटीके साथ रखते है।

धर्मका नाता जोडनेवालेको यह सोचना चाहिये कि यह नाता धर्मके नाम पर जोडना है। अर्थात् अुसमें परमार्थकी, पवित्रताकी, कुलीनताकी, गभीरताकी बुद्धि होनी चाहिये। यह सबध अेकातमें गप्पे मारनेकी, साथमे घूमने-फिरनेकी, पीठ या सिर पर हाथ फेरते रहनेकी, अेक-दूसरेके साथ सटकर बैठनेकी या कारण-अकारण किसी न किसी बहानेसे अेक-दूसरेको स्पर्श करनेकी छूट लेनेके लिअे नही होना चाहिये। यह अेक-दूसरेकी आबरू रखने और बढानेके लिअे होना चाहिये, और समाजमे अुसका अैसा परिणाम आना ही चाहिये। अुसमें निन्दाके लिअे कोओी गुजाअिश ही नही होनी चाहिये। जिस तरह अपनी सगी बहनकी निन्दा असह्य मालूम होती है, अुसी तरह धर्मकी बहनकी निन्दा भी असह्य लगनी चाहिये। अुसका निमित्त खुद बनता है अैसा

मालूम हो और निन्दा अगर झूठी हो तब तो — हिंसाकी भाषामे कहू तो — निन्दा करनेवालेकी जीभ काट लेनेकी वृत्ति मनमे पैदा होनी चाहिये; और निन्दा सच्ची हो तो आत्महत्या करनेकी अिच्छा होनी चाहिये। और यदि निन्दा सच्ची हो लेकिन अपने बारेमे नही बल्कि अपने संबधी जनके बारेमें हो, तो अुसका खून करनेकी अिच्छा होनी चाहिये। अिसमें क्रोध तो है, लेकिन वह भावनाकी अुत्कटताको बताता है। अहिंसक वृत्तिका मनुष्य तो बिगडी हुअी बाजीको सुधार लेनेकी हर कोशिश करेगा। लेकिन 'धर्मके भाअी-बहन' का विवाह हो या अुनके बीच कभी अपवित्र व्यवहार हो, तो अुसे सगे भाअी-बहनके बीचके अपवित्र व्यवहारसे भी ज्यादा घोर पतन माना जायगा।

जो स्त्री-पुरुष अेक-दूसरेके 'धर्मके भाअी-बहन' या दूसरे सबधी बनना चाहते है, वे आदिवासियोकी तरह या विवाहकी तरह विधि-पूर्वक वैसी प्रतिज्ञा लेनेका रिवाज डाले तो अच्छा हो।

मअी, १९४५

३

बुढ़ापेमें विवाह

लॉयड जॉर्जने करीब ८० वर्षकी अुम्रमे लगभग साठ वर्षकी स्त्रीके साथ विवाह किया था। लॉर्ड रीडिंगने भी अैसा ही किया था। युरोपमे तो अैसे कअी अुदाहरण मिलेगे। हमारे देशमे भी वृद्धविवाह होते है। परन्तु भेद यही है कि यहा सिर्फ वर ही बूढा होता है, वधू बूढी नही होती। वह तो शायद १२–१५ वर्षकी बेसमझ लडकी भी हो सकती है।

"बूढेके साथ छोटी लडकीका विवाह करनेका मतलब मुर्देके साथ विवाह करना है। अैसा करके पुत्रीका पापी पिता बादमे पछताता है।" — गुजराती कविताका यह भाव हमारे देशके वृद्धविवाहको लागू होता है, लॉयड जॉर्जके विवाहको नही।

लेकिन अैसे विवाहके बारेमे क्या कहा जाय? क्या अुसे कामविकृति कहा जाय? कामविकृति हरगिज नही कहा जा सकता, यह न माने तो भी मै अैसी परिस्थितिकी कल्पना कर सकता हूं, जिसमे अैसा विवाह अुचित माना जा सकता है। अेक-दो मामलोमे मैने वडी अुम्रके स्त्री-पुरुषोको आपसमें विवाह कर लेनेकी सलाह दी है। मेरी सलाह अुन्होने मानी नही, पर अुचित अवसर पर मुझे यही सलाह देना अुचित लगता है।

लॉयड जॉर्ज जैसा कोअी व्यक्ति वडी अुम्रमे विधुर या (स्त्री हो तो) विधवा होता है। पति या पत्नी ही कर सके, अैसी सार-सभाल और सेवाओकी अुसे जरूरत है। अुसकी परिचित अेक विधवा या विधुर है। अुसे भी सहारेकी जरूरत है। मृत पति या पत्नीकी याद और प्रेम वहुत ताजे नही रहे है। वे यदि किसी भी तरह अेक-दूसरेकी मदद करते है, तो अुससे लोकनिन्दाका डर पैदा होता है। वे स्वय भी डरसे परे नही है। अुनकी कामवासना तीव्र नही है, अिसीलिअे अुनकी विवाह करनेकी अिच्छा नही है। लेकिन निर्भय वन कर आपसमे व्यवहार कर सके, अैसा विश्वास भी अुन्हे अपने वारेमे नही है। अेक-दूसरेकी सहायता करनेमे शरीरका स्पर्श, अेकातवास आदिकी सभावना रहती ही है। अैसी स्थितिमे वे हिम्मत करके विवाह कर लेनेके वजाय अेक-दूसरेसे दूर रहे, तो अिससे दोनोमे से अेककी भी परेशानी कम नही होती। यदि विवाह किये विना साथ रहे और आपसमे 'धर्मके भाअी-वहन' वननेका प्रयत्न करे, तो कअी वार यह ढोग ही सावित होता है। क्योकि कुछ सेवाये अैसी होती है, जो सगे भाअी-वहनोसे भी परस्पर नही ली जा सकती। पति-पत्नी ही सकोचके विना अैसी सेवा कर सकते है। अिसके विपरीत, यदि वे विवाह कर लेते है तो कुछ समय तक लोग भले यह कहे कि वुढापेमे क्या खब्त सवार हुआ हे, लेकिन अिस कामसे दोनो अेक-दूसरेको पति-पत्नीकी प्रतिष्ठा प्रदान करते है और समाज भी अुस प्रतिष्ठाको स्वीकार करता है। वे लोकनिन्दाके क्षेत्रसे वाहर हो जाते है।

हमारे अूचे कहे जानेवाले वर्णोंमे विधवा-विवाहकी हिम्मत न होनेके कारण वहुत वडी अुम्रमे विधुर वननेवाले लोगोंके अैसे अुदाहरणोका अभाव नही है, जिनमें समान दरजेकी किसी स्त्रीके न मिलनेसे पहले नौकरवर्गकी स्त्रीको घरकी देखभाल करनेके लिअे रखा जाता है और वादमे अुसे रखेली वना लिया जाता है। जिन लोगोमे विधवा-विवाहकी स्वतत्रता है, अुनमे अैसा नही होता।

परन्तु यह सूचना मैने 'कार्यकर्ता' स्त्री-पुरुषोको ध्यानमे रखकर की है। कभी अविवाहित पुरुषको स्त्री-कार्यकर्ताकी जरूरत होती है, विधवा या कुवारी स्त्रीको पुरुषके सहारेकी जरूरत मालूम होती है। मनुष्य चाहे जितना स्वतत्र रहना चाहे, फिर भी जीवनमे कुछ मौको पर तो अुसे किसीकी मददकी जरूरत महसूस होती ही है। समाजकी जो सेवा वह करना चाहता है, अुसकी सिद्धिके लिअे भी यह मदद जरूरी होती है। अधिकतर स्त्री-पुरुप अैसा मानते दीखते है कि अमुक व्यक्तिगत मदद स्त्री ही पुरुपको दे सकती है, और अमुक प्रकारका वल, धीरज और मदद पुरुप ही स्त्रीको दे सकता है। यह मान्यता मनकी कमजोरीके कारण हो, काल्पनिक हो या भ्रम हो, लेकिन वह है अैसा तो मानना ही होगा। समाजसेवा करनेमे भी कुछ प्रवृत्तिया स्त्री-पुरुषके साथ होनेसे ही अच्छी तरह चल सकती है। जीवनमे अैसी मदद और आसरा खोजनेवाले वहुतसे स्त्री-पुरुपोको कोअी न कोअी विजातीय साथी मिल जाता है। अुन दोनोको साथमे काम करना अच्छा लगता है। दोनोको अेक-दूसरेकी मदद करनेमे आनन्द आता है। अिसके पीछे आरभमे जाग्रत रूपमे कामवासनाका आकर्पण नही होता, भीतर ही भीतर हो भी तो वह अज्ञात रूपमे ही रहता है और लम्वे परिचयके वाद ही मालूम होता है।

लेकिन जाग्रत कामवासना न हो, तो भी दोनोके वीच विशेप मित्रताका सम्वन्ध अवश्य हो जाता है। अर्थात् दूसरे परिचित विजातीय कार्यकर्ताओकी अपेक्षा अिन दो व्यक्तियोकी आपसमे ज्यादा पटती है, अेक-दूसरेको हर तरहकी मदद करनेमे दोनो अधिक अुत्साह अनुभव करते है, अुन्हे अेक-दूसरेकी मदद लेनेमे भी कम सकोच

होता है। दोनो अेक ही जातिके व्यक्ति हो, तो अुन्हे हम भाअीके समान मित्र या सखिया कहते है और अुनके अिस सम्बन्धके बारेमें कोअी बुरा विचार मनमे नही लाते। अुलटे, हम अुसकी कदर करते है। लेकिन विजातीय व्यक्तियोके बीच अैसी मित्रता होनेसे और दोनोके अविवाहित या विधुर-विधवा होनेसे दोनोके साथ रहनेमे और काम करनेमे अनेक कठिनाअिया पैदा होती है। अुनका धीरे-धीरे बढनेवाला परिचय स्त्री-पुरुष-मर्यादाके नियमोका पालन ढीला कराता है। दोनो अेक-दूसरेको भाअी-बहन या 'धर्मके' भाअी-बहन कहते है, परन्तु सगे भाअी-बहनके बीच भी न पाअी जानेवाली निकटता और नि सकोचता अनुभव करते है। अुनके अुठने-बैठने, बातचीत करने वगैरामे शिष्टाचार जैसी कोअी चीज नही रह जाती। यह व्यवहार आसपासके लोगोकी निगाहमे आता है। अुन्हे अिसमे सच्ची या झूठी विकारकी शका होती है। मनुष्य-स्वभावके अनुसार वे अपनी शका मुह पर जाहिर नही करते या अुस व्यवहारके बारेमें रुचि-अरुचि शुरूमें ही प्रकट नही करते। लेकिन अन्दर ही अन्दर अुनकी निन्दा करते है और लोगोमे बाते फैलाते है। अन्तमे वे दोनो विकृत रूपमें अपनी निन्दा होती अनुभव करते है। दोनोंके मन नाजुक होनेसे दोनो दु:खी होते है, चिढते है, बेचैन होते है। अेक-दूसरेको छोड नही सकते; छोडना अुन्हे ठीक भी नही लगता। अेक-दूसरेके साथ आजादीसे व्यवहार करनेकी जो आदत पड चुकी है, अुसे छोडकर फिरसे सकोच और मर्यादाका पालन करना लगभग असभव मालूम होता है। यह बात अुनके गले भी नही अुतरती। और साथ ही लोकनिन्दा भी सहन नही होती। दोनो अुम्रमे न बिलकुल जवान है, न बिलकुल बूढे। अिसलिअे दोनो यह भी नही कह सकते कि हम कामविकारसे परे है। और विकारी है अैसा भी वे स्पष्ट रूपसे अनुभव नही कर सकते। अितनी बडी अुम्रमें लोग — खास कर स्त्रिया — विवाह करे तो हमारे समाजमे लोकदृष्टिसे अुनकी हसी होनेकी आशका रहती है। अिस कारणसे विवाहकी कल्पना भी सहन नही होती; तब फिर हिम्मत तो वे कर ही कैसे सकते है?

मेरी राय है कि अैसे स्त्री-पुरुषोको आपसमे विवाह कर लेनेकी ही हिम्मत दिखानी चाहिये। सिर्फ लोकनिन्दासे बचनेके लिअे भी अैसा करनेमें मै दोष नही मानता। लेकिन लोकनिन्दासे बचनेके सिवा भी अिस कदमके कअी लाभ है। अेक-दूसरेका जो आसरा वे खोजते है, अुसे पानेका सही रास्ता वे दूसरोको बतायेगे, जो समाजसेवा वे करना चाहते है, अुसे ज्यादा सीधे ढगसे कर सकेगे, और यदि विकार केवल दबा हुआ रहा होगा और अुसके किसी दिन धर्मके बन्धनोको तोडकर फूट पडनेकी सभावना होगी, तो धर्मानुकूल ढगसे ही अुसके निकलनेका रास्ता साफ हो जायगा। यदि दोनोमे विकार होगा ही नही, तो अैसा मानना जरूरी नही कि विवाह करनेसे वह अुभर आयेगा। विवाह कर लेनेके कारण दूसरे स्त्री-पुरुषोको अुनके साथ मिलने-जुलनेमें और व्यवहार करनेमें कम सकोच होगा, क्योकि जब दो व्यक्तियोंके सम्बन्धके विषयमे लोगोमें अुचित या अनुचित शका पैदा हो जाती है, तब दूसरे स्त्री-पुरुष भी अुनके साथ विश्वासपूर्वक मिल-जुल नही सकते।

अलबत्ता, अिस सलाहका यह मतलब नही कि हर तरहकी अफवाह या अपने साथियोकी भी कुशकासे बचनेका सदा यही अेक मार्ग है। कभी-कभी तो अैसी कुशका, निन्दा आदिको सहन ही कर लेना चाहिये। किसी विवाहित स्त्री या पुरुषके बारेमे अैसी निन्दा की जाय और यदि अुसका कोअी आधार न हो तो वह क्या करे? अपने शुद्ध व्यवहारसे कुछ समय बाद लोगोकी शका मिट जायगी, अैसा विश्वास रखकर बरताव करनेके सिवा अुसके सामने कोअी और मार्ग ही नही हो सकता। अिसी तरह अविवाहित स्त्री-पुरुषोको भी समझना चाहिये। लेकिन विवाहित या अविवाहित दोनोको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि शुद्ध व्यवहारका विश्वास अुचित मर्यादाओके पालनमे ही कराया जा सकता है, मनमाने व्यवहारसे नही। जो लोग मर्यादा-पालनमे विश्वास नही रखते, वे खुद ही लोकनिन्दाको प्रोत्साहन देते है। अुन्हे लोकनिन्दासे चिढने और गुस्सा करनेका कोअी अधिकार नहीं है।

मअी, १९४५

४

ब्रह्मचर्यका साध्य

कामविकार या वीर्यनाशके दोषसे बेचैन रहनेवाले लोगोके पत्र मेरे पास आया ही करते है। अिस विषय पर कअी अच्छी पुस्तके लिखी गअी है, फिर भी यह स्पष्ट है कि वे परेशानीमे पडे हुअे लोगोकी कठिनाअी दूर नही कर सकती। मै भी अिसका कोअी निश्चित — चाहे वह कठिन ही क्यो न हो — अुपाय नही जानता। और अिसका कोअी सरल राजमार्ग तो मुझे दीखता ही नही।

लेकिन अिस बारेमे कुछ परेशानी अिसलिअे पैदा होती है कि ब्रह्मचर्यके अर्थ और साध्यके बारेमे हमारे विचार स्पष्ट और अेक ध्येयवाले नही होते। अिसी कारणसे अुपाय खोजने और अुन पर अमल करनेमे भी कठिनाअी होती है। अत अिस विषयमे बुनियादसे ही विचार करना सहायक सिद्ध होगा।

पतजलि मुनिने यह सूत्र प्रतिपादित किया है कि "ब्रह्मचर्यकी स्थिरतासे वीर्यलाभ होता है।" यहा 'वीर्य'के दो अर्थ होगे (१) हम अिस नामसे जिसे पहचानते है, वह शरीरका सजीव पदार्थ — जिसे हम आगे शुक्र नामसे पहचानेगे, और (२) अुत्साह, साहस, पुरुषार्थ करनेकी शक्ति (vigour)। लाभका अर्थ है प्राप्ति और वृद्धि। योगकी सिद्धिके लिअे जो पाच शर्ते रखी गअी है, अुनमे से वीर्य अर्थात् अुत्साह भी अेक शर्त है। शुक्रके नाशसे मनुष्यका अुत्साह कम होता है, अैसा अनुभव होनेसे दोनोको अेक ही नाम दिया गया है और शुक्रकी वृद्धि तथा सग्रह ब्रह्मचर्यका साध्य माना गया है। साधारण तौर पर ब्रह्मचर्यकी साधनाका अर्थ यह समझा जाता है शुक्रकी अुत्पत्ति हो, वह बढ़े, लेकिन अपनी अिच्छाके विना बाहर न निकले, अिस हद तक अपनी अिन्द्रिय पर अधिकार पानेकी साधना। अुसका यह अर्थ नही होता कि शुक्रकी अुत्पत्ति ही न हो या न हो सके,

क्योंकि वह स्थिति तो नपुसकताकी होगी। और अत्यन्त निष्ठावान ब्रह्मचारीके भी हृदयमें घुसकर हम देखें, तो पता चलेगा कि अुसे अपने ब्रह्मचर्यके लिअे जितनी लगन और चिन्ता होती है, अुतनी ही या अुससे अधिक अपने पुरुषत्वके लिअे होती है। अुसे ब्रह्मचर्यकी सिद्धि प्रिय है, लेकिन अपनी पुरुषत्व-शक्ति भी अुतनी ही या अुससे अधिक प्रिय है। अिसलिअे शुक्रका नाश होनेसे अुसे जितना दु ख होगा, अुससे ज्यादा दु ख अपने पुरुषत्वमे कमी आनेकी शकामे होगा।

अिसका अर्थ यह कि पुरुष चाहे सयमी हो या भोगी हो, विवाहित हो, अविवाहित हो या विधुर हो, शुक्रकी रक्षाके बनिस्बत शुक्रकी अुत्पत्तिकी रक्षा अुसे अधिक प्रिय है। अुसे यह पसन्द नही कि शुक्र बेकार बरबाद हो जाय, अिच्छाके विरुद्ध निकल जाय — अर्थात् रोकना चाहे तो वह अुसे रोक न सके। लेकिन — भले अुसे सदा ब्रह्मचारी ही रहना हो तो भी — अुसकी यह अिच्छा रहती है कि वह चाहे तब शुक्र पैदा होना ही चाहिये।

अब, सजीव या बढनेवाली दूसरी चीजोको लागू होनेवाला नियम शुक्र पर भी लागू होता है। हम जब-जब बाल या नख काटे अथवा किसी मैदानका घास काटे, तब काटे हुअे भागकी लम्बाअीका हिसाब रखे तो मालूम होगा कि २५ वर्षमे काटे गये नखो, बालो या घासकी लम्बाअी कितने ही गज तक पहुच गअी है। फिर भी हम जानते हैं कि हम अुन सबको काटे बिना बढने ही दे, तो नख ज्यादासे ज्यादा ४-५ अिच और बाल व घास (किस्मके मुताबिक) ३-४ फुटसे ज्यादा नही बढते। अेक हदके बाद अुनमे बढती मालूम नही होती। लेकिन अिसका यह अर्थ नही कि अुनकी नअी अुत्पत्ति होती ही नही। बल्कि जितनी अुत्पत्ति होती है, अुतना ही अुनका कुदरती ह्रास भी होता रहता है। अिस कारणसे अुनकी बाढकी अेक प्रकारकी सीमा आ गअी लगती है। लेकिन यदि हम अुन्हे काटते रहे, यानी कुदरती तौर पर अुनका जितना ह्रास होता है अुससे ज्यादा तेजीसे अुनका व्यय करें, तो अिस नुकसानकी भरपाअी करनेके लिअे अुनके भीतर रही जीवनशक्ति भी ज्यादा तेजीसे काम करने लगती है।

अिस तरह व्ययके वेगके साथ अुत्पत्तिका वेग जुडा होता है। जो बार-बार विषयभोगका सेवन करते है या दूसरी तरहसे शुक्रका नाश होने देते है, अुनमे शुक्रकी अुत्पत्तिकी क्रिया भी तेजीसे होती है, अर्थात् अुनमें कामविकार भी बार-बार अुठता है। अलबत्ता, अिसकी अेक सीमा तो होती ही है। क्योकि नख, बाल, शुक्र या शरीरके किसी भी अशकी अुत्पत्ति सर्वथा स्वाधीन नही है। आहार, विहार, व्यायाम आदि अनेक बातो पर अुसकी शक्ति निर्भर करती है। शरीरके घिसे हुअे सब अशोको अुत्पन्न करनेवाली और अुन्हें दुरुस्त करनेवाली असल चीज खून है। अुसीकी अुत्पत्ति शरीरमें कम हो जाय या अुसे सब तरहके ह्रासकी समान रूपसे पूर्ति करनेके वजाय किसी अेक ही अशके निर्माणमे ज्यादा शक्ति खर्च करनी पड़े, तो शरीरके दूसरे अश कमजोर पड़ जायगे; और अन्तमें अुस अशका भी ह्रास अुसकी अुत्पत्ति और दुरुस्तीसे ज्यादा बढ जायगा — अर्थात् अन्तमे वह अश धीरे-धीरे घटता ही जायगा। अिसी तरह यदि शुक्रका भी लगातार व्यय होता रहे तो आरभमे तो अुतनी ही तेजीसे अुसकी अुत्पत्ति होती मालूम होगी, लेकिन कुछ समय बाद पता चलेगा कि वह शरीरके दूसरे अशोको नुकसान पहुचाकर ही होती है; और अन्तमे अुसकी अुत्पत्ति जरूर घट जाती है। अिस तरह टालके बाल अुडना, बाल सफेद होना, नखका आकार घटना, नपुसकताका आना अर्थात् शुक्रका परिमाण या गुण घटना — ये सब ह्रासकी गतिसे अुत्पत्तिकी गति कम हो जानेके या जराके चिह्न है। जरा अर्थात् जीर्णता — फिर भले वह बीमारीके कारण हो, अतिशय भोगविलासके कारण हो या कुदरतके नियमके अनुसार हरअेकको देरसवेर आनेवाले वुढापेके कारण हो।

जो भोगविलासमें सयम रखता है या दूसरी तरहसे शुक्रका नाश नही होने देता, अुसके शरीरमे भी शुक्रकी अुत्पत्तिकी क्रिया धीमी गतिसे चलती है। अर्थात् वह बार-बार अितना जोर नही पकडती कि तीव्र विकार पैदा हो। अुसमे भी यदि वह पुरुष विकारोका वेग रोकनेके लिअे या शुक्र धारण करनेकी शक्ति बढानेके लिअे या

अुसकी अुत्पत्तिकी क्रियाको रोकनेके लिअे वैद्यकके, योगके या जप-तपके (अर्थात् अिच्छाशक्तिके) अुपाय काममे ले और अुनके फल-स्वरूप शुक्रको स्थिर बनावे, तो जिस तरह न काटे जानेवाले नखो, बालो या घासकी बाढ रुकी हुअी-सी लगती है अुसी तरह शुक्रकी वृद्धि भी रुकी हुअी-सी लगे तो अिसमे कोअी आश्चर्यकी बात नही है, और अिस कारणसे यह शका करनेकी जरूरत नही कि अुसका पुरुषत्व कम हो गया है।

बीमारी या बुढापेके फलस्वरूप शरीरके दूसरे अगोमे और अुनकी शक्तिमे क्षीणता आती है, अुसी तरह शुक्रकी अुत्पत्तिमे भी क्षीणता आती है और अिसे क्रमिक परिणाम ही समझना चाहिये। यह सभव नही कि मनुष्यकी पहलेकी चलने, दौडने, मेहनत करने, खाने, पीने, देखने, सुनने, आदिकी शक्ति तो घटे, लेकिन जननेन्द्रियकी शक्ति बिलकुल न घटे।

अेक खास अुम्रके बाद स्त्रीकी गर्भधारण करनेकी शक्ति चली जाती है, और यह अुसके लिअे शर्मकी या छिपानेकी बात नही समझी जाती। अिस कारणसे अैसा नही लगता कि अुसके स्त्रीत्वमे कोअी कमी आ गअी है, या अुसके बारेमे हमारे मनमे अनादरका भाव नही पैदा होता। अिसे प्रकृतिका क्रमिक परिणाम ही समझा जाता है। लेकिन बीमार या बूढा पुरुष नौजवानकी तरह दूसरे कामोमे शरीक न हो सकनेके लिअे तो नही शरमाता, पर पुरुषत्वकी कमी आनेसे शरमाने लगता है। यह बताता है कि ब्रह्मचर्यके बारेमें चाहे जितना कहा या लिखा गया हो, फिर भी पुरुष वीर्यपातमे डरता नही, अुसके पूर्वचिह्नोंसे भी नही डरता, परन्तु कुछ हद तक अुसके निरर्थक और अिच्छाके विरुद्ध नाशसे तथा अधिकतर अुसके बाद आनेवाली ग्लानि और अशक्तिसे ही डरता है।

पुरुषके मनमे रही मूल वृत्ति अिस तरहकी होनेके कारण ब्रह्म-चर्यकी साधनाके लिअे युवावस्थामे और पिछली अुम्रमे परस्पर विरोधी प्रयत्न होते देखे जाते है।

युवावस्थामे जिस पुरुषको अपने पुरुषत्वके वारेमे शकाका कोओी कारण नही होता, वह वीर्यस्खलनके अवसरोको यथाशक्ति लवानेके और अुसके पूर्वचिह्न भी न मालूम होनेके अुपाय खोजता है। बार-वार शुक्रका नाश होनेसे अुसे पुरुषत्वके घटनेका डर मालूम होता है। अिस कारणसे वह स्वादको जीतता है, व्रतोका पालन करता है, आसन साधता है, प्राणायाम आदि सीखता है और कभी-कभी दवाओका भी सेवन करता है। अितना करते हुअे भी जब वह अपनी कोशिशोमे पूरी तरह सफल नही होता, तब परेशान और दु खी होता है और अिस विषयके जानकार माने हुअे लोगोकी सलाह पूछता है। अुसका यह प्रयत्न बुरा नही है। लेकिन अुसे यह भी समझना चाहिये कि जिन्हे कामविकारका अनुभव हो चुका है, अुन्हे यह शक्य नही लगता कि जब तक मध्यम प्रमाणमे भी अुनकी जीवनशक्ति होगी, तब तक पुरुषत्वके कायम रहते कभी वीर्यपात नही होगा। अिसलिअे अैसे अनुभवसे बेचैन और परेशान होना ठीक नही। बहुत बार शुक्रनाशसे अुत्पन्न होनेवाली ग्लानिकी अपेक्षा अिच्छा होते हुअे भी शुक्रनाशको रोकनेकी अशक्ति और अुस विषयकी मनमे जमी हुअी कुछ कल्पनाओके कारण ज्यादा ग्लानि होती है। लेकिन ग्लानि चाहे जिस कारणसे हो, परेशान होनेसे कोओी लाभ नही होता। यदि अैसा पुरुष अविवाहित हो तो वह मन पर विषयोके विचारोका आक्रमण होते ही अुसे किसी काममे अथवा पवित्र या निर्दोष विषयमे लगानेका प्रयत्न करे, परन्तु कुटेवमे न पडे, व्यभिचार न करे, किसी बालक या दूसरेके साथ अतिचार न करे और स्त्री-पुरुष-सहवासकी मर्यादाओका पालन करे। अैसा करते हुअे भी कभी-कभी होनेवाले शुक्रनाशको प्रकृतिका धर्म मानकर परेशान और दु खी न हो। अैसा व्यवहार करनेवालेको वार-वार शुक्रनाशका अनुभव होता हो, तो अुसे अपने आहार, विहार, परिश्रम और जीवनपद्धतिमे आवश्यक परिवर्तन करना चाहिये। पर अिस वातको आरोग्यका विषय समझकर अुस पर विचार करना चाहिये। आरोग्यसे अिसका सम्बन्ध होनेके कारण शरीरको अुपवास या नि सत्त्व खुराक वगैरासे क्षीण करना या शुक्रकी अुत्पत्ति बन्द कर

देनेवाली दवाये लेना असका सही अिलाज नही है। लाचारीसे या प्रकृतिधर्मके नाते शुक्रनाश हो तो भी शरीरको बलवान और मजबूत बनाकर शुक्रको बढाने और स्थिर बनानेका ध्येय सामने रखना चाहिये।

विवाहित मनुष्यके लिअे भी सयमकालमे अूपरका ही ध्येय और अुसके अुपाय लागू होते है। लेकिन जिसका शुक्रनाश होता है, जिस पर विषयोके हमले होते है और जो वीर्यपात न हो जाय तब तक अशात बना रहता है, अुसका शरीर यदि बलवान, सुदृढ और सन्तान पैदा करने लायक हो तो वह अपने शुक्रको व्यर्थ नष्ट करनेके बजाय नैतिकताका पालन करते हुअे सन्तान पैदा करनेमे ही अुसे खर्च करे। अुसका यह आचरण स्थूल और यात्रिक अभोगकी अपेक्षा ब्रह्मचर्यके अधिक समीप समझा जाना चाहिये। अुसी तरह अैसी स्थिति भोगनेवाला अविवाहित या विधुर पुरुष जवानी ढलना आरभ होनेसे पहले विवाह करनेकी बात सोचे तो ज्यादा अच्छा हो। जो लोग अैसा नही करते अुनमे पिछली अुमरमें कामविकार सम्बन्धी बुराअिया पैदा होनेका बहुत डर रहता है। बडी अुम्र, दुनियाका अनुभव, जीवनमे प्राप्त हुअी स्थिरता, जवानीकी भागदौडमे आअी हुअी मन्दता, कभी-कभी मायावादके विचार द्वारा नीति-अनीतिके भेदके बारेमे पैदा की हुअी नास्तिक बुद्धि, कभी योगके साधनोका ज्ञान, लोगोका विश्वास और अिन सबके साथ सपूर्ण भोग भोगनेकी शारीरिक अशक्ति अैसे पुरुषोको अतिचारकी ओर खीच ले जाती है। जो युवावस्थामे जननेन्द्रियमे अुत्पन्न होनेवाली अुत्तेजनासे या अनजानमे भी होनेवाले शुक्रके नाशसे अुद्विग्न हो जाते तथा डरते थे और अैसा न होने देनेके अुपाय खोजते थे, वे ही पिछली अुम्रमे अैसा कम होनेसे, न होनेसे, या अुसके कम अथवा मद होनेकी सभावना मालूम होनेसे परेशान होते है और डरते है। और, जननेन्द्रियकी अुत्तेजना और शुक्रकी अुत्पत्ति बढानेके अुपाय खोजते है। अुसके लिअे वे कृत्रिम या विकृत स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध भी कायम करते है। अिसीमें से वैद्यकके और हठयोगके अनेक गुप्त या खुले अुपाय निकले है, 'कर्ता होते हुअे भी

अकर्ता, अलिप्त' ब्रह्मनिष्ठ बननेकी, 'श्रीकृष्ण' बननेकी, या 'शक्ति' साधनाकी बाते फैलाअी जाती है और वाममार्गका जन्म होता है।

जो पहली अुम्रमे शरीरको बलवान रखकर शुक्रकी रक्षा कर सकते है, बिचली अुम्रमे शरीरको मजबूत रखकर और आरोग्य तथा नैतिकताके नियम पालकर गृहस्थाश्रम चलाते है, अुनमे पिछली अुम्रमे विकृति पैदा होनेकी कम सभावना रहती है। अत· तथाकथित ब्रह्मचारीकी अपेक्षा अिनका मर्यादित ब्रह्मचर्य समाजके लिअे अधिक तेजस्वी और लाभदायी सिद्ध होता है। अर्थात् यह मत रोगी और कमजोर स्त्री-पुरुषो पर लागू नही होता, तथा लगातार और जीविका चलानेकी व्यवस्थाके अभावमे भी सन्तान पैदा करनेकी हिमायत करनेके लिअे नही है। अैसोके लिअे सयमका मार्ग कृत्रिम जैसा होने पर भी वैद्यके परहेजकी तरह है।

शुक्र और वीर्य (अुत्साह) का सम्बन्ध सहज ही समझमे आने जैसा है। लेकिन शुक्ररक्षाकी साधनाको 'ब्रह्मचर्य' क्यो कहा जाय, अिस पर विचार करना जरूरी है। केवल शुक्ररक्षा तो स्वास्थ्य और विज्ञानका विषय माना जायगा। अुसका नीति-अनीतिके साथ कोअी सम्बन्ध नही है। बहुत करके चिकित्साशास्त्र और योगमार्गियोने अिसका वैज्ञानिक दृष्टिसे ही विचार किया है। अिसलिअे अुसमे स्वस्त्री और परस्त्रीका भी भेद नही किया जाता। परन्तु 'ब्रह्मचर्य' मे केवल वैज्ञानिक दृष्टि ही नही है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है ब्रह्म या अीश्वरके मार्ग पर चर्या (चलना)। सब शक्तियोका अीश्वरके मार्गमें अुपयोग करना ही ब्रह्मचर्य है। अुसमे प्रजोत्पत्तिकी शक्ति भी शामिल है। अुसका भी अीश्वरके मार्गमें अुपयोग करना चाहिये। अर्थात् जिस अुद्देश्यसे यह अद्‌भुत शक्ति प्राणियोको मिली है, अुस अुद्देश्यको जगत्‌के हितकी दृष्टिसे सिद्ध करनेके लिअे ही अिसका अुपयोग करना ब्रह्मचर्य है। अुसमे कृत्रिम अभोगकी, चाहे जिस प्रकारके सभोगकी या विकृत सबधोकी कोअी गुजाअिश नही है। अुसमे प्रजोत्पत्ति केवल भोगका परिणाम नही, बल्कि अुद्देश्य होना चाहिये।

मअी, १९४५